बदलते चेहरे

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

बदलते चेहरे

लेखक

डी. जयकांतन

अनुवाद

न.वी. राजगोपालन

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

आवरण : नरेन सेनगुप्ता की पेंटिंग पर आधारित।

ISBN 81-237-1571-4

पहला संस्करण : 1995 (शक 1917)

रु. 50.00

Original title : Sila Nerangalil Sila Manithargal *(Tamil)*

Translation : Badalte Chehre *(Hindi)*

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

1

बाहर पानी बरस रहा है। जब बस मुड़ती है तो बस के भीतर सब यात्री एक-दूसरे पर झुक से जाते हैं। मेरे पीछे खड़ा हुआ आदमी जानबूझकर मेरे ऊपर झुक रहा है। मैं खूब समझ रही हूं कि वह जानबूझकर ही ऐसा कर रहा है। पर किया क्या जाये? स्त्री के रूप में पैदा हुई हैं, फिर भी यह भावना लेकर कि 'हम भी पुरुषों के बराबर हैं' स्कूलों-कालेजों में पढ़ने-लिखने चल पड़ी हैं, नौकरी करके पैसा कमाने के लिए घर से बाहर निकली हैं तो यह सब भुगतना ही पड़ेगा। बस में महिलाओं के लिए बेशक चार सीटें सुरक्षित रखी गयी हैं। यह तब किया गया होगा जब दो-एक स्त्रियां पढ़ने और नौकरी करने के लिए बाहर जाती होंगी। उस हिसाब से महिलाओं के लिए चार सीटें भी अधिक लगती होंगी शायद। अब तो केवल महिलाओं के लिए ही एक पूरी बस चलाई जाये तो अच्छा हो। क्यों नहीं चला सकते? ऐसा करने में क्या हानि होगी? बेचारी कमसिन लड़कियां, इन मर्दों के साथ होड़ लगाती हुई, धक्के खाती हुई पैसा देकर भी क्यों आफत मोल लेती रहें? महिलाओं के लिए अलग सीट रखने में क्या कोई अपमान है? अगर नहीं है तो क्या अलग बस चलाने में अपमान हो जायेगा? बड़ा अच्छा विचार है ! मैं इसके बारे में 'संपादक के नाम पत्र' लिखकर छपवाऊंगी।

बाहर खूब पानी बरस रहा है। खिड़कियों के किनारे पर लगे फ्रेम पर पानी की बौछार पटा-पट करती टकरा रही है। बस के भीतर नमी और मिट्टी मिलकर कीचड़ बन गयी है, जो घिनौनी लग रही है। एकदम मर्दों की बू जैसी ! बस की छत से लटकने वाले इन मूठों को पता नहीं किस-किसने पकड़ा होगा। (पूर्वजन्म का पाप) कर्म ! इन मूठों पर चमड़ा क्यों लगाया जाता है ? चमड़े की यह बदबू कितनी अलग ढंग की है। जैसे इलेक्ट्रिक ट्रेनों में मेटल के मूठ लगाये जाते हैं, यदि वैसे ही यहां भी लगा देते तो क्या हो जाता? इसके बारे में भी लिखना है। अब तो बस मुड़ नहीं रही, सीधी चली जा रही है, लेकिन फिर भी मेरे पीछे जो यह खड़ा है, धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा करके आगे सरककर मेरे ऊपर झुकता जा रहा है। इसकी इतनी हिम्मत ! यह कैसा अन्याय है !

उस दिन कला ने बताया था न... ऐसे ही एक दिन, बस में किसी मर्द ने गलत आचरण किया तो कला स्लीपर उतारकर उसे मारने लगी। एकदम काफी बड़ा हो-हल्ला हो गया। कला तो खैर ऐसा कर भी सकती है। लेकिन यह बात डींग ज्यादा लगती है – उसने मारने का विचार भर किया होगा। क्या मैं अब ऐसा नहीं सोच रही हूं? लेकिन क्या एक स्त्री जो कुछ

सोचती है, कर सकती है? और फिर, यह बेचारा शायद सचमुच अनजाने में ही झुकता जा रहा हो। क्या पता बूढ़ा आदमी हो। सोचती हूं, नजर उठाकर देख लूं। लेकिन क्या वह संभव है?... नहीं, यह जानबूझकर ही मेरे ऊपर झुक रहा है। खूब मालूम हो रहा है मुझे। अचानक झटके के कारण जो झुक जाते हैं, वे धीरे धीरे इसकी तरह नहीं सटते। मेरे तो सारे बदन में जलन सी होने लगी है। सोच रही थी, आज तो बारिश है, इसलिए नहाना नहीं है, लेकिन अब घर पहुंचते ही खूब नहाना होगा। अगर कोई महिला भीड़ में फंस जाये तो उसका फायदा उठाकर इस प्रकार की हरकत करने में क्या इन मर्दों को शर्म नहीं आती? यह कैसी मर्दानगी है? इनके घर की स्त्रियां जब बस में चलेंगी तो उनके साथ भी कोई ऐसा ही करेगा, क्या यह विचार इन्हें नहीं आता? हां, इन सब लोगों को यह ख्याल कहां होगा? इनसे तो वह आदमी भला है जो सड़क पर खड़ी किसी औरत का हाथ पकड़कर 'चलोगी?' कहते हुए उसे अपनी तरफ खींच लेता है। निश्चय ही वह भला आदमी होगा। अगर उस औरत की मर्जी हो तो उसी पकड़ में चिपककर चली जायेगी। नहीं तो 'नहीं' कहकर हाथ झटक देगी। यह भी कोई बात है! भीड़ का फायदा उठाकर हम जैसी महिलाओं की लज्जा, संकोच और मान-मर्यादा की मजबूरी का फायदा उठाकर उन्हें इस तरह दबाना—छिः, यह कैसा अनाचार है!

इसके बारे में भी 'संपादक के नाम पत्र' में लिखना है। स्त्रियों के लिए अलग बस होनी चाहिए, इस ध्येय की दृष्टि से यह अच्छा मुद्दा है। तमिल समाचारपत्रों में नहीं लिखना है। अंग्रेजी समाचारपत्रों में लिखने पर ही कुछ प्रभाव पड़ेगा। चार लाइनें हों तो भी चुभती हुई और सुंदर शैली में होनी चाहिए। उसके लिए अगर दो दिन कोशिश करनी पड़े तो भी ठीक है।

स्त्रियों के आने पर मर्दों को उठकर बस में सीट देनी चाहिए। इस पर उन्हें तुरंत दांत दिखाते हुए 'थैंक्स' कहना चाहिए और मर्दों को 'नो मेंशन', यह कैसी मूर्खता है ! मुझे कोई अपनी सीट दे तो भी मैं उस पर नहीं बैठती। यह कौन है, जो मेरा आदर-सत्कार करे ! या, क्या मैं लूली-लंगड़ी हूं, बूढ़ी हूं? कोई महिला को उसके बुढ़ापे या अपंगता का ख्याल करके सीट नहीं देता। वैसे भी मेरी क्या इतनी उम्र हो गयी है? अभी तीस वर्ष की भी नहीं हुई हूं। औरों की भांति मैं 'स्टाइल' या 'फैशन' नहीं करती। ऐसे ही रहती हूं। तब भी देखो, यह यों आकर सट रहा है। अगर 'फैशन' भी कर लूं तो फिर क्या कहने ! पता नहीं, मुझे देखकर इन मर्दों को क्यों ऐसा विचार आता है? मुझे देखकर कोई ऐसा विचार न करे, इसलिए मैं इस प्रकार सादी पोशाक में रहती हूं। मैंने जितने मर्दों को देखा है, सब मेरे साथ ऐसा ही दुर्व्यवहार करते हैं। हां, सभी मर्द। इनमें एक भी अपवाद नहीं है। पिताजी को मैंने नहीं देखा है। बड़ा भाई है। हां, बहुत ही भला है ! मेरे और उसके बीच भाईपने की दीवार खड़ी होकर टोकती है। वरना उसके मन में भी ऐसी ही वासनापूर्ण वृत्ति काम करती है। तभी तो वह मेरे बारे में, जाने कैसी गंदी-गंदी बातें कहकर मुझे डांटता रहता है। किसी के कुछ कहने के ढंग से

ही उसके मन का पता चल जाता है। तभी तो वह कहता रहता है, "तुम मेरी बहन नहीं हो, तुम मेरी बहन नहीं हो !"

मैंने भाई को भी बस में चलते समय देखा है, वह भी ऐसी ही हरकतें करता रहता है। यह जो मुझ पर झुक रहा है, यह उस भाई से कहीं ज्यादा अच्छा है। उस मेरे सहोदर की नजर तो इससे ज्यादा भयंकर होती है। पता नहीं, वह भैया क्या सोचते हुए मुझ पर नजर डालता है, कैसी-कैसी मनगढ़ंत कहानियां भाभी को जाकर सुनाता रहता है। उधर भाभी एक की दस बनाती है। सभी पड़ोसियों के पास जा जाकर अफवाहें फैलाती रहती है।

यह मुझसे सटकर खड़ा हो गया है। क्या इसको भी मेरे साथ कोई नाता जोड़कर कोई नयी अफवाह उड़ानी है? अगर भाई मुझे इस हालत में देख ले तो जरूर यही करेगा। अपने को छोड़कर बाकी सभी मर्दों के साथ मेरा संबंध जोड़ देता है। इस आदमी का चेहरा तक मैंने नहीं देखा। सिर उठाकर देखने की भी हिम्मत न होने के कारण मैं वैसे ही खड़ी हूं। यह काला है या गोरा है? बूढ़ा है कि जवान है? जो भी हो, मुझे क्या? इन लोगों को तो चाहे कोई औरत कैसी भी हो, भीड़ में फंसी मिल जाये तो बस, जैसे उनकी अपनी हो गयी। अगर मेरा भाई यह देख ले तो क्या समझेगा – यह मैं खूब जानती हूं।

मुझे इस स्थिति में देखने पर भाई को लगेगा कि उसने मुझे और इसे, जो मुझ पर पीछे की ओर से झुकता जा रहा है, कई बार एक साथ देखा है – फिर वह मनगढ़ंत बातें करेगा। इस मर्द के मेरे ही साथ नौकरी करने की कल्पना करेगा। बस में चलते वक्त मेरा टिकट भी इसी ने कटवा लिया होगा – वह मान लेगा। मैं जानबूझकर भाई का अपमान करने के लिए ही, उसकी नजर के सामने ही इसके साथ हंस हंसकर बात कर रही हूं – ऐसा वह समझ लेगा। तब चिल्लाकर कहेगा कि 'इसे घमंड हो गया है। उससे पूछने का किसे अधिकार है ! खुद पढ़-लिखकर, ख़ुद नौकरी करके उससे भी बड़ी हैसियत में रहती है, इसको घमंड हो गया है इस पर!' आगे बात यों बढ़ायेगा कि 'कुछ भी कुकृत्य करो, लेकिन क्या इस प्रकार पब्लिक में ख़ुले आम बस में ही करना जरूरी था? इस पर बस के सब यात्री मुझ पर थूकते रहे थे।' वह कहेगा कि इस पर उसका सिर नीचा हो गया और इस सारे कांड को न देख पाते हुए अगले 'स्टाप' पर वह उतर गया था।

भाई ज़ब मुझे इस प्रकार बस में देख लेने की बात भाभी से कहेगा तो भाभी फिर औरों से कहेगी। ये सारी बातें सुनने वालियों में से कोई कहेगी, "अरी ! मैंने भी देखा था। वही आदमी होगा !"

दूसरी कहेगी, "वही आदमी था...या कोई दूसरा?" जवाब में भाभी बोलेगी, "हमें क्या मतलब? जाये भाड़ में। इसीलिए तो निगोड़ी को घर से निकाल दिया है। ये तो अपनी बहन की बदनामी पर दुखी हो रहे हैं। भगवान ने एक ऐसे गुणी पुरुष को जन्म दिया तो फिर उसकी बेइज्जती करने के लिए क्या एक चरित्रहीन बहन को भी पैदा करना था? हे भगवान !" इन

बातों के बहाने मेरी भाभी का हृदय मेरे भाई के प्रति सहानुभूति से द्रवित हो उठेगा !

मेरे बारे में भाई की कही बातें दूसरों को सुनाने के बाद मेरी भाभी लोगों की प्रतिक्रियाएं एकत्र करेगी और फिर भाई के पास जाकर कहेगी, "उससे हमारा कोई मतलब नहीं है – ऐसा सोचने के लिए क्या मन तैयार है? हमारा मन नहीं मानता। न उसका पैसा हमें चाहिए, न दौलत, ऐसा सोचकर हमने उसे घर से अलग ही कर दिया है। इससे उसका कुछ नहीं बिगड़ा। वह तो भली-चंगी है। इसके लिए हम पर कोई उंगली नहीं उठा सकता। वह अगर आराम से रहे तो उसका श्रेय हमें नहीं मिलेगा। लेकिन अगर वह बिगड़ जाये, इधर-उधर तांक-झांक करे तो सभी लोग यही तो कहेंगे न कि यह फलाने की बहन है। उस छोटी सी उम्र में ही वह जो गलती कर बैठी थी, उस पर भाई के नाते आपने उसे सिर्फ फटकारा था और कोई होता तो हंसिया लाकर गला काट देता। आपकी मां का ही कैसा रवैया था, देखा था न आपने। और जब अपनी बेटी को घर से बाहर निकलते देखा तो वे भी उसका हाथ पकड़कर बाहर निकल पड़ीं। वैसे न निकल जातीं तो अपना मकान और चैन की जिंदगी थोड़े ही मिलती ! इधर तीस रुपये किराये वाली इस कोठरी में खटमलों से परेशान होते हुए इन कमबख्तों से उलझते रहने की उन्हें क्या पड़ी थी? असल में वह सब पहले से तय की गयी योजना थी। आपकी बहन की वह करतूत, उस पर आपका नाराज होना और उसे मारकर घर से बाहर निकाल देना – यह सब उन दोनों के लिए अच्छा बहाना बन गया। तभी तो वे बार-बार कहती रहती थीं, 'मैं तो बड़ी बड़ी उम्मीदें लगाये बैठी थी कि मेरा बेटा ऊंची पढ़ाई करके ऊंची नौकरी करेगा, मेरी सारी मनोकामनाएं पूरी होंगी ! मगर वह तो हाई स्कूल परीक्षा में ही तीन तीन साल बैठा रहा। अब यह मेरी बेटी है, देख लेना, पूरे प्रांत में फर्स्ट आयेगी और कलेक्टर भी बनेगी। भगवान उसकी आयु लंबी करें।' वे जो कहती रहती थीं, उनकी वह इच्छा भी पूरी हो गयी। उसकी बेटी ऊंची पढ़ाई करके ऊंची नौकरी पर चली गयी। अब वह चाहे किसी के भी संग घूमे, उन्हें क्या? लेकिन हमारा तो सिर नीचा हो रहा है – 'फलाने की बहन, फलाने की बहन' करके जग-हंसाई हो रही है। एक आप हैं जो बार-बार अपनी उस प्यारी मां को देखने के लिए चले जाते हैं। उनसे यह भी एक बात कह देना – इस पंचवटी के पास में जो 'पार्क' है उसमें रात के सात बजे के बाद वह निगोड़ी आकर खड़ी रहती है। पढ़ना-लिखना ही क्या काफी है? हमारे परिवार के बारे में कोई कुछ कहता है तो लगता है जैसे मुझे सुई चुभा रहा हो !"

जब भाभी बोलना शुरू कर देती है तो भाई उसके रुकने तक बीच में एक शब्द नहीं कहता, जैसे कोई 'मंत्रोपदेश' या 'प्रवचन' हो रहा हो। ध्यान से चुपचाप सुनता रहता है।

"हां-हां, ठीक है। इसके लिए तुम मुझे क्या करने को कह रही हो?" दांत पीसते हुए आखिर भाई बोल उठेगा, "मेरे कहने पर जैसे वह तुरंत मान जायेगी !"

"माने या न माने, हमारे कानों में जो बातें पड़ती हैं, उन्हें कह भर देना है उससे। उसके

बाद तो आपकी वह मां जाने ! उनकी यह बेटी जाने ! उसका भाई होकर जन्म लिया है, इस पाप के कारण आपका सिर नीचा हो रहा है। इसीलिए मैंने कहा। वरना मुझे क्या पड़ी है...?"

...क्रीं क्रीं... आवाज करती हुई बस ऐसे रुकी जैसे किसी से टकरा गयी हो। मेरे पीछे खड़ा आदमी खूब जी भरकर मुझसे टकरा लिया। उसे बड़ी तृप्ति हुई होगी ! मगर इस बार उसकी गलती नहीं है।

हां, मैं तो 'संपादक के नाम पत्र' के बारे में सोच रही थी। कितनी बार, कितने ही विषयों पर लिखने का मैंने विचार भी किया। यह सब सोचना भर है। फिर वह विषय पुराना पड़ जाता है। सोच सोचकर उसके पुराने पड़ जाने पर मैं स्वयं उससे ऊब जाती हूं, "छोड़ो भी लिखने भर से क्या हो जायेगा !" बस, वह बात वहीं रह जाती है।

कभी कभी 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ में बड़े रोचक पत्र छपते हैं। मैं अखबार में जो विषय बड़ी रुचि से पढ़ती हूं, वह यही है। फिर...फिर...'मेट्रिमोनियल' वाला स्तंभ बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ती हूं। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं किसी विज्ञापन के उत्तर में कुछ लिखना चाहती हूं या किसी को 'एप्रोच' करना चाहती हूं। फिर भी उस स्तंभ में एक रुचि है। वह सचमुच बड़ा दिलचस्प है। मेरी तो शादी ही नहीं होगी। नहीं करनी है – ऐसा मैंने बहुत पहले से तय कर लिया है। शायद इसीलिए शादी की बातों में मेरी दिलचस्पी बढ़ रही है। इसमें कोई बुराई भी नहीं।

लगता है, 'एगमोर' स्टाप पर आकर बस खड़ी हो गयी है। सारी खिड़कियां पर्दे से ढकी हैं, इसलिए कुछ पता नहीं चल रहा। वहुत से लोग धड़ाधड़ उतर रहे हैं। बाहर पानी बरस रहा है।

"एगमोर आ गया है, जल्दी उतरिए," कंडक्टर आवाज दे रहा है। कई लोग धक्का-मुक्की करके चढ़ रहे हैं। कुछ 'लेडीज सीटें' खाली हुई हैं। मैं 'धम्' से बैठ जाती हूं। अब तीन ही स्टाप बचे हैं। फिर भी इस ऊपर सटने वाले सांड से तो बच गयी। अब जाकर उसकी ओर नजर डालती हूं। चेहरा देखा। यह हंसना क्यों? बेशरम लुच्चा है। माथे पर बाल बिखरे हुए। बस में 'लव' करने वाले सभी चेहरे एक जैसे होते हैं। उसने ध्यान नहीं दिया होगा कि मैंने उसे गौर से देखा है। हैंडबैग से इस सप्ताह की पत्रिका निकाल चेहरे के सामने खोलकर फैला लेती हूं। उसके बाद उस आदमी का ख्याल ही नहीं रहा।

दोपहर, लंच के समय जिस कहानी के दो पन्ने पढ़े थे, उसी को पलटकर देखती हूं। आर.के.वी. की लिखी हुई कहानी है, जिसमें मेरी जिंदगी से मिलती-जुलती घटना है। मुझे उनकी कहानियां पसंद है। मुझे तो लगता है कि आर.के.वी. नाम से कोई औरत ही लिखती है। शायद यही कारण है कि उनकी सारी थीम्स आजकल की लड़कियों से संबंध रखती हैं।

आर.के.वी. की कहानियों के बारे में दफ्तर में बड़ा विवाद चलता रहता है। मैं तो किसी

भी चर्चा में भाग नहीं लेती। कभी जब कोई गलत ढंग से बोलता है तो मुझे हंसी आती है और कभी कभी गुस्सा।

वे समझते हैं – साहित्य में मेरी रुचि नहीं है? उनकी बातों से उनके बारे में भी मैं वही सोचती हूं।

मेरी अभिरुचि मेरे साथ है। दूसरों पर मैं उसे क्यों प्रकट करूं? ठीक है, कहानी पढ़ें, यह आर.के.वी. की लिखी है।

"...जो उसे देखते हैं, उन्हें उस नये नये खिले फूल की याद आती है जिसमें विलक्षण सादगी से भरा दुर्लभ सौंदर्य मूर्तिमान हो गया है। इस समय वह बारिश में भीगती हुई रुक रुककर आ रही है। उसके हाथ और पैर जैसे हाथी-दांत के बने हैं, उसके बदन पर एक पुरानी फटी हुई साड़ी है। पानी से भीगकर साड़ी और चोली बदन पर चिपक गयी है। अपने छोटे कद में वह देवी की प्रतिमा की तरह लग रही है। इच्छा होती है कि वैसे ही हाथों पर उठाए ले चलें..."

आर.के.वी. को ही ऐसा लिखना आता है ! वाक्य चाहे जितने भी लंबे हों, पढ़ते समय उस बात का ख्याल ही नहीं आता। मन में जैसे चित्र उभरते चले जाते हैं...

मैं भी उस दिन—बारह वर्ष पहले—इसी प्रकार खड़ी थी। पुरानी साड़ी और चादर ही थी। वह भी मां की साड़ी से फाड़ा हुआ टुकड़ा ही था, उसी को मैं अक्सर पहनकर जाती। मैं भी छोटे कद की देवी की प्रतिमा जैसी रही हूंगी। यह क्या, मेरी ही कहानी तो नहीं है? ...मैं आगे पढ़ने लगी।

"उस विशाल मार्ग के नीरव और निर्जन परिवेश में वह अकेली खड़ी है। उसका साथ देती हुई वह बूढ़ी गाय भी खड़ी है। थोड़ी दूर, सामने कालेज के अहाते में कभी कोई चलता-फिरता नजर आ जाता है। अचानक मानो कोई पर्दा गिर रहा हो, इस तरह चारों ओर अंधेरा घिर आता है। अंधेरे में मूसलाधार बरसता पानी। वह लड़की एक पेड़ से सटकर खड़ी हो जाती है। बारिश कुछ थमकर फिर जोरों से होने लगती है। वह लड़की सामने की सड़क पारकर फिर कालेज के भीतर दौड़ जाने की चेष्टा करती हुई सड़क के दोनों ओर दृष्टि दौड़ाने लगती है। इतने में एक बड़ी कार तेजी से उसके सामने से आती है जैसे उससे टकरा जाना चाहती हो, फिर 'सर्र' की आवाज के साथ उस लड़की से सटकर खड़ी हो जाती है। खड़े होने के झटके में कार आगे-पीछे हिलने लगती है।

लड़की कार में पीछे से आगे के हिस्से तक, जहां ड्राइवर की सीट है, दृष्टि दौड़ाती है। अचरज के साथ उसे देखती है। कार चलाने वाला सुंदर युवक मोहक मुस्कान के साथ पीछे की ओर झुककर बांह फैलाता है और पीछे वाली सीट का दरवाजा खोल देता है।

"प्लीज, गेट इन...आय केन ड्राप यू एट् यूअर प्लेस," कहकर वह व्यक्ति भी अपनी बड़ी-बड़ी पुतलियों से उसे उसी प्रकार विस्मय से देखता है, जिस प्रकार वह लड़की उस पुरुष

की कार को देख रही है।

पुरुष के चेहरे की ओर नजर दौड़ाते हुए लड़की की कनपटियों और नाक के सिरे पर लालिमा छा जाती है, "नो..थैंक्स ! थोड़ी देर बाद, बारिश थम जाने पर, बस से चली जाऊंगी... ।"

"अरे ! कोई बात नहीं, बैठ जाइये।" कहकर वह उसे प्रेरित करता है। उस मूसलाधार बारिश में बस, हाथ पकड़कर खींचने की कसर थी।

वह एक बार मुड़कर अपने पीछे की तरफ देखती है। बारिश से रक्षा करने वाली जगह पर यानी पेड़ के नीचे अब एक बूढ़ी गाय भी आ खड़ी हुई थी।

उसके सामने कार का दरवाजा अभी खुला ही है। उसके लिए खोल दिये गये उस दरवाजे से होकर वर्षा की बौछार कार के भीतर पड़ रही है, यह देखकर वह उस दरवाजे को बंद करने लगती है, तब उस व्यक्ति का हाथ झट उस लड़की के हाथ पर पड़ जाता है और वह उसे धीरे से दबा देता है। चौंककर वह अपना हाथ खींच लेती है। उसके मुंह की ओर वह देखती है। वह भी कैसे सुंदर ढंग से मुस्कुरा रहा है।

अब वह व्यक्ति भी कार से बाहर आ जाता है और उसके साथ वर्षा में खड़ा भीगता रहता है।

"प्लीज, गेट इन... ।"

अब तो उस निमंत्रण को वह मना नहीं कर सकी। जैसे ही वह कार में बैठी, उस व्यक्ति का हाथ उल्लास में 'धड़ाक' से दरवाजा बंद कर देता है। सड़क पर वह कार सरपट यों सरकती-फिसलती है जैसे लहरों पर तैर रही हो।

उसकी दृष्टि कार के भीतर चारों ओर दौड़ती है। कार के भीतर का वह नीला सा हल्का प्रकाश आंखों को ठंडा और मन को मोहक लगता है। अब तक वर्षा की ठंड में खड़े रहे बदन को कार के भीतर की गर्मी सुखद लगती है। मालूम नहीं हो रहा था कि कार जमीन पर दौड़ रही है। मानो धरती से थोड़ा ऊपर ही तैर रही है।

सीट कितनी चौड़ी है ! एक व्यक्ति आराम से लेट सकता है। यह ध्यान आते ही उसे लगा कि छाती पर किताबों का बंडल दबाए उसका एक कोने में सिकुड़कर बैठे रहना असभ्यता का लक्षण है। किताबों का बंडल और टिफिन-बाक्स एक ओर सीट पर रखकर फिर भली-भांति सरककर सीधी बैठ जाती है।

"यह कार एक घर जैसी है ! ऐसी कार पास में हो तो फिर घर की भी जरूरत नहीं है।" हाय ! हाय ! इस आदमी को यह नहीं कहना चाहिए था। इन सज्जन का घर भी तो ऐसा ही होगा न।...कार ही ऐसी है तो इस कार के मालिक का घर कैसा होगा? बड़ा होगा। राजमहल जितना बड़ा। वहां कौन-कौन रहते होंगे? मुझे तो यह भी पता नहीं कि यह कौन है। अरे! यह क्या है बीच में? दोनों सीटों के बीच मेज जैसा निकल रहा है। इस पर किताब

रखकर पढ़ सकते हैं, लिख सकते हैं। नहीं तो इस तरफ एक व्यक्ति और उस तरफ दूसरा व्यक्ति सिर रखकर आराम से लेट सकते हैं। यह छोटी सी लाइट कितनी सुंदर है। जैसे कमल की कली हो। क्या इसे जलाकर देखा जाये? छिः ! ये नाराज हो गये तो?...

"उसके नीचे ही स्विच है, देखो," वह कार चलाते हुए ही आगे की तरफ ऊपर लगे छोटे शीशे में देखकर मुस्कुराता है।

वह उस स्विच को दबा देती है और उस बत्ती के जलने का सौंदर्य तन्मय होकर देखती है, फिर यह सोचकर कि बैटरी को बेकार नहीं खर्च करना चाहिए – किफायत की भावना से बत्ती बुझा देती है।

फिर अपनी ओर एक बार देख लेती है। सिर से बहने वाले पानी को दोनों हाथों से पोंछ लेती है।

हूं...आज के इस दिन ही उसने इस फटे-पुराने कपड़े को ऊपर ओढ़ रखा है – मन ही मन वह झुंझला उठती है। ऊपर की चादर का कोना निचोड़कर सुखाने की चेष्टा करती है। तभी वह आदमी बाएं हाथ से 'स्टियरिंग' के बगल के बक्से का छोटा ढक्कन खोल देता है। 'टप' आवाज सुनकर वह सिर उठाकर देखती है। ढक्कन के खुलते ही भीतर एक लाल बत्ती जलती हुई दिख रही है। तभी वह आदमी एक छोटा तुर्की रूमाल निकालकर पीछे उसकी ओर बढ़ा देता है।

"थैंक्स !" रूमाल लेकर सिर और कुहनियां पोंछने के बाद मुंह पोंछने लगती है – बाप रे, कैसी खुशबू है ! मुंह पर रूमाल दबाए उस सुख को महसूस करती रह जाती है।

मोड़ पर कार घूमती है तो वह 'ओ माइ गाड !' कहकर एक ओर फिसल पड़ती है, सीट पर किताबें भी सरक जाती हैं, गोलाकार 'टिफिन' एक ओर लुढ़क जाता है।

"सारी !" कहता हुआ मुस्कुराकर वह पीछे देखता है, फिर कार को धीमी गति से चलाने लगता है। डर के मारे उसकी चीख निकल गयी थी – इस पर लज्जा का अनुभव करती हुई मुस्कुराहट के साथ किताबें समेट सीधी बैठ जाती है।

खिड़की के शीशे से बाहर देखने पर कुछ भी नजर नहीं आ रहा है। शीशे पर पानी की बूंदें धुएं के समान फैली हुई हैं। अपनी चादर के कोने से पोंछकर वह बाहर नजर दौड़ाती है।

सड़क पर बत्तियां जल रही हैं। सजी हुई दुकानें रोशनी से जगमगा रही हैं, जो रास्ते के पानी में प्रतिबिंबित होकर आंखों को चुंधिया देती हैं।

कहते हैं – भू लोक के नीचे कोई और भी लोक है – वैसा ही लग रहा है...।

यह क्या, कार इस गली में क्यों जा रही है?

"वो, हमारा घर वहां है," उसके ओंठ हिलकर धीमी आवाज में गुनगुना उठते हैं।

"रहने दो। किसने कहा कि नहीं है?" कहकर वह भी गुनगुनाता हुआ मुस्कुराता है।

"अरे ! यह तो झंझट हो गया !" वह सोचती हुई हाथ मलती रही, फिर भी जब कभी वह आदमी उसकी ओर देखता वह उसकी तृप्ति के लिए मुस्कुराती रही।

कार दौड़ती रही।

नगर के बाजारों को पारकर, बड़े बड़े भवनों की पंक्तियों का विशाल मार्ग लांघकर, रमणीय प्रासाद तथा फुलवारियों से भरी 'एवेन्यूज' में घुसकर नगर के कोलाहल से शून्य किसी निर्जन मेन रोड पर कार चलती रही।

"टी.बी. हास्पिटल....टी.बी. हास्पिटल !" कंडेक्टर ने मेरे ही लिए दो बार आवाज कुछ तेज करके कहा। बाहर खूब पानी बरस रहा है। सवेरे दफ्तर के लिए चलते समय तेज धूप थी। इसलिए मैं छाता नहीं लायी। अब बस से उतर आऊं तो 'बस स्टाप' वाली भीड़ के साथ किनारे हटकर खड़ा रहना होगा। इससे तो यही बेहतर है कि इसी बस में बैठे बैठे 'मांबलम' के बस टरमिनस तक चली जाऊं और कहानी पढ़ती जाऊं। फिर इसी बस से वापस लौटकर आ जाऊं। यही ठीक रहेगा।

"मांबलम के लिए एक टिकट।" कहकर मैं उठी, टिकट कटवाया और फिर यथास्थान बैठ गयी।

वह 'सटकर आने वाला सांड' भी आगे की सीट पर बैठा हुआ मुड़ मुड़कर मेरी तरफ देख रहा है। हाय रे ! कहीं ऐसा तो नहीं समझ रहा है कि मैंने इसके पीछे चलने के इरादे से ही टिकट खरीद लिया है।

बस चल पड़ी।

मैं फिर कहानी पढ़ने में डूब गयी।

यह तो मेरी कहानी जैसी ही है। अंत कैसा होगा? पता नहीं – मेरी आंखें क्यों छलछला उठी हैं?

अकस्मात् गड़गड़ाहट के साथ बादल गरज उठते हैं। उस दिन भी ऐसा ही गर्जन हुआ था।

लो, आर.के.वी. की कहानी का एक अध्याय समाप्त हो रहा है, इस वाक्य के साथ – 'गगन जैसे फट पड़ा। बिजलियां कड़ककर छितरा उठीं। गर्जन की ध्वनि प्रतिध्वनित होकर फूट पड़ी।'

हाय ! वह गाज कहां गिरी होगी?

और कहां, वह गाज मेरे ही सिर पर गिरी थी।

2

सवेरे दस बजे गंगा दफ्तर चली जाती है तो कनकम फाटक बंद करके सांकल लगा लेने के बाद धरती पर पड़ी पड़ी, शाम के चार बजे तक रोती ही रहती है। पिछले एक हफ्ते से यही सब हो रहा है।

चार वजे दूध वाला आकर दरवाजा खटखटाता तो उठकर मुंह धो लेती और फिर रसोई का काम शुरू कर देती। तब भी वह सुबककर रोती ही रहती।

पिछले सप्ताह एक दिन पानी बरसा था न, उस रोज गंगा दफ्तर से काफी देर बाद लौटी थी। बरसते पानी में बिना छाते के दफ्तर से निकली होगी, शायद बस स्टाप पर ही खड़ी रह गयी हो — यह सोच बेचैनी के साथ, कनकम ने घर का फाटक बंदकर ताला लगाया और हाथ में छाता लिये एक घंटे से ज्यादा देर तक वेटी की प्रतीक्षा करती वस स्टाप पर खड़ी रही।

आखिर आठ बजे के बाद, जब वर्षा थम चुकी तो कनकम ने देखा कि गंगा अपने दफ्तर के मार्ग से नहीं आ रही, बल्कि सामने वाले मार्ग पर एक बस से उतरकर चली आ रही है। इस किनारे के बस स्टाप से कनकम ने गंगा को देख लिया था, लेकिन उसका नाम लेकर पुकारने में संकोच करती हुई जल्दी जल्दी दौड़कर सड़क पार करने लगी। फिर भी उसकी चाल से होड़ लगाती हुई वह गंगा के पास पहुंच नहीं पायी। आखिर घर के पास आकर ही गंगा के पास पहुंच सकी थी...।

घर को बंद देखकर गंगा कहीं चौंक न पड़े, इसलिए कनकम ताला खोलते हुए कहने लगी, "शाम से ही पानी बरस रहा है। तुम तो छाता भी नहीं ले गयी थीं। तुम कहीं बस स्टाप पर ही न खड़ी रह गयी हो, यह सोचकर मैं बस स्टाप तक गयी थी। छिः ! कैसी बारिश है, सड़क पर बत्ती भी नहीं है...पैर में एक कंकड़ चुभ गया...बस स्टाप से ही मैंने तुम्हें देख लिया था...मुझसे तेज चला नहीं जाता न? लड़खड़ाती हुई दौड़ी आयी...।" कनकम अपनी बेटी का मुंह नहीं देख रही थी, जैसे और किसी से कह रही हो ! फिर यह सोचकर कि इस कष्ट के लिए गंगा शायद कम से कम एक मुस्कुराहट तो जरूर दिखायेगी, उसने गंगा की तरफ देखा। लेकिन गंगा मानो कनकम की बात सुन नहीं रही थी। गंगा ने कनकम को इस प्रकार देखा जैसे कोई गंभीर चिंतक अपने पास खेलने के लिए आती हुई अबोध बालिका की ओर देखता है। कनकम गुमसुम होकर रह गयी, जैसे कोई बड़ा अपराध कर डाला हो...।

"इसे पढ़कर देखो,"...गंगा ने साधारण शब्दों को असाधारण कोप के साथ कहा और

इतना भी नहीं किया कि उस पत्रिका को कनकम के पसारे हुए हाथ में रख दे। पत्रिका को नीचे पटका और अपने कमरे के भीतर जाकर किवाड़ बंद कर लिये और खाना खाये बिना ही सो रही।

उस रात कनकम ने 'हाल' का दीया नहीं बुझाया। उसी कहानी को बार बार पढ़ती और रोती रही।

उसी दिन से कनकम कोई बात याद करती हुई रह रहकर रोती रहती है।

वह चोरी-छिपे रो रही है। गंगा को पता तक नहीं कि उसकी मां रो रही है। पता होने पर भी वह इसकी चिंता नहीं करती। जहां तक उसका संबंध है काफी पहले ही उसने यह तय कर लिया था कि अश्रुजल एक प्रकार का अशुद्ध जल है। गंगा नहीं रोती। कनकम का रोना भी न तो गंगा के मन को बदलने के लिए है, न सांत्वना देने के लिए। चुपचाप अकेले में कनकम बस रोती रहती है।

मां बेटी दोनों इन बारह वर्षों में उन दो वर्षों को छोड़कर, जब गंगा होस्टल में रही, एक दिन भी अलग नहीं हुई। एक साथ ही रह रही हैं। साथ खाना खाती हैं, सोते वक्त एक-दूसरे को देखकर सोती हैं, जागते हुए एक-दूसरे पर आंखें खोलती हैं, एक-दूसरे का सहारा बनी हुई हैं। उन दोनों का और कोई साथी नहीं है। इस प्रकार एकांत जीवन बिताते रहने पर भी उन दोनों के बीच एक विशाल खाई पैदा हो गयी है। जिस प्रकार गंगा लोगों और अपने रिश्तेदारों से अलग होकर रहती है, उसी प्रकार अपनी मां से भी अलग होकर ही रहती है।

उसे अपनी मां को 'मां' पुकारे बारह बरस बीत गये हैं। कनकम की इतनी आयु हो गयी, लेकिन उसने इन दस वर्षों में ही अच्छा और सुखमय जीवन बिताया है।

'बहन जी, थोड़ी सी यह चीज दीजिए।' कहकर उसने इन दस वर्षों में किसी से कुछ नहीं मांगा। दस वर्ष पहले बिना मांगे चलता ही नहीं था। गंगा अपनी मां को सुखी रखती है। किसी दिन सवेरे जागते समय अगर कनकम खांस दे तो निश्चय ही नौ बजे डाक्टर आ पहुंचते हैं। अगर कभी वह अपनी साड़ी का कोना सीती हुई दिखाई पड़े तो उस दिन शाम तक नयी साड़ी घर आ जाती। महीने के आखिरी दिन गंगा कनकम के हाथ में सौ सौ के दो नोट थमा देती। फिर उसका हिसाब तक नहीं पूछती। वह जमाना बीत गया जब कनकम हाथ में बर्तन लिये, साथ के किरायेदारों और पड़ोसी परिवारों में जा जाकर काफी पाउडर, चीनी, दाल आदि मांगती रहती थी। अब तो ऐसी सुविधा है कि जो भी मांगने के लिए आ जायें, उन्हें दे सकती है। पचास बरस की उम्र में एक विधवा नारी को इससे बढ़कर और क्या चाहिए?

कभी गणेश आ जाता। आधे दर्जन बच्चों के साथ तीन सौ मासिक वेतन पर तीस रुपये वाले मकान में रहते हुए, साथ के किरायेदारों के साथ जीवन बिताने में जो जो कष्ट होते हैं, उन सबका दुखड़ा रोता। फिर भी उसने यह अपेक्षा कभी नहीं की थी कि बहन के पैसों में से मां उसे कोई रकम दे दे। वैसे देने पर भी उसमें इतना आत्मसम्मान है कि उठाकर

फेंक देता। वह शहर भर में उधार लेता फिरता है। मां तरसती कि गणेश उससे कभी कुछ मांग ले। न गणेश ने कभी मांगा, न उसने कभी दिया। फिर भी गणेश यहां आता है।

वह आकर हाल में बैठ जाता और गंगा के बारे में शिकायत करता। कनकम उसका जवाब देती हुई उससे लड़ पड़ती। जब तक गणेश वहां से न हटे, तब तक गंगा अपने कमरे से बाहर नहीं निकलती। कनकम अपनी इच्छा से गणेश के बच्चों के लिए कपड़े बनवा दे, पकवान बनाकर दे आए, विशेष दिनों में उन बच्चों की फौज को यहां लाकर घर भर को गुंजा दे तो भी गंगा कुछ नहीं कहती।

कनकम की धारणा है कि इन सब बातों से गंगा को मन ही मन एक प्रकार का संतोष होता है।

कनकम जो भी करती है, वह अपनी बेटी की खुशी के लिए ही है। फिर भी उस बेटी का जीवन ऐसा है कि अब आगे बढ़ाया नहीं जा सकता, वह तो बंद हो गया है, समाप्त हो गया है, अधूरा है। यह सोचकर मन ही मन कनकम दुखी होती है।

उस स्मृति को दुःस्वप्न के समान भुला देने का वह प्रयत्न करती रहती है, लेकिन फिर भी बार बार याद आने पर बेचैन होती रहती है।

जिस दिन गंगा यह कहकर कि 'इसे पढ़कर देखो' पत्रिका पटककर गयी, उस दिन तक कनकम को इसका बिल्कुल भान ही नहीं था कि गंगा के मन में इतना गहरा क्रोध, इतनी तीक्ष्ण घृणा जमा है।

कनकम दिन रहते रसोई का काम पूरा कर, घर का बाकी काम निपटाकर बाहर का दरवाजा खोलती और सड़क पर दृष्टि दौड़ाती। तब तक सड़क की बत्तियां जलने लगती हैं। स्विच दबाकर बाहरी बरामदे की बत्ती जला देती और भीतर पूजा-गृह में जाती, भगवान की मूर्ति के सम्मुख दीप जलाकर रखती। फिर हाथ में कोई पत्रिका लिये, बाहरी दरवाजे के पास छोटे चबूतरे पर बैठकर पढ़ने लगती। नहीं तो सड़क पर नजर लगाए रहती। ये उसकी शारीरिक क्रियाएं हैं, लेकिन उसके मन में बजता रहता, 'वह अभी दफ्तर से नहीं आयी।' बाहर गयी हुई अपनी लड़की जब तक घर वापस नहीं आ जाती, मां का मन घबराता रहता। उसकी बुद्धि को पता है कि इस चिंता का कोई अर्थ नहीं है। फिर भी मन परेशान रहता। सोचती कि कुछ हो न गया हो।

गंगा किस समय घर लौटेगी — इसका कुछ निश्चित नहीं है। किसी दिन पांच-साढ़े पांच बजे लौट आती तो किसी दिन उसे घर पहुंचने में छह-सात भी बज जाते। उससे पूछ कौन सकता है?

क्यों पूछना है? मेरी बेटी गलत रास्ते पर जाने वाली नहीं है। वह एक संन्यासिनी का जीवन ही तो बिता रही है...। दूसरी लड़कियों की तरह क्या कभी वह सिनेमा, ड्रामा, संगीत सभा या कहीं जाती है? सिनेमा-ड्रामा की बात रहने दो...जहां चार जने इकट्ठे हों, वहां वह खड़ी

भी नहीं रहती... । उसे तो लोगों के चेहरों मात्र से ही घृणा है । इसलिए वह मेरी तरफ भी ज्यादा नहीं देखती । मैं सड़क की ओर नजर गड़ाए बैठी हूं । वह देखो, सामने वाले घर में भी एक लड़की बाहर आकर खड़ी है । क्या कोई औरत ऐसी है जो ड्योढ़ी पर आकर खड़ी न हो? वह मेरी गंगा ! जिस घर में लड़की ड्योढ़ी पर खड़ी न हो, उसकी क्या शोभा ? जो गृहस्थ लोग रहते हैं, उस गली में कोई लड़की ड्योढ़ी पर खड़ी रहे तो कोई उसे बुरा नहीं मानता । कोई यह देखने के लिए खड़ी रहती है कि संगीत-सभा में गया हुआ उसका पति लौटकर आ रहा है या नहीं । चूल्हे पर बर्तन रखकर नौकरानी को पांच पैसे की राई खरीद लाने भेज दिया तो वह लौटकर आ रही है कि नहीं – यह देखने के लिए कोई ड्योढ़ी पर आकर खड़ी हो जाती है । स्कूल गया हुआ बच्चा खुद लौट आयेगा, लेकिन फिर भी उसके आने की शोभा देखने के लिए मां ड्योढ़ी पर आकर प्रतीक्षा में खड़ी रहती है । यह सब हर कहीं होता है । इसी घर का ऐसा भाग्य नहीं है कि... ।

हमारी गंगा तो सड़क पर होने वाला कोई तमाशा देखने के लिए भी घर के बाहर आकर खड़ी नहीं होती । गली में मंदिर में भगवान की शोभा-यात्रा निकलती है, बारातें गुजरती हैं, मैं ही ऐसी हूं कि कोई 'डम' आवाज आ जाये तो बस, रसोई का काम वैसा ही छोड़कर बाहर दौड़ी चली जाती हूं । वह तो कमरे के भीतर ही दरवाजा बंद किये पढ़ती-लिखती या कुछ काम न हो तो चुपचाप सीधी लेटी हुई छाती पर हाथ रखे छत की ओर टकटकी लगाये देखती रहती है ।

उसके कमरे का किवाड़ खटखटाने में भी मुझे डर लगता है । मेरी अपनी जाई बेटी है – ऐसा अधिकार तो मिट गया । मुझे तो अब उससे डर सा लगने लगा है ।

ऐसी ही रह जायेगी तो क्या होगा?

और किस ढंग से यह रह सकेगी?

अगर वह किसी बात पर मुझसे बोले, तभी न मैं भी उससे बात कर पाऊंगी । वैसे बोलने के लिए क्या है? बस...कुछ भी नहीं । वह दफ्तर जाती है, फिर वापस आती है.. । मुझे तो जब तक जिंदा हूं, रोज रसोई बनानी है और ड्योढ़ी पर बैठ उसके आने का इंतजार करना है । बस, मेरी जिंदगी इतनी ही तो है । हे माई ! ऐसा भी दिन होगा जब सवेरे आठ बजते बजते यह मेरा हाथ इमली न निचोड़ रहा हो? इमली निचोड़ते निचोड़ते ही मेरा जीवन भी निचुड़ गया । हां ! अब मेरी कहानी कितने दिन तक चलेगी? उसके बाद इस पद पर काम करने के लिए कोई रसोईयिन नहीं मिलेगी क्या? लेकिन गंगा तो ऐसी ही रहेगी...ऐसी लड़की के बारे में ये लोग क्यों कुछ कहने लगते हैं? पिछले महीने आया था न गणेश... । उस समय गंगा अपने कमरे के भीतर ही थी । न जाने गणेश को इसका पता था भी या नहीं । उसने कैसी कैसी बातें कह डालीं ! लेकिन गंगा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । वह इस प्रकार निरपेक्ष भाव से कमरे के भीतर पड़ी रही जैसे मुझसे कोई भी व्यक्ति कुछ भी कह जाये, उसे कुछ परवाह

नहीं है। इन नीच लोगों में रत्ती भर भी मान-लज्जा होती तो गंगा के बारे में अपनी जीभ से एक शब्द तक न निकालते ! वह चाहे जैसी भी हो। उसके बारे में बोलने का इन्हें क्या अधिकार है?

हमारी गंगा कुछ भी करे – खुले आम, मुक्त रूप में करती है। खिड़की के किनारे, किवाड़ की आड़ में शरमाती हुई खड़ी नहीं रहती। झांककर नहीं देखती। आड़ में खड़ी होकर दूसरों की बातें नहीं सुनती। अगर किसी को देखना हो तो चाहे कोई भी हो, सामने आकर भौंहें चढ़ाकर देखती है। कोई बात पूछनी हो तो बात को खोलकर साफ साफ पूछती है। वैसे अनावश्यक ही किसी की ओर नहीं देखती। अपने काम से काम रखती है, बस !

'मां। यह मेरी सहेली है', कहकर अब तक यह किसी लड़की को घर नहीं लायी है। क्या इसके दोस्त भी हैं? क्या किसी से यह हंसकर बात भी करती है? जहां नौकरी करती है, क्या वहां भी ऐसी ही रहती है? विचार करते हुए भी आश्चर्य हो रहा है...।

कोई कोई लड़की तो ऐसी है कि पचास रुपये मासिक कमाने वाले आदमी को ब्याह कर, जिस किसी आटे को घोलकर चेहरे पर पोतकर, पुतलियों से लेकर कान तक कोयले की लकीर सी खींचकर...हाय ! हाय ! क्या क्या सूरत बना लेती हैं!...पता नहीं गंगा का मासिक वेतन कितना है? यह भी मुझे नहीं मालूम है ! गणेश कहता है – सात-साढ़े सात सौ होगा। साबुन लगाकर चेहरा धो लेती है, बस इतना ही, तिलक तक नहीं लगाती।

लोग, पता नहीं, फिर भी इसके बारे में क्या-क्या कहते हैं। गंगा टहलने जाती है...इसे एक बहुत बड़ी बात मानकर गणेश कहने आ गया। उस तिरुवल्लिक्केणि की तंग गली में, जहां पेशाब की बदबू भरी रहती थी, जब हम लोग रहते थे तो सैर-सपाटे की गुंजाइश नहीं थी। वहां टहलने जाना होता तो घर से 'बीच रोड' तक एक लंबी यात्रा करनी पड़ती। गंगा की मर्जी है – वह जो चाहे करेगी।

उसकी कोई सहेली है नहीं। कहीं चली जाये, ऐसा कोई और घर नहीं है। मंदिर में भी नहीं जाती। घर में भी भगवान की मूर्ति को नमस्कार नहीं करती। मैं ही हूं जो अपनी आदत के अनुसार पूजा के घर में दीया जलाकर रख देती हूं।

कुछ भी सोचती हुई, कुछ दूर, वैसे ही गंगा पैदल चली आती होगी। सवेरे जाती है, शाम को भी। सवेरे टहलकर लौटती है तो नहाती है। शाम को दफ्तर से घर लौटकर नहा लेती है, फिर टहलने जाती है। इसे एक बड़ी बात मानकर यह गणेश तिरुवल्लिक्केणि से दौड़ा आया मुझसे कहने के लिए। उसकी औरत ने पुर्जा घुमाकर दौड़ाया होगा। यह जीव वहां से यहां आकर नाचता है।

गंगा ने 'इसे पढ़ो' कहकर यह पत्रिका इस तरह पटक दी थी जैसे मेरे मुंह पर मार रही हो। कहानी में लिखा है कि उस दिन भी वर्षा लगातार हो रही थी। मैं भी यह न सोचकर *कि यह मेरी जाई बेटी है,* पिशाचिनी की तरह गंगा को पीटने लगी थी। सिर के बाल कसकर

पकड़ लिये और उसे दीवार पर दे देकर मारा था। उसके ओंठ सूज गये, बुखार चढ़ गया था। उस पापी गणेश ने कहा था कि अब यह क्षण भर भी मेरे घर में नहीं रह सकेगी और गर्दन पकड़कर धकेलता हुआ गली में ले गया और धक्का मारकर बाहर निकाल दिया था।

बाहर ड्योढ़ी में बेटी लाश जैसी होकर पड़ी थी। यह कोख जिसने इसे जन्म दिया, मानती है क्या? मैं दौड़कर गयी और अपनी बेटी को उठा लिया। "अगर तुम्हें अपनी लड़की इतनी प्यारी है तो तुम भी घर से निकल जाओ" – कहकर गणेश ने किवाड़ भेड़ लिये और घर के भीतर चला गया। मैंने अपनी बेटी को वैसे ही गोद में भरकर बाहर चबूतरे पर लाकर लिटा दिया। सब लोग सारी बात जान गये और उपहास-भरी दृष्टि से हमारी तरफ देख रहे थे, जैसे हम कोई तमाशा हों !

मैं वड़ी पापिन हूं। उस वक्त भी बेहोश पड़ी लड़की को जोर जोर से पीटते हुए कह रही थी, ''अरी, मर जा, मर जा।'' बेहोश पड़ी बेटी को पीटा है – यह सोचकर मैं स्वयं अपनी छाती, अपना मुंह पीट लेती। आस-पड़ोस के सारे लोग आकर समझाते रहे, हम दोनों को चबूतरे पर विठाकर काफी लाकर पिलाते रहे, खाना खिलाते रहे। उसमें उन्हें एक प्रकार का संतोष होता रहा। एक ओर सहानुभूति दिखाते हैं, और दूसरी ओर आपस में हमारा अपमान करते हुए बतियाते और हंसते। इसने जो अपना सिर नीचा कर लिया तो फिर उठाया ही नहीं, आंखें खोलीं ही नहीं। हम दोनों समाज-भ्रष्ट कर दी गयीं। सयानी लड़की को साथ लिये दो दिन अनाथ जैसी मैं उस चबूतरे पर पड़ी रही। यह लड़की ऐसी बन गयी है – यह जानकर मुहल्ले के लड़के वहां मंडरा रहे थे ; और मेरी बेटी की तरफ व्यंग्य भरी निगाह से देख रहे थे। मैं इसे ढक ढककर बैठी रही। जब कभी गुस्सा उमड़ता, गाली देती, पीटती, रोती... । सोचा, इसे ले जाकर समुद्र में धकेल दूं और खुद भी डूब मरूं... । आखिर दो दिन बाद, जब मेरी चिट्ठी पहुंच गयी, हमारे वेंकु भाई आ पहुंचे और हम दोनों को अपने गांव ले गये। उनकी ही कृपा थी कि गंगा ने अपनी पढ़ाई पूरी की। मेरे भाई ने इसे कालेज में दाखिला ले दिया। होस्टल की फीस अदा की। सब उन्हीं की कृपा है। यह भी अजब निकली। सारे प्रांत भर में फर्स्ट आयी। इतने अंक पाये कि इसे भला किस कालेज में प्रवेश नहीं मिल सकता था? इसने खूब पढ़ा। अब नौकरी करती है और खूब कमाती है।

उन दिनों, मुझे और मेरी बेटी को लोगों ने कितना सताया था। हे ईश्वर ! किसी शत्रु के साथ भी ऐसा न हो जैसा मेरी बेटी के साथ हुआ।

न जाने कैसे, उस अबोध आयु में अनजाने में घटी इस घटना ने इस लड़की की सारी जिंदगी बरवाद कर दी। इतना समय वीत जाने के बाद, अव गंगा यह संकेत कर रही है कि इसके लिए मैं ही जिम्मेदार हूं...

इसे कैसे समझाऊं? पिछले हफ्ते गंगा ने जो पत्रिका मेरी ओर फेंकी थी, उसकी कहानी

पढ़ने के बाद मेरे मन को यही बात साल रही है कि इसकी दुर्गति के लिए मैं ही जिम्मेदार हूं।

मुझे नहीं सूझा था कि मेरी लाडली की जिंदगी यों बरबाद हो जायेगी। क्रोध के आवेश में मैंने आग को बुझाने के बदले और फैला दिया। मुझे नहीं सूझा था कि उस बात को छिपाना ही ठीक था। इस कहानी को पढ़ने के बाद ही मुझे लग रहा है कि ऐसा भी एक उपाय था। अब मुझे पता चल रहा है कि कुछ लोग बहुत कुछ कर चुकने के बाद भी शांत रह जाते हैं, जैसे कुछ भी घटित न हुआ हो।

बच्चे जनना मात्र ही क्या काफी है? उसका बदन बढ़ना, और बुद्धि बढ़ना देख देखकर खुश होना मात्र क्या काफी है? ऐसी एक परिस्थिति में एक मां को कैसा बर्ताव करना चाहिए — यह मैं नहीं जान पायी थी; इसलिए गंगा का जीवन बरबाद हो गया। इस कहानी का महत्व वही जान पायेगा जिसने वैसा अनुभव पाया हो। मेरी समझ में अब आ रहा है, अब समझने से क्या होता है? लेकिन इस सत्य को समझने की क्षमता मुझमें अभी आयी है। उस समय वह सत्रह साल की बच्ची थी तो मैं सैंतीस साल की 'बच्ची' थी।

किसी ने कहीं एकांत में उसे ले जाकर बिगाड़ा, इस बात को सरेआम प्रकट करके मैंने अपनी हंसी करायी और इसकी जिंदगी को भी बरबाद कर दिया।

मैं ही तो जानती हूं कि उस दिन गंगा की वह सूरत देखकर मेरी कोख कैसे जल उठी थी। उस आक्रोश में मेरी बुद्धि मिट गयी थी।

इस कहानी में भी वह लड़की वैसे ही आकर खड़ी होती है जैसे गंगा खड़ी थी। मैं जानती हूं कि उस दृश्य को देखकर उसकी मां की कोख जल उठी होगी। मेरी तो अब भी ऐसे ही जल रही है।

पहले मेरे समान ही वह भी क्रोध के मारे अपनी बेटी को पीट देती है। आवाज सुनकर उस घर में रहने वाले सभी किरायेदार दौड़े आते हैं। लड़की गिरी पड़ी है, मां खड़ी है, लोग दृश्य देखकर पूछते हैं 'क्या बात है?' पूछेंगे, पूछेंगे। जरूर पूछेंगे, लोग हैं इसलिए न ! ये दुष्ट लोग !

कहानी में जो मां है, मुंह खोलते ही सब की जुबान एकदम बंद करती हुई तड़ाक से बोल देती है — "कुछ नहीं। इस मूसलाधार वर्षा में यों भीगती हुई चली आयी है।" कहकर किस समझदारी से बात को छिपा देती है !

हाय ! उस दिन, उस वेला में, मुझे वैसा कहना नहीं आया। अगर मैं वह एक शब्द कह देती, तो क्या आज मेरी लाडली की जिंदगी ऐसी हो जाती? मैंने ही औरों के साथ मिलकर इसकी जिंदगी को बरबाद कर दिया। औरों के साथ मिलकर नहीं, बल्कि मैंने अपने आप ही सब कुछ बिगाड़ डाला।

हाय ! इस कहानी को पढ़ती हूं, वह मां उसे पीटती है, रोती है, सब खत्म होने पर उसे

ले जाकर सिर पर पानी डालकर नहलाती है, धुलाती है, फिर खूब पोंछ देती है और अपनी बेटी को अपनी बांहों में भरकर उसे समझाती है। तब मेरा सारा मन, सारी कोख ठंडी हो चली। लेकिन यह सोचकर कि मैं ऐसी मां नहीं थी, मेरी कोख फिर जल उठती है।

इस कहानी की एक-एक बात मानो मेरे लिए ही लिखी गयी है।

'अरी बच्ची ! यह किसी को न बता देना ! अगर लोगों को मालूम हो जाये तो यह परिवार ही बरबाद हो जायेगा। कोई नहीं सोचता कि उसके घर में भी तो बहू-बेटियां हैं, अगर उनके साथ ऐसा हो जाये तो क्या होगा। मानो कोई पुराना बैर हो, यों सारे लोग बदला लेने लगते हैं... ।'

'मैंने इसका जीवन बरबाद कर दिया। मैंने ही इसका जीवन बरबाद कर दिया।' मन ही मन कलपती हुई कनकम ड्योढ़ी पर बेटी की प्रतीक्षा में बैठी रही।

दरवाजे पर एक टैक्सी आकर खड़ी हो जाती है, कुछ आशंका के साथ कनकम उठ खड़ी होती है। अच्छा हुआ। टैक्सी से वेंकु भाई उतर रहे हैं – हाथ में एक छोटा सूटकेस लिये।

"अरे भैया... । इस वक्त...?" कहकर स्वागत करती हुई कनकम उस छोटे अहाते का लकड़ी का फाटक खोल देती है।

"मैं तो सवेरे ही आ गया था, लेकिन ट्रेन लेट आयी। सीधे अदालत पहुंच गया। फिर इधर-उधर लोगों से बात करते-करते समय बीत गया। गंगा कहां है, दिखाई नहीं दे रही!"

बात करते हुए वेंकु भाई हाल में आ जाते हैं और अपना काला कोट उतारकर एक कुर्सी पर डाल देते हैं। फिर आरामकुर्सी पर लेट जाते हैं।

"गंगा अभी दफ्तर से नहीं लौटी? आठ बज रहे हैं...क्या शहर की सैर करती है? क्या तुम भी उसे कुछ नहीं कहती हो?"...वे जब यों पूछ रहे थे तो उनकी कंठध्वनि में अधिकार का स्वर ही नहीं, क्रोध भी प्रकट हो रहा था।

3

सब लोग कहते हैं कि वकालत और जिरह करने में तो वेंकु मामा शेर जैसे हैं। अब भी मानो किसी मुजरिम से सवाल पूछ रहे हों, इसी तरह कुछ कह रहे हैं।

एक हाथ में वह खुली पत्रिका रखी है और दूसरा हाथ आगे बढ़ा बढ़ाकर वे ऊंची आवाज में कुछ बोल रहे हैं। मां खंभे से सटी खड़ी हैं। मुझे सीढ़ी चढ़ते हुए वह देख लेती हैं। पहले मुझे पता नहीं चला कि मामाजी किस बात पर इतनी ऊंची आवाज में बोल रहे हैं। लेकिन उनके हाथ में वह पत्रिका और सामने खड़ी मां का चेहरा देखने मात्र से मुझे यही नहीं पता चला कि वे किसके बारे में बोल रहे हैं, बल्कि यह भी अनुमान हो गया कि मेरे आने से पहले वे क्या क्या कह गये होंगे।

मामा ने कहानी-लेखक आर.के.वी. की खूब खबर ली होगी। उन्होंने कहा होगा, 'इस प्रकार लिखने वाले लोगों को गिरफ्तार कर लेना चाहिए। इसमें कौन सा ऐसा बड़ा मॉरल है, जिस पर गंगा ने तुमसे यह पढ़ने को कहा? सिर पर पानी डालने से क्या सब कुछ धुल जायेगा? तब तो हर बार वह लड़की वैसा ही करेगी और घर लौट आयेगी। वह मां भी अपनी लड़की पर पानी डालती रहेगी। वेश्याएं भी तो प्रतिदिन स्नान करती ही रहती हैं। इससे वे पवित्र तो नहीं बन जातीं। किसी गलती को गलती ही मान लेना चाहिए। गलती करके जिरह नहीं करनी चाहिए कि 'यह सही है'। अगर लोग इस कहानी के पात्रों के समान ही व्यवहार करने लगें तो फिर कौन किस पर भरोसा कर सकेगा? विवाह नामक एक पवित्र संस्कार का मतलब ही कुछ नहीं रह जाता। क्या सोचकर गंगा ने तुमसे यह कहानी पढ़ने को कहा था? क्या इसलिए कि तुम्हें भी उसके उस कार्य को छिपा लेना चाहिए था? तुमने कहा न, शायद तुम्हारी ओर ही यह इशारा था। तुम्हें क्यों ऐसा लगता है? ऐसे कार्य को छिपा रखना भद्र परिवार के लोगों द्वारा संभव नहीं है। अपनी बेटी से तुम्हें चाहे जितना भी प्यार हो, उस क्षण तुम्हें क्यों न सूझा कि उस बात को छिपा लेना चाहिए। क्योंकि वैसे छिपाने की तुम्हारी आदत नहीं थी। इस कहानी की यह मां स्वयं भी कई बार वैसा ही आचरण करती होगी। तभी तो अपनी बेटी की गलती को भी वह छिपा सकी ! इस लेखक ने सिर्फ बेटी की कहानी कही है। मुझे तो उसे जन्म देने वाली उसकी मां की कहानी भी मालूम हो रही है। ऐसी बातों को छिपाने का विचार पाप है। उसके बाद समाज में कोई व्यवस्था नहीं बनी रहेगी। कोई परंपरा नहीं रहेगी। सभी सब कुछ करेंगे और छिपा लेंगे। इस कहानी की मां की तरह तुमने व्यवहार नहीं किया, इस

पर तुम्हें गर्व करना चाहिए। तुमने यह बात नहीं छिपायी, इससे तुम्हारी बेटी की जिंदगी कुछ बिगड़ी नहीं है। अगर तुमने छिपाया होता तो तुम्हारे कुटुंब का गौरव, शास्त्रों में निहित विवाह संस्कार की पवित्रता – इन सबको मिटा देने का पाप तुम्हें घेर लेता। अगर छूत की बीमारी लग जाये तो चाहे अपना ही बच्चा क्यों न हो, उसे अलग करके ही रखना चाहिए। इस पर तुम क्यों दुख कर रही हो...?'

मैं दरवाजे पर खड़ी रही। अभी मामा मां से बात कर रहे हैं। उन्होंने मुझे नहीं देखा है। उनकी ऊंची आवाज गूंज रही है। ड्योढ़ी में जब मैंने कदम रखे तो उनकी बातें आगे-पीछे के क्रम के बिना मेरे कानों में पड़ने लगीं। यह भान होने पर भी कि वे किसके बारे में बोल रहे हैं, यह साफ नहीं हुआ कि वे क्या कह रहे हैं। इतना क्यों चिल्ला रहे हैं? अदालत में जिरह करते करते जोर जोर से बोलने की आदत पड़ गयी है मामा को। जब वे ऊंची आवाज में बोलते हैं तो उसका मतलब यह नहीं होता कि वे नाराज हैं। जब उन्हें क्रोध आता है तब उनके मुंह से शब्द ही नहीं निकलते।

उन्हें कैसा क्रोध आता है – यह तो जाकर कोई अंबुजम मामी से पूछे। लेकिन पूछने पर भी मामी नहीं बताती। मुझे नहीं लगता कि मामी ने किसी से इस संबंध में कुछ कहा हो। हाय ! अब भी, जब अंबुजम मामी की याद आती है तो जैसे दिल तड़प उठता है। मामी अपना हरापन खोकर यों मुरझा गयी है जैसे बरगद की छाया में कोई पौधा हो। हमेशा सिर झुकाए रहती है। काम करते करते ही उसका बदन टूट गया। मानो कोई पुराणकालीन अभिशप्त देवी हो। सब कुछ बरदाश्त करती हुई ऐसे रहती है जैसे उस शाप से मुक्त होने का कोई उपाय ढूंढ़ रही हो। लेकिन मुझे पता है कि मामी का छुटकारा तो मृत्यु से ही संभव होगा। यह सोचते हुए मेरे पेट में पीड़ा सी होने लगती है...।

मामा की उम्र सत्तर साल की है तो मामी की उम्र भी लगभग साठ तो होगी ही। लेकिन अब भी वह छोटे बच्चों के साथ भी सिर उठाकर नहीं बोलती। नौकरों से भी किवाड़ की आड़ में खड़ी होकर बात करती है। उसका अपना सगा कोई नहीं है। शायद ही कोई उसका रिश्तेदार रहा हो। कभी रहा होगा। मामा की जो जायदाद है, उसका आधा हिस्सा मामी ही लायी थी। पता नहीं क्यों उन्हें संतान नहीं हुई। मामा ने, कहते हैं, दूसरी शादी कर ली थी। लेकिन वह दूसरी स्त्री, शादी के दो साल बाद ही चल बसी। कहते हैं, कुछ चित्तभ्रम या पागलपन की बीमारी थी। उसके बाद मामा ने विवाह नहीं किया।

भाई ने जब मुझे घर से निकाला था, तब मुझे और मां को लिवा ले जाने के लिए मामा ही आये थे। उस समय अंबुजम मामी के बारे में मेरे मन में जो विचार था, वह कुछ और ही था। आज भी मामी के बारे में मां के विचार कुछ और ही हैं। मां कहती है, वह तो घर की नागिन है। वेंकु मामा के घर वाले बगीचे में अक्सर एक नाग आता है, उसे कोई नहीं मारता। कहते हैं कि वह कई वर्षों से रह रहा है। उसी को 'घर का नाग' कहते हैं। अंबुजम मामी

को भी मां उसी प्रकार की एक और नागिन कहती है। मां कहती है कि मामी रहती तो है बिल्ली की तरह गुमसुम, लेकिन फिर भी यह बड़ी दुष्ट है। कहती है कि वेंकु ही है जो उसके साथ निर्वाह करते हैं। अंबुजम मामी तो जादू-टोना भी करती है। इसी ने कुछ ऐसा कर दिया है कि मामा की दूसरी पत्नी अकाल मृत्यु का ग्रास बन गयी। मामा की जायदाद को कोई न ले जाये – इसलिए गड़े हुए खजाने की रक्षा करने वाले भूत की तरह मामी किसी को घर के पास फटकने तक नहीं देती।

मां ने अंबुजम मामी के बारे में इसी ढंग से मुझसे बहुत कुछ कहा है। इतनी चेतावनी देने के बाद मां ने मुझे तंजाऊर में मामा के घर छोड़ दिया और दो दिन के बाद मद्रास लौट गयी थी। मुझे उन दिनों अंबुजम मामी से डर लगता था। वह जहां रहती, उधर मैं जाती ही नहीं। अंबुजम भी घर के पिछले हिस्से के आंगन को पार कर इधर कभी नहीं आती थी। मैं उसे देखकर डर जाती और मामा के साथ ही लगी रहती। मुझे तो बाद में ही पता चला कि मैं बाघ की पीठ पर सवारी कर रही हूं। इस बात को बताने वाली अंबुजम मामी ही थी। इस 'मामा रूपी बाघ' को कितना गुस्सा आता है – यह तभी पहली बार मुझे पता चला।

क्या हुआ, कब हुआ, इसका मुझे कुछ ध्यान नहीं – मामा एक दिन कहीं बाहर गये थे, तब घर के बीच कमरे में बैठी हुई मुझे 'लल्ली लल्ली' कहकर पुकारती हुई अंबुजम मामी पिछले हिस्से से आगे बढ़ आयी। मुझे लगा कि सामने का दरवाजा खोलकर घर के बाहर भाग जाऊं। दीवार से पीठ सटाकर मैं खड़ी रही – दानों हथेलियां फैलाकर दीवार पर खूब दबाये हुए, एक झटके में बाहर निकल जाने को तैयार होकर।

मैं क्या छोटी बच्ची हूं, जो डरूं? मैंने क्या किया है और क्यों यहां आ पहुंची हूं – क्षण भर यह सोचकर मुझे अपने डर पर ही हंसी आयी। डर किसलिए? जैसे कोई बच्ची हो। ऐसा कौन सा अहित और जादू-टोना कर लेगी मुझ पर? यह सोचते ही मैंने आदर भाव से कहा, "कहिए, मामीजी!" वह आंसू पोंछती हुई चोर की तरह चारों ओर देखती है।

"यहां खड़े होने में मुझे डर लगता है, तुम पिछले वाले हिस्से में आ जाओ।" कहकर वह जल्दी जल्दी चल पड़ी। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। फिर भी हिम्मत बांधकर मैं उधर गयी। बाद में मुझे पता चला कि अंबुजम मामी कितनी लाचार थी। उसके बाद जब कभी मामा घर पर नहीं होते, मैं अंबुजम मामी के साथ बातें करने लगती। वह ऐसे रहस्य जिन्हें और किसी से नहीं कहती, मुझे सुना देती। इस मामा की ऐसी गूढ़ बातें जिन्हें कोई नहीं जानता, कहने पर भी जिन पर कोई विश्वास नहीं कर सकता, इनके शत्रु भी, ऐसी बातें, सारे कुकृत्य मुझे मालूम हैं। मैं उनकी बलि नहीं चढ़ी। इस बारे में हम दोनों को छोड़कर और किसी को कुछ भी मालूम नहीं। उसके बाद जब कभी मैं मामा को देखती, लगता मानो एक शेर को देख रही हूं...।

मैं उन्हें देखती हुई ड्योढ़ी पर खड़ी हूं। कुर्सी पर काले रंग का कोट पड़ा है। आराम

कुर्सी पर उनकी कमीज लटक रही है। खाली गंजी पहने कमरे में उस चौड़े चमड़े के बेल्ट समेत मामा बैठे बात कर रहे हैं। वह बेल्ट कैसा भयंकर शस्त्र है – अंबुजम मामी को पता है।

एक दिन मामी ने मुझे दिखाया...उसकी पीठ पर, छाती पर, जांघों पर, गर्दन पर, बांहों पर...और ऐसी जगहों पर खरोंचता है यह शेर जो किसी की नजर में भी न आयें। मामी के बदन पर बेल्ट के निशान मैंने देखे हैं। मामी को उसका हिसाब और निशान सब याद हैं। "यह देखो, लाल-लाल रिस रहा है न, यह कल की मार है। यह जो नीला पड़ गया है, पिछले सप्ताह की है। उसके पहले के निशान काले पड़ गये हैं।" मामी ने बताया, "लल्ली ! इसके बारे में किसी से न कहना...मैंने सोचा था, यह किसी को नहीं बताऊंगी। किसी दिन ले जाकर चिता पर रख आयेंगे और बस। कोई देख न ले, इसलिए बंदी बनाकर रखी गयी हूं – मरने पर चिता पर डाल आयेंगे। तब श्मशान का रखवाला लाश के ऊपर का कपड़ा खींच लेगा। वही इन निशानों को देख पायेगा – ऐसा मैं सोचती थी।...पता नहीं, तुम्हें कैसे दिखा दिए ! तुम किसी से न कहना। मुझे वचन दो।"

मैंने भी शपथ खाकर उसे वचन दिया है। मैं यह सब किसी से नहीं कहूंगी। मुझसे नहीं कहा जायेगा। कहना भी नहीं है। मामी को मैंने जो वचन दिया था, वही मुझे रोक रहा हो – यह बात नहीं। मामा ने मेरे लिए जो कुछ किया, मैं जब निराश्रय हो गयी थी, तब आगे बढ़कर जो सहारा उन्होंने दिया, पैसा खर्च करके पढ़ाया-लिखाया, जब मैं होस्टल में रही, तब और नौकरी पर जाने के बाद अकसर आकर मेरा ख्याल करने की उदारता – यह सब जब याद करती हूं तो मामा के रहस्य, इनकी सारी बलहीनताएं, जिन्हें मैं जानती हूं, लोगों में फैलाना मेरे लिए महान पाप होगा। मुझे वह सब नहीं करना है, मैं नही करूंगी।

लेकिन यह मामा एक शेर है। इसके पास सजगता से रहना है। यही भय था, जो मामी ने मुझे सिखाया था।

ड्योढ़ी में आकर खड़ी हूं, लेकिन अभी मामा की नजर मुझ पर नहीं पड़ी है। 'ओ हो' करते हुए वे ऊंची आवाज से अपना वह लंबा वाक्य पूरा बोलें, इससे पहले ही मैंने सारी बातें सोच लीं।

उस कहानी और लेखक की दलीलों का जैसे फैसला कर दिया हो, यों पत्रिका को मामा जोर से धरती पर पटक देते हैं और कमर से बैल्ट को खोलते हुए मुझे देख लेते हैं। मैं भी उन्हें देख रही हूं।

मामा का चेहरा शेर जैसा है। दोनों कनपटियों पर तार जैसे ऐंठे हुए तथा भौंहों के गुच्छों जैसे वे बाल – देखने में मामा सचमुच शेर हैं। यह शेर मुझे देखकर हंस रहा है। मुझसे प्यार दिखाता है। यह मेरा सहारा है। फिर भी शेर है यह। मैं भी हंस पड़ती हूं। जवाब में आभार प्रकट करती हूं। यह सरकस दस साल से चल रहा है। शेर को पालना ही सरकस नहीं है, शेर के साथ पलना भी सरकस है।

मुझे देखते ही अब तक उनका बोलने का जो स्वर था वह बदल गया।

"आओ...आओ...आओ...," जैसे घुटनों के बल चलने वाले बच्चे को पास बुला रहे हों, इस तरह मुझे बुलाते हुए हाथ पसारकर अधखुली बेल्ट को कमर में ही लटकाए वे उठकर आगे बढ़ जाते हैं और मुझे बांहों में भरकर कस लेते हैं। यह दृश्य देखकर मां पुलकित हो आंसू पोंछ लेती है। मां जब घुटनों के बल चल रही थी, तभी ये मामा एक बच्चे का बाप बनने की अवस्था में थे। मामा की यह उम्र और उनका यह कार्य? जो देखेंगे उन्हें लगेगा, यह नाटक का कोई दृश्य है।

मामा के लिए उनकी आयु एक परदा है। वे स्वयं अपने लिए एक 'स्क्रीन' हैं। उनकी आकृति, उनकी बातें, उनके कहे जाने वाले सद्‌विचार, उनका शास्त्रज्ञान, उनकी हिंदू संस्कारों के प्रति श्रद्धा – यह सब देखकर कई लोग वैसे ही उनके चरणों में झुक जाते हैं। यह सब सत्य है। झूठ नहीं। उस गांव के आसपास 'देवन' जाति के लोग गुस्सा होने पर झगड़ते हुए अपने दुश्मन के हाथ-पैर काट डालते और कहते, "क्या डर है...देखा जायेगा, हमारे वेंकटराम अय्यर हैं ही, अदालत में हमारा बचाव कर देंगे...कोई क्या कर लेगा, हां!" मैंने स्वयं ऐसी बातें सुनी हैं। अपने वाक्-चातुर्य से वे हत्यारे को भी बेगुनाह साबित कर देते, बेगुनाह आदमी को हत्यारा। कहते हैं, जब वे अंग्रेजी बोलने लगते हैं तो जज लोग मुग्ध हो जाते हैं। 'सरस्वती महल' नामक पुस्तकालय में आने वाले सभी विद्वान ब्राह्मण उन्हीं के घर में आकर ठहरते हैं। इनके साथ वे संस्कृत में ही बात करते हैं। यह सब मैं नहीं कहती, उन्हें जानने वाले सभी लोग कहते हैं।

लेकिन अपनी सत्तर साल की आयु के पर्दे में देखने वालों के सामने जैसे एक दादा अपनी पोती को गले लगा रहा हो, ऐसा वात्सल्य दिखाते हुए, उस पर्दे के भीतर एक बुड्ढा, बस में चलते हुए महिला यात्रियों के साथ रगड़ खाने वाले उस सांड से भी दुष्ट और 'वूमेन-हंटर' बनकर क्या-क्या करता है, इसे मैं जाहिर नहीं कर सकती। अगर कुछ कहूं तो भी कोई विश्वास नहीं करेगा। लेकिन मेरा मन जानता है। इस मामा रूपी शेर के लिए मेरे मन में कृतज्ञता का भाव भी है और भय भी।

जिंदगी में एक बार, सिर्फ एक बार किसी के हाथ फंसकर धोखा खा गयी। अब दूसरी बार वैसा नहीं हो पाएगा। लेकिन क्या वह सचमुच फंसकर धोखा खाना था? क्या उसमें मेरा हिस्सा नहीं था? क्या मैं किसी मजबूरी के कारण नहीं झुक गयी थी? तो भी वह धोखा खाना ही तो था। उस अनुभव के बाद शायद जिस किसी भी पुरुष को देखती हूं, उसके दुष्ट होने का आभास मुझे होने लगता है।

लेकिन जिस समय अनाथ और लाचार होकर मैंने इनके घर में शरण ली थी, इन्होंने मुझे स्पष्ट जता दिया था कि मेरा वैसा सोचना गलत नहीं था।

अच्छा हुआ। अंबुजम मामी ने पहले से ही मुझे चेतावनी दे दी थी कि 'यह शेर है,

सजग रहना' वरना...। वरना क्या? और एक बार कीचड़ उठाकर मैंने लगा लिया होता न ! जो भी होता, लेकिन एक बार बेवकूफ की तरह मां को सब बताकर बरबाद हो चुकी थी, अब दुबारा वैसा न करती।

इसीलिए यह समझ लेने पर भी कि 'यह शेर है', मां से यह बात नहीं कही थी। वैसा पागलपन भरा एक विचार मन में आया तो झट वे पुरानी बातें भी याद आ गयीं। उस घटना के बाद कितने विश्वास के साथ, किस स्नेहमय आश्वासन की आकांक्षा में मैं मां के पास गयी थी, जैसे भगवान के पास जाकर अपने अपराध कहकर क्षमा-याचना कर रही होऊं। यह मानकर मैंने सारी बातें उससे कह डालीं कि 'मां है', लेकिन मेरी इस मां ने मेरे उस विश्वास को छितरा दिया।

मुझे नहीं कहना चाहिए था। कहने के अगले क्षण में ही यह सूझ गया – उस क्षण से मेरे मन में मातृत्व के प्रति आदर की भावना खत्म हो गयी। अब तो 'मां' एक ऐसा बंधन मात्र है, जो कुछ सुविधाएं देता है। मैंने मां से बोलना बंद कर दिया। यह कहने के लिए कि 'यह मामा एक शेर है', अब क्या मैं मां के साथ पुनः घनिष्ठता कर लूं? नहीं !

इस प्रकार की बातों में कोई स्त्री किसी और स्त्री की सहायता नहीं कर सकती। हर एक को अपनी बुद्धि ही सहारा दे सकती है। उस दिन जो हालत थी, उसमें इस शेर की सहायता और आश्रय आवश्यक था। मर जाने को भी मेरा मन न हुआ। मन को लगा, मेरा मर जाना अन्याय है। भाई ने धक्का मारकर सड़क पर निकाल दिया। मां कहती थी, समुद्र में ले जाकर डुबो देगी। यही मामा थे जिन्होंने कहा कि इसे कालेज में पढ़ाऊंगा।

मुझे लगा कि इस शेर की बलि न बनकर भी उसके साथ निर्वाह करना सीख लूंगी। फंसना भी चाहिए, लेकिन धोखा नहीं खाना चाहिए। यह शेर अच्छा शेर है। पीठ थपथपाकर, अभ्यस्त करके इस पर चढ़कर सवारी करना है। लेकिन बलि नहीं चढ़ना है। एक बार जब ये मामा शेर बन जायें तो इन्हें पिंजरे में डालकर दरवाजा बंद कर देना है। वे उस प्रकार हो जायेंगे तो उसके समर्थन में कुछ न्याय-नीति की बातें भी करेंगे ही। इसी प्रकार हम भी एक नीति अपना लें और उन्हीं की तरह नाटक करते हुए, उस समय उन मनुष्यों से बच जायें। इन बारह वर्षों से इस मामा रूपी शेर से मैं ऐसे ही बचती रही हूं। इस समय मैं शेर के पंजे में फिर से फंसी हुई हूं।

"आओ, आओ।" कहकर मामा ने मुझे बांहों में बांध लिया। "क्यों बेटी, इतनी देर कैसे हो गयी? दफ्तर से ही आ रही हो न ! तुम तो और कहीं नहीं जातीं। पांच बजने पर फाइलें बंद करके चल पड़ा करो। हर चीज का समय निश्चित रखना चाहिए। ऐसा होना चाहिए कि सभी कह सकें कि अपने काम की बड़ी पक्की है। अमुक समय वह अपने दफ्तर में होती है। अमुक समय घर आ जाती है। सारा काम अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए और मर मरकर काम नहीं करना चाहिए। आखिर तुम्हारे स्वास्थ्य का क्या होगा? तुमने सवेरे दस बजे खाना खाया

होगा। दोपहर को क्या खाया था?" यह कहते हुए जैसे मुझे खा जाना चाहते हों। मेरी सारी पीठ पर हाथ फेर रहे हैं। कंधों पर, बांहों पर हाथ रखकर दबा रहे हैं। मैं संकोच के कारण टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई जवाब देती हूं।

"मट्ठे का भात।"

मानो मैंने कोई हंसी की बात कह दी हो, यह सुनकर मामा 'हो-हो' करके हंसते हैं। "मालूम है...तुम मट्ठे का भात ही ले गयी होगी...तुम्हारी मां और क्या बनाकर देगी तुम्हें? बड़ी अफसर हो? अब किस पद पर हो? सेक्शन आफिसर हो क्या? शरम नहीं आती मेज पर मट्ठे का भात रखकर खाते हुए? इसका यह मतलब नहीं कि कैंटीन में जाकर दफ्तरी गुंडों के साथ बैठे रहना है। तुम अपने चपरासी को भेजकर कैंटीन से खाना मंगवा सकती हो। शाम को कम से कम काफी तो पीती होगी?"

यह बूढ़ा किसलिए मुझे यों कस कसकर दबा रहा है? मुझे खीझ होती है। मैं जब अनाथ थी, तब आश्रय देकर, पढ़ा-लिखाकर...।

रोना आता है। लेकिन आंसू पीकर उनके प्रश्न का 'नहीं' में उत्तर देती हूं। तन-मन में ऐंठन होने लगती है।

"एक कप काफी भी नहीं पियोगी तो इतना पैसा जमा करके क्या करोगी?"...दोनों गालों को पकड़कर मरोड़ते हैं।

"हाय ! छोड़िए, मामाजी ! दर्द हो रहा है !" — कहकर चिल्लाती हूं। मेरी आंखों से आंसू बहने लगे हैं। मैं जो चिल्ला उठी वह झूठ है, जो रो पड़ी वह सच है।

मां यह सब देख रही है, रस ले लेकर देख रही है।

"कनकम, मुझे और मेरी भांजी को बढ़िया काफी बनाकर पिलाओ न।"

मां भीतर चली जाती है।

"छोड़िए। मैं कपड़े बदलकर आती हूं।" कहकर उनकी पकड़ से अपने को छुड़ाकर भागती हूं।

"अरी लड़की! किवाड़ बंद न करना। मैं भी आ रहा हूं।" यह मामा का मजाक है।

"अरे, हटिए मामाजी!" मै। शरमाकर जैसे भाग रही हूं।

मामा की इस बेशरमी को सोचकर कमरे के भीतर आकर मैं क्षण भर आंसू बहाती हूं। आंसू गालों पर बहने लगते हैं।

4

मामा और मैं टहलने के लिए निकले हैं। मेरी टहलने की आदत मामा के कारण ही पड़ी है।

तंजाऊर में रहते समय मामा का साथ देने के लिए टहलने निकलती थी। उस समय टहलना मुझे 'बोर' कर देता था। पैर दुखने लगते थे। बड़े सवेरे पांच बजे ही मामा उठ जाते। ढीला सा एक नेकर पहन लेते। जहां मैं सोयी पड़ी रहती, वहां आकर अपनी 'वाकिंग स्टिक' से धीरे से थपथपाकर जगा देते। "ए लड़की, उठो ! लड़कियों को इतनी देर तक नहीं सोना चाहिए। उठो...उठो... ।"

मामा की आवाज सुनकर मैं घबराहट के साथ उठकर खड़ी हो जाती। जल्दी जल्दी हाथ-मुंह धो लेती। जत तक मैं अपना घाघरा, चादर ठीक करके बाहर नहीं निकल आती, तब तक मामा अपनी छड़ी लिये घर के बाहरी कमरे में टहलते रहते।

उस प्रकार जब वे मेरी प्रतीक्षा करते रहते तो मुझे शुरू शुरू में यह सोचकर बड़ा अभिमान सा होता कि इतने बड़े व्यक्ति मुझे अपना साथी मान रहे हैं।

जब कभी सोचती कि मेरे न रहते समय वे अकेले ही टहलने जाते होंगे तो मुझे खेद होता।

मैं सोच लेती कि मामा के अकेलेपन को दूर करने के लिए मैं जो आकर साथ में रहने लगी हूं, इस पर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई है।

लेकिन बाद में उसी से मुझे वितृष्णा सी होने लगी।

पश्चिम वाली गली के सिरे पर मकान था। वहां से चलकर दक्षिण दिशा में मुड़ जाते। फिर अस्पताल वाला मार्ग पकड़कर बड़े मंदिर की तरफ से होते हुए नदी पार के नये पुल तक चलते। लौटते समय शिवगंगा वाले बगीचे के रास्ते से आते। कुछ दिन इधर से मुड़कर 'शेप्पण्णावारि' के इलाके में भी घूम आते।

सुबह की सैर में ही इस प्रकार अलग अलग मार्गों में चलते। शाम की सैर में बड़े मंदिर में जाते, एक परिक्रमा लगाते और तब शिवगंगा वाले बगीचे की ओर आ जाते। वहां का भी एक चक्कर लगाते। पश्चिम के सिरे पर जो बरगद का पेड़ है, वहां से देखने पर पूरब की ओर शिवगंगा तालाब दिखाई पड़ता है। वहां के चबूतरे पर जाकर बैठते। फिर सात बजे तक वहीं बैठे रहते।

उस समय मामा जो बातें करते, वे जो प्रश्न करते, जो किस्से सुनाते वे सब उस आदमी की याद दिलाते जो उस दिन मुझे अपनी कार में बिठाकर ले गया था।

देखने वालों को लगता कि अपनी पोती के साथ दादा टहलने निकले हैं।

जो भी बात चलती, अंत में वह उसी विषय पर आकर टिकती।

"उसने जब तुम्हें बुलाया तो तुम भी 'हां' कहकर कार में चढ़ गयी होगी?"

"नहीं, पहले मैंने 'नहीं' कहा।"

"मन से कहा था या वैसे ही?"

"मुझे डर लग रहा था। इसीलिए 'नहीं' कहा था।"

"उसके बाद तुम्हारा डर कैसे दूर हुआ?"

"डरती डरती ही मैं कार में चढ़ गयी।"

"वह क्या तुम्हें पसंद आया?"

"वैसा कुछ नहीं।"

"तो फिर किसलिए डरते डरते चढ़ गयी?"

"पानी बरस रहा था... ।"

"क्या बड़ी वर्षा थी? एकदम भीग गयी थी? ठंड लग रही थी क्या? उस ठंड में किसी को..(अब मामा की आवाज फुसफुसाहट में उतर जाती, मुंह पर एक विचित्र मुस्कुराहट। धीरे से आंख मारते। मेरे कंधे पर पड़े अपने हाथ को और दबाते। मुझे रोना आता। फिर डर लगता)...किसी को कसकर बांहों में बांध लेने की इच्छा होती थी क्या?"

मुझे कोई जवाब नहीं सूझता। गला सूख जाता। कंठ के भीतर एक प्रकार की पीड़ा होने लगती।

"हूं...बोली। तुम्हें अच्छा ही लगा था न?" मेरा कंधा पकड़कर हिलाते हैं।

"नहीं...अच्छा नहीं लगा।"

"झूठ मत बोलो...अगर तुम्हें अच्छा नहीं लगता तो वैसा घटित नहीं होता।"

तब मैं सोचती, क्षण भर के लिए विचार करती कि मामा के प्रति अपनी घृणा को साफ साफ प्रकट कर दूं। लेकिन मैं वैसा नहीं कर पाती। मामा के प्रति जो आदर था, वह मिट जाता और मन में आता कि उन्हें 'तू' कहकर बुलाऊं, 'अब तू जो कर रहा है और कह रहा है, यह सब भी मुझे जरा अच्छा नहीं लगता। यह जो तू खींच खींचकर मुझे हाथों में कस रहा है, गाल को मसल रहा है, जांघ पर हाथ रख रहा है...मन करता है कि अपना पेट चीर कर मर जाऊं। फिर भी यह जो कर रही हूं – ऐसा अभिनय करती हुई कि जैसे मैं कुछ भी न समझ रही हूं, बेवकूफ हूं। दांत दिखाती हुई 'मामा, मामा' कहकर मैं जो फुसलाती रहती हूं इससे तो वही अच्छा था जो अचानक मेरे साथ घटित हो गया। इसका यह मतलब नहीं कि मैं उस व्यक्ति पर मुग्ध हो गयी, अत्यंत प्रसन्न हो गयी। तेरे जैसे घिनौने व्यक्ति के हाथ फंसी हुई कोई स्त्री

मन से कुछ नहीं स्वीकार करती। तू सोच रहा है कि इस तेरी मरने की उम्र में मुझे तुझ पर प्यार आयेगा। तो उस युवावस्था में उस व्यक्ति का मेरे प्रति आकर्षण उत्पन्न होने में क्या आश्चर्य है? तू समझ रहा है कि मेरे मन में तेरे प्रति प्यार उत्पन्न हो सकता है। इसलिए तू सोचता है कि वह आदमी मुझे पसंद आया होगा। वह पंसद आया हो तो भी तू मुझे पसंद नहीं आयेगा। ऐ बुड्ढे पिशाच! हाथ उठा ले।' इतनी बातें कहने को मेरा मन होता। लेकिन कह नहीं पाती। इतने सारे विचार मैं भीतर ही भीतर निगल जाती। मेरे कंठ में दर्द उठता। मुंह सूख जाता।

किसी किसी समय मामा उपदेश देते। वे कहते कि हमारे शास्त्र तथा हमारे जीवन के धर्म स्त्रियों के आचरण पर ही आधारित हैं। वे कहते हैं कि स्त्रियों और पुरुषों में मौलिक अंतर है। पुरुष एक पत्नी के साथ रहे या अनेक स्त्रियों से विवाह करे – यह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है। लेकिन स्त्री को तो एक व्यक्ति को अपना पति बनाकर उसी के साथ विश्वासपूर्ण जीवन बिताना चाहिए। इसका यह मतलब नहीं कि स्त्री की स्थिति पुरुषों से कम है। वास्तव में स्त्रियों की हैसियत पुरुषों से ऊंची है, इसलिए उन्हें ऐसा रहना है। जब मामाजी ऐसी बातें करते हैं, तब शास्त्रों तथा महाभारत आदि से अनेक प्रमाणों का उल्लेख करते हैं !

कभी कभी उनकी बातें बड़ी रोचक होती हैं। उनके तर्क बहुत ही 'लाजिकल' होते हैं। मेरे मन में ऐसे अनेक प्रश्न उठते जो उनके तर्कों का खंडन करने वाले होते हैं। लेकिन मैं उन प्रश्नों को नहीं पूछती।

मुझे भली भांति ज्ञात है कि उनकी मनोभावना और उनका वाक्-चातुर्य क्या है। इसलिए मेरे मन में यह झलक जाता कि अगर उन प्रश्नों को मैं पूछ भी लेती तो वे क्या जवाब देते। इसलिए मैं उनसे नहीं पूछती। पूछने से कोई लाभ भी नहीं है।

एक बार मैंने उनसे पूछा भी। अपने मन के प्रश्न का उत्तर न मिलने के कारण ही मैं पूछ बैठी। मैंने सोचा था कि इसका जवाब वे नहीं दे पाएंगे। "आप कहते हैं कि स्त्री को एक ही पुरुष की प्रति विश्वासपात्र होना चाहिए। महाभारत में द्रौपदी पांच पुरुषों की पत्नी बनी थी। उसे हमारे शास्त्रों ने कैसे स्वीकार किया?"

मैंने कुछ संकोच के साथ ही पूछा। यह सोचकर पूछा कि मामा को खूब छकाया।

उन्होंने कहा, "हमारे शास्त्रों ने उसे स्वीकार नहीं किया, इसलिए वह प्रथा बदल गयी। एक और बात पर क्या तुमने ध्यान दिया? इस 'कांटैक्स्ट' में कुंती देवी के बारे में पूछने की बात भी तुम्हारे मन में उठ रही है न – मुझे साफ मालूम हो रहा है। जिनके संतान न हो वे उस प्रकार संतान-भाग्य पा सकती हैं – यही उसका अर्थ है। यह मतलब नहीं कि कुंती उन सबकी पत्नी थी। उससे भी पहले का इतिहास देखा जाये तो पता चलेगा कि राजा पांडु और धृतराष्ट्र भी भगवान व्यास द्वारा ही दिये गये थे। इतिहास से सार मात्र ग्रहण करना चाहिए, उनकी घटनाओं को नहीं।" जब मामाजी ऐसे तर्क देने लगते हैं तो सुननेवालों को लगेगा कि

इनसे क्यों प्रश्न किया ? इसीलिए मैं उनसे कुछ नहीं पूछती।

इतिहास के आधार पर ही नहीं, विज्ञान के आधार पर भी मामा स्पष्टीकरण देने लगते। पक्षी, वृक्ष आदि सभी उनके तर्कों की स्थापना करने के लिए आगे बढ़कर आ खड़े होते। वे कहते, 'दस मुर्गियों के मध्य एक मुर्गा काफी है।' जहां तक मामा का संबंध है, स्पष्ट ही पुरुष के लिए एक नीति और स्त्री के लिए दूसरी नीति ही न्यायपूर्ण है।

यदा-कदा मुझे वे अनेक सुझाव और उपदेश देते। किंचित् भी दया या संकोच के बिना 'तुम्हारे जैसी बिगड़ी हुई लड़कियां' कहकर शुरू करते।

उनका वैसा कहना उचित ही है – सोचकर मैं सिर झुकाए सुनती रहती।

"तुम्हारी और अवनति नहीं होनी है तो तुम्हें चाहिए कि तुम आत्मनिर्भर बन जाओ ताकि अपने पैर पर खड़ी रह सको," मामा की इस एक बात को मैंने मंत्रवत् मान लिया है।

"जो यह कहते हैं कि तुम्हें समुद्र में ले जाकर डुबो देना है, या तुम्हारे सिर पर राख डालनी चाहिए, वे मूर्ख हैं। तुम्हारे लिए निश्चय ही एक मार्ग है। लेकिन वह जीवन ऐसा न होना चाहिए कि तुम्हें अविवाहित कन्या कहते हुए उस भूमिका पर एक नाटक खड़ा किया जाये। हमारे शास्त्र और संप्रदाय के अनुसार वैसा जीवन तुम्हें नहीं मिल सकेगा।"

आखिर उनकी बात फिर उसी विषय पर आ जाती।

जब मामा उस विषय के बारे में बोलने लगते हैं, तो जैसे मानसिक रूप में उस दृश्य को अपने सम्मुख देख रहे हों, यों लीन हो जाते हैं। मुझे ऐसा लगता जैसे एकदम से मुझे नंगा किया जा रहा है और मेरा सारा बदन लज्जा से सिकुड़ जाता। मामा अपने को उस आदमी के स्थान पर रखकर तृप्ति का अनुभव करते हैं, इसलिए उस बात को छेड़ते रहते हैं। जैसे उस कल्पना से उन्हें परम सुख मिल रहा हो – उनकी आंखें खिंच जातीं।

"क्या तुम्हें मालूम नहीं कि वह कौन था?"

"नहीं।"

अचानक उन्हें उस आदमी से ईर्ष्या होने लगती और मुझ पर क्रोध आने लगता। ऐसे में उनके चेहरे का रंग बदल जाता।

"क्या तुम महसूस कर रही हो कि तुम्हारा स्वभाव कैसा कुत्सित है? जिसके बारे में तुम कुछ भी नहीं जानती थीं, कैसे आसानी से तुम उसके वश में हो गयीं?" जब वे यह कहते तो मुझे लगता कि मुझे गर्दन पकड़कर घर से निकालने वाला मेरा भाई और समुद्र में ले जाकर डुबो देने की सोचने वाली मां, दोनों अच्छे हैं।

"यदि न्याय की बात सोची जाये तो वही आदमी, जिसका नाम तक तुम्हें पता नहीं, तुम्हारा पति है। विवाह, कुटुंब, यह सब तुम्हारे लिए उसी कार के भीतर उत्पन्न हुआ और साथ ही मिट भी गया और सब झूठा हो गया। अगर तुम्हें यह सब मिलना हो तो केवल उसी व्यक्ति द्वारा हो सकता है। वैसा ही होना चाहिए। मान लो कि हम उस व्यक्ति को खोज लेते

हैं। लेकिन उस पुरुष के सामने क्या प्रमाण उपस्थित किया जा सकेगा कि वह तुम्हें अपना सके? वह तुम पर भरोसा नहीं करेगा। वह तो यही सोचेगा कि तुम्हारा चरित्र ठीक नहीं है; तुम तो ऐसी हो कि जो भी कार रोककर तुम्हारा हाथ पकड़कर खींच ले, तुम उसके साथ चली जाती हो। वैसा वह सोचे तो भी क्या वह उचित नहीं है? इस प्रकार के विचार को अनुचित कहने का अधिकार न तुम्हें है, न मुझे। इसलिए अब तुम्हारे जीवन में विवाह-परिवार आदि संभव नहीं है। वैसी इच्छाओं को तुम्हें छोड़ देना होगा।"

टहलते टहलते मामा कितनी ही बातें कह जाते। वह सब बहुत कड़ुआ लगता, कष्टदायक लगता, घिनौना लगता! चाहे जो हो, लेकिन आज जो कुछ भी मैं हूं इसका कारण वे बातें ही हैं। उन्होंने किसी भी इरादे से वे बातें की हों, लेकिन स्वयं को, इस संसार को, और आखिर उनको भी समझने में मेरे लिए उनकी वे बातें ही सहायक रही हैं।

कभी कभी वे कहते, "तुम चाहो तो किसी की रखैल बनकर रह सकती हो, लेकिन किसी की पत्नी बनकर नहीं।" लेकिन यह बात वे बड़ी नजाकत के साथ अंग्रेजी में कहते।

"यू केन बी ए कैनकुवाइन आफ सम वन, बट नाट ए वाइफ आफ एनी वन। अगर उस प्रकार तुम अपने को समाज से पृथक कर लो तो तुम भले ही बिगड़ जाओ, लेकिन हमारे धर्म और शास्त्र नहीं बिगड़ेंगे और इसका पूरा श्रेय मिलेगा तुम्हें।"

इस बात का अंतरार्थ क्या है – यह मेरा मन समझ रहा है। इसका अर्थ है – 'व्हाय नाट यू बी माइ कैनकुबाइन?'

माम्मा बहुत अच्छे हैं। अब तक प्रकट रूप में उन्होंने मुझसे वैसे नहीं पूछा है। अगर पूछते तो क्या मैं 'नहीं' जवाब देती – इसमें शक है। वैसे कहना उचित नहीं होता न? मैं सदा कांपती रहती कि किसी क्षण वे वैसा न पूछ बैठें। लेकिन वे मुझसे कुछ न पूछें, मेरे प्रति आदर भी न दिखावें और बलात् मुझे अपनी बलि बना लें तो...?

मामा वैसा कर सकते हैं। इस शेर में वैसी एक भूख है, इसकी वैसी एक रुचि है। एक बार उन्होंने वैसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी, लेकिन मैंने बड़ी चतुराई से अपने को छुड़ा लिया। मुझमें वैसी चतुराई उत्पन्न हुई थी महात्मा गांधी के वचनों से। उन्होंने स्त्रियों के लिए जो कहा था, उन सारे वाक्यों को नहीं, आखिरी वाक्य को लाल स्याही से रेखांकित करके मामा की मेज पर रखकर मैं चली आयी। वाक्य था :

"मैं स्त्रियों से यही कहना चाहता हूं। जब कोई जबर्दस्ती तुम्हारा मान भंग करना चाहे तो मैं तुम्हें अहिंसा का उपदेश नहीं दूंगा। तुम किसी भी शस्त्र का प्रयोग कर सकती हो। अगर तुम निःशस्त्र हो तो प्रकृति के दिये तुम्हारे नाखून और दांत कहां जायेंगे? इस दशा में तुम जो हत्या करोगी या आत्महत्या कर लोगी वह पाप नहीं होगा।"

उस दिन शाम को टहलते वक्त मामा ने इसके बारे में बड़ी शांतिपूर्वक कहा –"इस पुस्तक को तुमने तब पढ़ा है जब समय बीत चुका है। कम से कम अभी सही, तुमने पढ़ तो

ली। यह एक प्रकार से ठीक ही है। जो तुमसे बलात्कार करने आयें, उनके साथ ऐसा करना उचित ही है। लेकिन उसने क्या तुम से बलात्कार किया था? तुम जैसी लड़कियों से तो किसी को बलात्कार करने की आवश्यकता ही नहीं रहती।"

उनका कथन सत्य ही था। लेकिन उनके कथन पर उन्हीं को विश्वास नहीं था — इसीलिए इस क्षण तक उन्होंने मुझसे बलात्कार नहीं किया। अगर वे वैसा कर देते तो मैं महात्मा गांधी के कथन के अनुसार न तो उनकी हत्या करती और न आत्महत्या। किसी क्षण, किसी भय से, किसी एक विचार से, उस वाक्य के नीचे झूठमूठ ही मैंने लाल स्याही से रेखा खींच दी थी; वही अब तक मुझे बचाये हुए है।

तंजाऊर में टहलने की आदत पड़ गयी, इसीलिए तिरुच्ची के होस्टल में जब मैं रहती थी, टहलने जाती और यहां आने के बाद भी टहला करती हूं। जब कभी मामा मद्रास आते, वे भी पहले जैसे मेरे साथ टहलने को निकलते।

तंजाऊर वीथी वाले घर में आ जाने के बाद 'स्पर्टांग रोड' पर चलना बड़ा सुखदायक लगता है। उस केनाल के किनारे किनारे 'हारिंगटन रोड' वाले लेवल-क्रांसिग तक चलती हूं। शाम को एक बड़ा चक्कर लगा आती हूं।

अक्सर जब कभी मैं टहलने जाती हूं, वह गोरी महिला अपने कुत्ते को साथ लिये मिलती है। वह फ्रेंच है या रूसी — पता नहीं। उधर कोई 'कांसुलेट' है। हां, उधर बेल्जियम कांसुलेट का आफिस है। वह गोरी महिला सामने आ जाती है। वह खुद नहीं चलती। वह कुत्ता उसे खींचता हुआ चलता है। शायद उस कुत्ते के खिंचाव में चलना एक अच्छी कसरत है। मुझे सामने देखते ही वह मुस्कुराती है। कभी मुझे नमस्कार भी करती है। मैं भी 'विश' करती हूं। पता नहीं उसका क्या नाम है...। लेकिन मैंने अपने मन में उसका नाम रखा है — 'लेडी विद् ए डाग।'

चेखव या तुर्गनेव ने भी इसी शीर्षक से एक कहानी लिखी है। उस गोरी महिला को देखते हुए मुझे वह कहानी याद आ जाती है। तुर्गनेव की याद आ जाती है, चेखव की याद आ जाती है।

उस महिला का ख्याल है कि मैं उसके कुत्ते को पसंद करती हूं।

मुझे 'पेट्स' बिलकुल पसंद नहीं हैं। पता नहीं, मनुष्य क्यों बिल्ली-कुत्ते को पकड़कर परेशानी मोल लेता है। मुझे लगता है कि 'पेट्स' पालना एक तरह का पर्वर्शन है। पर्वर्शन भी एक प्रकार से मनुष्य की प्रकृति है न ! कहते हैं कि जानवरों में भी पर्वर्शन होते हैं। पर्वर्शन को तमिल में क्या कहेंगे? आर.के.वी. अक्सर 'वक्रता' लिखते हैं — शायद। 'विकृति' अधिक उपयुक्त शब्द होगा। यह 'विकृति' शायद 'मेनिया' है।

वेंकु मामा भी एक 'पर्वर्ट' हैं। कहीं यौन विकृतिवाले 'सैक्स मेनियाक' तो नहीं? यदि वे पर्वर्ट न होते तो क्या अंबुजम मामी को उस प्रकार पीटते? क्या मेरी भुजाओं को यों कसकर

दबाते? कभी मामा उंगलियों से चुटकी काट देते हैं तो उस जगह पर खून जम जाता है।

अभी धूप नहीं निकली। छह भी नहीं बजे हैं। ठंडी हवा चल रही है। मामा और मैं धीरे धीरे चल रहे हैं। मेरे कंधे पर एक हाथ रखे, दूसरे हाथ में छड़ी लिये वे चल रहे हैं। दादा और पोती जैसे साथ साथ चलते हैं – ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा है।

आदत के अनुसार मामा शुरू करते हैं, "आर.के.वी. की वह कहानी मैंने भी पढ़ ली है। तुम्हारी मां कह रही थी कि उसे पढ़कर वह रो पड़ी। मां को वह कहानी पढ़ने के लिए देने का क्या मतलब था?" मामा मेरा कंधा दबा देते हैं। मैं रुक जाती हूं।

वह गोरी महिला अपने कुत्ते की जंजीर पकड़े सामने से आ रही है। मैं अपने साथ एक बाघ को लिये हुए उसकी तरफ जा रही हूं। पास आने पर वह कुत्ता मामा को घूरता है। मामा उस गोरी महिला को घूरते हैं।

मैंने उसका नाम रखा है – 'लेडी विद् ए डाग'। तो क्या वह महिला भी मेरा नाम 'लेडी विद् ए टाइगर' रखेगी?

अगर मैं उसकी जगह पर होती तो ऐसा ही सोचती। मैं ही हूं – 'लेडी विद् ए टाइगर'।

5

क्रिमिनल लायर वेंकटराम अय्यर तर्क-चातुरी से आर.के.वी. की लिखित उस कहानी को कितनी ही बार उधेड़ डालते हैं। फिर भी बार बार वह कहानी चिपककर उनके मन में आ खड़ी हो जाती है।

मामा भले ही हमारी संस्कृति, हमारे धर्मशास्त्र और हमारी परंपरा के प्रमाण देकर यह तर्क करें कि "गंगा को उसकी मां ने जो सब कुछ प्रकट करके निर्ममता से उसके जीवन को कुंठित कर डाला," वह ठीक था, तो भी उनके मन के भीतर आर.के.वी. की कहानी ऐसे उठ खड़ी होती है जैसे पब्लिक प्रासिक्यूटर हो।

"सफाई पक्ष के मेरे माननीय वकील साहब !" वह मंदहास के साथ कह उठती है, "इस एक गंगा के जीवन को कुंठित करके, इसके मुंह पर कालिख पोतने से एक अबोध लड़की को अपनी पिशाची भूख की बलि चढ़ाने का आपका संकल्प भले ही पूरा होता हो, लेकिन आपके द्वारा उद्धृत वे धर्मशास्त्र और परंपराएं इस गंगा के द्वारा सुरक्षित की जा रही हैं – यह बात क्या आप सिद्ध कर सकते हैं? क्या आप सोच रहे हैं कि मेरे पात्र, माताएं और पुत्रियां इस समाज में नहीं हैं? वैसे छिपकर जीने वालों को आपके उद्धृत ये धर्मशास्त्र तथा परंपराएं कहां पहचानती हैं, और कहां समाज भ्रष्ट कर रही हैं? अपना अपराध छिपाने वाले क्षम्य हैं और मान लेने वाले दंडनीय।...यह कैसा अन्याय है? धर्मशास्त्र, नीति आदि एक ओर रहें, किसी गोरे द्वारा लिखित 'इंडियन पीनल कोड' भी तो 'एप्रूवर' के विषय में रियायत करता है।

''इस मुकदमे में विवाद का विषय यह नहीं है कि हमारी संस्कृति और धर्मशास्त्र किस सीमा तक बिगड़ गये हैं। उस प्रकार के धर्म, न्याय, चरित्र, परंपरा आदि के अस्तित्व में विश्वास रखने वाली एक मां और एक बेटी के द्वारा अपने निजी जीवन में उस संबंध में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समय किस प्रकार का दृष्टिकोण तथा किस प्रकार का व्यवहार अपनाया जाना चाहिए – यही इस केस का केंद्रबिंदु है।

"ठीक, अब मैं कनकम से पूछता हूं।"...

"कनकम ! कनकम!"

आरामकुर्सी पर बैठे, थोड़ी देर पेपर पढ़ने के बाद उसे मुंह पर डाले, सोने के बाद वेंकटराम अय्यर उसी कहानी को याद करते करते आंखें खोल देते हैं और आवाज दे रहे हैं। उसे सुनकर कनकम, जो अपने भाई की यात्रा के लिए रात की रसोई पहले से ही तैयार करने में संलग्न

है, हाथ का काम वैसे का वैसा छोड़कर हाल में आ जाती है।

"क्या कर रही हो? पानी लाओ... ।"

"काफी पियेंगे?"

"हर वक्त काफी किसलिए? देर भी हो गयी है। अभी एक घंटे में खाना खाकर निकलना है।" कहते हुए उठते हैं और उसके साथ रसोईघर में जाते हैं। आदर के साथ कनकम ने दोनों हाथों से जो लोटा दिया उसे लेकर वहीं स्टूल पर बैठ जाते हैं।

"एक पापड़ निकालो। थाली किसलिए? वैसे ही हाथ में दे दो।"

कनकम क्षण भर उनकी ओर देखती है। सोचती है – क्रिमिनल लायर वेंकटराम अय्यर की विजयपताका ऊंची फहराती है। इतने बड़े व्यक्ति हैं, इतने बड़े पंडित हैं कि किसी भी सभा में चले जायें तो सभी लोग 'आइए, आइए' कहते हुए खड़े होकर नमस्कार करते हैं। ऐसे व्यक्ति इस घर की रसोई में आकर, स्टूल पर बैठकर बड़ी आत्मीयता के साथ पापड़ मांगकर खा रहे हैं – उनकी इस सरल प्रकृति पर वह मुग्ध हो जाती है।

"मैंने कुछ कहने के लिए तुम्हें बुलाया है। मैं उस कहानी के बारे में सोच रहा हूं। तुमने कहा था न कि वह कहानी पढ़कर तुम रो पड़ीं, वह ठीक नहीं है, कनकम ! अगर तुम्हारा रोना ठीक होता तो इसका मतलब है कि तुम इस बात पर दुखी हो रही हो कि अपनी बेटी की करतूत छिपा नहीं पायीं। विचार करो तो तुम्हारा मन ही कहेगा कि वह कैसा घृणित कार्य होता। क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता?"

अचानक वे गंभीर बात कह बैठे। मां इसे बरदाश्त नहीं कर पायी। वह मौन हो खड़ी रहती है। उसके चेहरे का रंग बदल जाता है।

पिछले एक सप्ताह से वह अकेले में रोती रही थी। इनके आगमन से और साथ रहने से इन दो दिनों में वह अकेलापन दूर हुआ था। अभी एक घंटे में वे चले जायेंगे। इनके जाने के पूर्व वह बोझ फिर कहीं लौट न आये और उसके दबाव से अकेले में कहीं रोते न रहना पड़े – यह आशंका कनकम की आंखों में दिखाई पड़ती है।

वे उसे गलत समझ लेते हैं। वे सोचते हैं, यह अब भी इस बात पर दुखी है कि अपनी बेटी की करतूत को छिपाया नहीं। आवाज में कड़ाई और चेहरे पर कठोरता लाकर वे कहते हैं, "तो तुम्हें क्या करना चाहिए था? उस दिन जब वह लड़की आकर खड़ी हो गयी थी इसका हाथ पकड़ते हुए यह कहकर कि 'दिखाओ, वह आदमी कहां है' इसे खींचकर ले जाना चाहिए था। उसे खोजकर, वह चाहे किसी भी जाति, किसी भी कुल, किसी भी गोत्र का रहा होता, उसके पैरों पर इसे डाल देना चाहिए था और इससे पीछा छुड़ा लेना चाहिए था। पीछा छुड़ा लेने पर इस लड़की को रिश्ते, नाते, जायदाद सब छोड़-छाड़कर कहीं परदेश चला जाना चाहिए था। यही थोड़ा-बहुत उचित कार्य होता, उस बात को छिपाकर किसी और व्यक्ति के साथ इसकी शादी नहीं। पर चिंतित होना ठीक नहीं। वह तो व्यभिचार होता?" वे बड़ी खीझ के

साथ कहते हैं।

कनकम एकदम रो पड़ती है। दामन के छोर से आंखें पोंछते हुए कहती है, "मेरी लाडली और लोगों की तरह नहीं है, यह सोचकर मेरा मन दुखता है। मैं देखती हूं, कितने ही लोग, कितने ही पाप-कर्म करके इस प्रकार रहते हैं, जैसे उनके बराबर कोई है ही नहीं। सही हो या गलत, लेकिन इसकी जिंदगी जो इस प्रकार की हो गयी है, इससे क्या मुझे पीड़ा नहीं होगी?" वह इस तरह कह रही है कि इस माता के मन की छटपटाहट उन्हें समझ में आ जाती है। वे सोचने लगते हैं कि उन्हें उससे ऐसे कठिन वाक्य नहीं कहने चाहिए थे। अब आवाज को कुछ मुलायम कर साधारण ढंग से कहते हैं, "तुम्हारी यह पीड़ा उचित नहीं। यह ठीक है कि बेटी की ऐसी जिंदगी हो जाने के कारण तुम अशांत हो। यह सब भाग्य का विधान है। उस भाग्य पर ही तुम्हें दुखी होना है। तुम अपने आचरण पर दुख न करो। किसी कमबख्त ने लिख डाली है कहानी। बड़ी बढ़िया कहानी ! उस कहानी की पात्रा ने जो आचरण किया है, वैसा तुमने नहीं किया – क्या इस पर तुम्हें रोना चाहिए? बहुत खूब ! संसार में हजारों घटनाएं घटती हैं। हमें कैसा आचरण करना चाहिए – इसका निर्णय हमें ही करना है। तुमसे मैं सीधा सा प्रश्न करता हूं – हमारे शास्त्र, धर्म आदि जो सब कहते हैं, क्या उन पर तुम्हें विश्वास है? यह जो कहानी लिखने वाला है वह शोहदा है, उसे इन बातों पर विश्वास नहीं। उसका प्रत्येक अक्षर यह प्रकट कर रहा है। कम से कम तुम्हें इन बातों पर विश्वास है न? मेरे प्रश्न का जवाब दो।"

एक ओर उस कहानी के लेखक को मुजरिम के कठघरे में खड़ा कर दिया, दूसरी ओर कनकम को साक्षी के कठघरे में खड़ा कर दिया। जैसे अपनी तरफ के गवाह से सवाल कर रहे हों, 'है या नहीं, कहो।' मां को स्पष्ट रूप से स्वीकृति देने के लिए मजबूर कर रहे हैं।

"है न? बताओ...?"

क्या जवाब दे, कनकम को नहीं सूझता। ये क्यों इस प्रकार के सवाल कर रहे हैं, उसे मालूम नहीं हो रहा है। वे जिन धर्मशास्त्रों की बात कर रहे हैं, उन्हें पढ़े बिना ही वह जीवन बिताती रही है। वह अपने को, तथा फिर इसी प्रकार जीवन बिताती रहने वाली अपनी पूर्वज स्त्रियों को भी स्मरण कर देखती है।

"इस सबको मानने के कारण ही तो सोचा था कि इस कुटुंब पर एक कलंक लग गया है। इसी वजह से तो अपनी बेटी को और स्वयं को भी समुद्र में डुबो देने की मैंने सोची थी।" कनकम मुंह ढककर रो पड़ी।

"रो मत...तुम्हें रुलाने के लिए मैंने यह सब नहीं कहा। तुम्हें रोना नहीं चाहिए। मैं तो यही बता रहा हूं कि रोने की जरूरत नहीं है। तुम्हारी बेटी की जिंदगी पता नहीं किस किस ढंग से बरबाद हो गयी होती। उसे तुमने सुंदर बना दिया है। इस पर तुम्हें गर्व होना चाहिए, प्रसन्न होना चाहिए। संसार में होने वाले नाना प्रकार के अनाचार देखकर आचारशील व्यक्तियों

को यह नहीं सोचना चाहिए कि 'हाय ! जगत में ऐसा हो रहा है, वैसा हो रहा है।' संसार में तो सब तरह के काम होते ही हैं। बिगड़ी हुई लड़की के सिर पर पानी डालकर घर में समेट लेने वाली मां ही नहीं, ऐसी भी माताएं हैं जो जब-तब उस प्रकार बिगड़ जाने वाली बेटियों के दिये पैसे को पानी छिड़ककर ले लेती हैं। जो सच्चरित्र हैं, क्या वे इनको अपना आदर्श मान सकते हैं?" उनकी ये बातें सुनते हुए कनकम के मन में यह संदेह उत्पन्न होने लगा कि अपनी पढ़ी हुई वह कहानी दुराचार का प्रचार करने वाली तथा ऐसे व्यक्तियों की वकालत करने वाली बहुत ही निम्न कोटि की कहानी है।

कदाचित, जैसा कि ये कह रहे हैं, उसे जनने वाली मां भी वैसी ही रही होगी, तभी तो वह अपनी बेटी का पाप छिपा देती है।

इस कहानी को लिखने वाला आदमी भी कोई शोहदा ही होगा। जैसा कि ये कह रहे हैं।

यह गंगा ऐसी कहानियां क्यों पढ़ती रहती है? 'इसे पढ़ो' कहते हुए उसने मेरे सामने रोष के साथ यह पत्रिका क्यों पटकी थी? क्या मुझसे यह शिकायत है कि इसने जो कुकृत्य किया, उसमें मैंने भी क्यों साथ नहीं दिया? मैंने जो किया, ठीक ही किया। जैसा कि भाई कह रहे हैं, अपने किसी किये पर मुझे नहीं रोना है।

"मैंने इसे जन्म दिया है, यही सोचकर रो रही हूं, और कोई बात नहीं।" कहकर कनकम ने अपनी आंखें पोंछकर चेहरे को ऊपर उठाया। "देर हो रही है, आप खाना खा लीजिए।" पीढ़ा डालकर पत्तल रखती है।

मामाजी हाथ धोकर खाने के लिए आ बैठते हैं और बात जारी रखते हैं।

"तुम किसी बात के लिए मत रोओ। मैं तुम्हारी जाई बेटी के बारे में ऐसा कह रहा हूं, इसका बुरा न मानना। आजकल की लड़कियों से तो यह गंगा कहीं अच्छी है, लेकिन उसका मन स्थिर नहीं है। उसका दोष भी नहीं। आजकल का जमाना ही ऐसा है। देखो न, इसी बात का समर्थन करते हुए किसी ने कहानी लिखी है। उसे किसी ने पत्रिका में छाप भी दिया है। उसे लाखों लोग पढ़ते हैं। छोटे बच्चों से कह सकते हैं कि 'इसे मत पढ़ो, उसे मत पढ़ो।' अपने अपने स्वभाव के अनुसार ही तो लोगों की रुचि होती है? फिर स्नेह का पाश होता ही ऐसा है।"

"तो क्या मेरी बेटी की जिंदगी ऐसे ही बरबाद हो जायेगी?"—स्नेह के कारण छाती पर हाथ धरे कनकम फिर आंसू बहाने लगी।

"तुम नहीं जानतीं? हमारे जज साहब शिवरामकृष्ण अय्यर की बेटी की उस वक्त आठ साल की उम्र थी। उन्होंने अपनी बेटी और दामाद को आंखों पर रखकर पाला था। वह लड़का स्नान करने नदी पर गया और नदी की धारा में बह गया। वह लड़की उसी उम्र में विधवा बनी घर पर नहीं बैठी रही क्या? उसी प्रकार इसे भी विधि की विडंबना मानकर मन को सांत्वना

देना भर है।"

अपनी अनब्याही बेटी को विधवा मानने के लिए कहने वाले उनके शुष्क मन की क्रूरता कनकम पर अग्नि-ज्वाला के समान बिखर गयी।

"शिव ! शिव ! यह तो स्त्री के प्रति किया गया महापाप होगा न?" कहकर कान बंद कर लेती है।

"आजकल नीति के अनुसार पति के मर जाने पर मंगलसूत्र तोड़ने को कहना भी कुछ लोगों की दृष्टि में 'स्त्री के प्रति पाप' है। एक शास्त्र को मानकर जो मंगलसूत्र बांधने को स्वीकृति देते हैं, वे ही उसके तोड़ने को न स्वीकार करें – यह कैसा न्याय है? हम लोग चरित्र, पतिव्रता धर्म आदि को मानते हैं, इसलिए यह सब कष्ट भोगना पड़ रहा है। सब कुछ त्याग देने पर कोई कष्ट नहीं होगा।

"तुम्हारी बेटी को अगर कोई मजबूर करके ऐसा बनाये रखे तभी पाप होगा। इससे बड़ा पाप तो उसे अविवाहित कन्या कहकर एक दूसरे व्यक्ति के सिर बांध देने में होगा। अगर तुम्हारी बेटी होशियार होती, तो 'उसी आदमी' को ढूंढ़कर पकड़ लाती। अगर कहती कि 'यही मेरा पति है, मैं इसी के साथ रहूंगी' तब हम क्या 'ना' कहते? हो सके तो वैसा करने को कह दो न उससे। देखें, क्या होता है?" इस धैर्य के साथ कि वैसा कुछ नहीं होगा, वे हाथ फैलाकर व्यंग्य करने की मुद्रा में बोल रहे हैं।

इसी समय मैं घर में घुस रही हूं। बाहर वह टैक्सी खड़ी है, जिससे मैं आयी हूं।

सवेरे दफ्तर जाते समय मामा ने कहा था, "शाम को लौटते समय एक टैक्सी में आ जाओ, उसी से मैं भी सुविधापूर्वक स्टेशन तक जा सकूंगा।"

ऐसा ही हमेशा होता रहा है। जब कभी वे यहां आते, प्रायः उन्हें एक ही दिन का काम होता। उसे पूरा करके वे दो दिन के लिए डेरा डाल देते। दो दिन से ज्यादा भले ही रह जायें, उससे कम नहीं। अवकाश के वक्त दस-पंद्रह दिन भी यहां आकर पड़ाव डालते और मेरी नाक में दम कर देते।

छिः ! यह कैसी नीच धारणा है ! इस घर से इनसे बढ़कर आत्मीयता और किसे हो सकती है? यदि यह उनका घर न होता तो इस घर का अस्तित्व ही कहां होता? यह नौकरी कहां होती? मेरा यह जीवन ही न जाने कैसा होता !

उनके यहां आकर रहने और स्नेह प्रदर्शन करने में मुझे कष्ट नहीं है। मुझे कष्ट केवल यह है कि वे मुझे परेशान करते हैं। मैं कहां जाकर इस बात की शिकायत करूं?

सवेरे और शाम मेरे संग जो टहलने निकलते हैं, उसे छोड़कर कभी ड्योढ़ी से बाहर कदम भी नहीं रखते।

टैक्सी बुलानी हो, तो मुझी को जाना होता है। सवेरे सब्जी खरीदकर लाते समय उनके लिए पान के पत्ते भी ले आती हूं। कभी भूल गयी तो मुझी को फिर लाने जाना पड़ता। अगर

मैं न जाऊं तो मां को जाना पड़ता। वे कभी नहीं जाते।

यहां रहते हुए अगर बुधवार या शनिवार बीच में पड़े गये तो बस ! 'तेल मालिश कर नहाऊंगा।' कहकर कमर में अंगोछा बांधे, सारे घर की ही मालिश कर देते हैं।

"गर्दन पर तेल बहा जा रहा है, जरा पीठ पर फैलाकर मल दो" – कहते हुए, ठीक उस वक्त जब कि मैं दफ्तर जाने की तैयारी कर रही होऊं, मेरे कमरे के दरवाजे पर आ खड़े होते हैं। तंजाऊर में तो घर का पिछला सारा हिस्सा ही स्नानघर है। यहां यह 'सी' टाइप का मकान क्या यह सारा संभाल सकेगा?

हाल के बीचोबीच पालथी मारकर बैठ स्टील के कटोरे में से हाथ में तेल भरकर वे नाभि में रखकर दबा दबाकर मल रहे होते हैं तो वह दृश्य देखकर मेरे तन-बदन में आग लग जाती है।

यह टैक्सी क्या ये स्वयं नहीं ला सकते? आफिस से मुझी को लाना है? आज मैं जान बूझकर ही दफ्तर से कुछ देर करके निकली। जल्दी आ जाती तो 'आ री, तू भी स्टेशन तक चल!' कहकर मुझे भी खींचकर ले जाते।

घर में जब घुसी तो देखा – कोई नहीं है। लगता है, मामा रसोईघर के भीतर खाना खा रहे हैं। उनका 'लैदरबैग'–'जाने को तैयार' का संकेत करता कुर्सी पर बैठा है। आराम कुर्सी पर उनके बदले अखबार पड़ा है।

मामा मेरे ही बारे में मां से कुछ कह रहे हैं।

"यदि होशियार हो तो 'उसी आदमी' को ढूंढ़कर पकड़ लाए और कहे कि 'यही मेरा पति है, इसी के संग रहूंगी', तो क्या हम मना करेंगे?"

मैं वैसी की वैसी खड़ी रह गयी। मामा और भी कुछ कहने जा रहे थे, लेकिन अचानक उनका बोलना बंद हो जाता है। इस आदमी के चूहे के कान हैं। पता जो लग गया कि मैं आ गयी हूं। शायद मां ने इशारा कर दिया हो।

हाथ में मट्ठे का गिलास पकड़े वे हाल की ओर दृष्टि डालते हैं।

"गंगा! आ गयी?" अब तक मेरे बारे में बड़े आक्रोश के साथ बोल रहे थे; अब एकदम जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो, यों आवाज को मुलायम कर लेते हैं।

"बाहर टैक्सी खड़ी है, आते वक्त ड्राइवर ने कहा कि ज्यादा 'वेटिंग' नहीं कर सकता।"

"वेटिंग के लिए भी तो चार्ज लगता है।" कहते हुए मामा उठ जाते हैं।

मैं कमरे के भीतर चली जाती हूं।

मैं कपड़े बदल रही हूं, तभी मामा किवाड़ खटखटाते हैं।

"गंगा? मेरी गाड़ी का टाइम हो रहा है। कभी-कभार लैटर जरूर डाला करो। तुम तो लिखतीं ही नहीं।"

मैं बाहर निकलती हूं। मेरा हाथ पकड़कर कहते हैं, "होशियार रहना! हर चीज पढ़कर

अपना मन दुखी न करना। संसार में हजार लोग हजार तरह के न्याय की बात कहेंगे। हमें तो अपने योग्य न्याय को ही मानना है। उन हजार न्यायों में से कौन सही है, कौन गलत है, तय करना हमारे लिए जरूरी नहीं है। बी ए गुड गर्ल।" बड़े वात्सल्य के साथ मुझे गले से लगाकर मामा चूम लेते हैं।

"मैं जा रहा हूं, कनकम ! सावधान रहना तुम लोग !" टैक्सी तक जाते हुए वे बार बार विदा ले रहे हैं।

मैं ड्योढ़ी पर खड़ी हूं। मां बड़ा आश्चर्य कर रही है शायद। मैं ड्योढ़ी पर आकर नहीं खड़ी होती, गली में नजर नहीं डालती — यह मां की शिकायत है। या श.ायद उसे इस पर अभिमान है, इसलिए अब मेरे यहां खड़े रहने से उसे आश्चर्य हो रहा है।

दो साल से जहां रह रही हूं उसी गली को अब मैं नये सिरे से देख रही हूं।

सामने के मकान के कंपाउंड में एक कार प्रवेश कर रही है। वहां दो लड़कियां, घाघरे को कमर में ऊपर को खोंसे 'पांडी' खेल रही हैं। कार में आने वाले शायद लड़कियों के पिता हैं। ''दीया जल जाने के बाद यह सब क्या खेल रही हो?" वह डांटते हैं।

हाथ का ठीकरा दूर फेंककर हरे घाघरे वाली लड़की से कुछ कहकर पहली लड़की घर के भीतर भाग रही है। शायद दूसरी किसी और घर की लड़की है। 'पांडी' खेल के ठीकरे को ऊपर उछाल उछालकर खेलने को अपने आप ही पूरा करती हुई सी वह गली में चली आ रही है। हमारे घर के ठीक सामने आ जाने पर मुझे खड़ी देखकर वह ठिठककर रह जाती है। मैं बाहर खड़ी हो गयी हूं, शायद इस पर उसे आश्चर्य हो रहा है। मुझे देखती हुई वह लड़की हाथ का ठीकरा ऊपर उछालकर उसके नीचे आने तक में ताली बजाती है और उसे पकड़ लेती है — यह भी कैसा खेल है ! मुझे हंसी आती है।

"क्यों मामीजी ! हंस रही हैं?" पूछती हुई वह कंपाउंड के फाटक तक आ जाती है। क्या कहूं — मुझे नहीं सूझता। किसी पराये व्यक्ति के साथ, चाहे बच्ची हो क्यों न हो, बात करते हुए मुझे संकोच हो रहा है। यह वच्ची कितनी स्वच्छंदता से मुझसे बोल रही है! मुझसे ये बोलते नहीं बन रहा। फिर हंस देती है। "दादी नहीं है?" कहती हुई वह कंपाउंड का फाटक खोल रही है।

ओ! यह शायद मां की दोस्त है! मैं मुड़कर देखती हूं। मां पता नहीं क्यों सहमी हुई मेरी ओर देखती है। वह नजर मेरी समझ में आ रही है। मां ने इस लड़की से मेरे बारे में कुछ कहा होगा !

'यह लड़की कमरे से कभी बाहर नहीं निकलती,' ऐसा कुछ कह दिया होगा। इस लड़की ने भी किसी प्रकार मुझसे कुछ बात निकलवाने का निश्चय कर लिया होगा। आज जब मौका मिला तो आकर मुझसे चिपक रही है। इससे अधिक मुझसे सहन नहीं हो सका। मैं भीतर जा रही हूं। मां आकर ड्योढ़ी का चार्ज संभाल लेती है। वे दोनों बातें करने लगी हैं। मैं अपने

कमरे से ही सुन रही हूं।

वह शरीफ लड़की मां से पूछती है, "क्यों दादी! आपके घर की मामी तो बोलती ही नहीं। बहुत प्राउड है।"

"क्यों री उसे 'मामी' क्यों कहती है? 'बहन' कह ना। दो दिन से कहां थी? इधर आयी ही नहीं !"

"आपके घर में वे दादा आये थे न?"

"दादा आये थे तो क्या हुआ?"

"मुझे उन्हें देखने से डर लगता था। वे कौन थे, दादी?"

"मेरे भाई हैं। मेरी बेटी के मामा।"

"सगे भाई हैं?"

"चचेरे भाई।"

"चचेरे भाई?"

"तेरी समझ में नहीं आ रहा है तो क्यों पूछ रही है?"

"न जानने से ही तो पूछा जाता है – बताइए दादी, चचेरे भाई यानी कौन?"

मां को किस्से सुनाने की साथिन मिल गयी है। दोनों कुछ कुछ बोल रही हैं। कमरे के भीतर मैं सीधी लेटी हुई सिर के नीचे हथेलियां रखे छत की शहतीर पर नजर गड़ाये हूं। छह बज गये हैं। नहा-धोकर टहलने जा सकती हूं। मैं किसलिए यों असमय ही लेटी हुई हूं? आह ! ये मामा चले गये तो कितना आराम है ! दो दिन जैसे दो महीने की तरह लगे ! वे बहुत तंग करते हैं। मुझसे 'न' नहीं कहा जाता। कहूं तो देखने वालों को वह अन्याय मालूम होगा।

हाल में लेटकर वे कहते, 'अरी मैया री ! लल्लो ! जरा मेरे पैर दबा देना।' जब यह बूढ़ा आदमी ऐसा कहता है तो 'न' कहना उचित नहीं होगा न? पहले इस मेरी मां को ही वैसा लगेगा। भाग्य की विडंबना मानकर पैर दबा दें तो क्या वे उतने में छोड़ देते हैं? 'अरी बच्ची ! क्या तेरे हाथ दुख रहे हैं?' कहते हुए मेरी बांहें खींचकर पकड़ लेते हैं। और मेरे हाथ की उंगलियां 'चड़ाक' 'चड़ाक' करके चटकाने लगते हैं। तब सिर पीट लेने ओर भाग खड़ी होने की इच्छा होती।

ओह ! यह आदमी अपने गांव वापस चला गया – इससे कितना आराम है!

वे क्या कह रहे थे? 'अगर तुम्हारी बेटी होशियार हो तो 'उस आदमी' को ढूंढ़कर पकड़ लाए और...'

उनका ख्याल है कि मैं होशियार नहीं हूं। यह धैर्य है कि उसे ढूंढ़ा नहीं जा सकता है। यदि ढूंढ़ा भी जा सके तो वह आदमी मुझ पर विश्वास नहीं करेगा – ऐसा भरोसा है। मेरे इस मुकदमे में मामा ने यही फैसला दिया है।

अब मैं 'उस आदमी' का चेहरा याद कर देखती हूं। किसी धुंधले चित्र सा भास होता है। दस आदमियों के बीच मैं अगर उसे देख लूं तो मेरे लिए उसकी पहचान करना कठिन है।

उस दिन उसने जो बातें कहीं थीं वे अब भी साफ सुनाई दे रही हैं। 'क्या तुम जानती हो?..,यह कार पिछले दो साल से हर रोज तुम्हारे पीछे पीछे फिरती रही है। डू यू नो दैट?'

हां। अगर उसे उस कार के साथ देख लूं तो पहचाना जा सकेगा। कौन जाने? शायद वह कार अब भी मेरे पीछे फिर रही हो। मेरे पीछे कौन आ रहा है – इसकी परवाह मैं नहीं करती। कोई भी हो, मुझे उसकी क्या परवाह? मुझे हमेशा ही मुड़कर देखने में डर लगता है।

उसे पहचानना कठिन है – शायद इसलिए मैं उसे नहीं ढूंढ़ती।

उसे ढूंढ़ने की जरूरत नहीं है, इसलिए मैं उसे नहीं ढूंढ़ती – ऐसी बात नहीं है। दरअसल मैं उस पर विश्वास नहीं करती, इसलिए मैं उसे नहीं ढूंढ़ती।

अब मुझे लग रहा है, अगर मैं उसे ढूंढ़ ही लूं तो क्या होगा? यह कोई कठिन कार्य नहीं है। वैसी कारें इस मद्रास में सिर्फ दस होंगी। लेकिन वह कार अब उसके पास होनी चाहिए न ! किसी के भी पास हो, उससे क्या? अगर उस कार को पहचान लें तो उस आदमी को भी पहचाना जा सकता है।

छिः ! क्या, बारह वर्ष के बाद ऐसा पागलपन? यह सब पागलपन ही तो है ! उसमें यह पागलपन किस तरह का है – यह भी देख लें?

मैं उसे ढूंढूंगी।

6

छह महीने गुजर गये। अभी तक मैं उसे ढूंढ़ ही रही हूं। वैसी कई कारें दिखाई पड़ती हैं। लेकिन वह कार कभी नजर में नहीं आयी।

मामा ने कहा था, शायद उसे ढूंढ़ पाना मुश्किल है। क्या मैं उसकी कार को या उसको देख ही नहीं पाऊंगी? ऐसा सोचते हुए बड़ा दुख होता है।

इन बारह वर्षों से मैंने किसी कार को, किसी मनुष्य को आंख उठाकर देखा ही नहीं। क्या कोई कार मेरा पीछा कर रही है, कोई सामने से आ रहा है — मैंने कभी चिंता नहीं की। अगर कोई आकर टकरा जाये तो भी मैं न उसकी परवाह करती, न उसकी ओर देखती। जहां तक मेरा संबंध है, मेरे जीवन में अब पुरुष का कोई स्थान होगा ही नहीं, ऐसा मैं विचार करती रही हूं। अब भी पुरुष का साथ पाने की इच्छा से या प्रेम के कारण मैं उसे नहीं ढूंढ़ रही हूं। एक प्रयोजन से अब मुझे उसकी जरूरत है। अब मुझसे किसी पुरुष से प्रेम नहीं किया जा सकता। कोई भी पुरुष सिर्फ पुरुष के नाते मेरी नजर में ऊंचा नहीं उठता। किसी पुरुष के स्पर्श और घनिष्ठता को याद करने मात्र से मुझे चक्कर आने लगता है। इसी प्रकार उनकी नजर में भी मैं कोई ऊंची नहीं लगती शायद। मामा के समान ही मुझे देखने वाले हर पुरुष का यही विचार है कि अगर हाथ पकड़कर खींच लेगा तो मैं सहमत हो जाऊंगी। पता नहीं, ऐसा क्यों है? क्या मुझमें ऐसी कोई चीपनेस है? या उन्हें मुझे अनाड़ी पाकर मुझसे काम निकालने की हिम्मत आ जाती है? मेरा भला स्वभाव और उदारगुण क्या इन पुरुषों में छिपी पशुता को जागृत कर देते हैं?

पता नहीं, मैंने कौन से पाप किए हैं? सभी शोहदे मेरे साथ गंदा व्यवहार करने को तैयार रहते हैं। वैसे ही सिर उठाकर देखना भर काफी है। कोई मुझसे कुछ पूछे और मैं जवाब में कुछ कह दूं तो भी वह बदले में मेरी तरफ देखते हुए दांत दिखाने लगता है, उससे उसका वह विकृत विचार सरासर प्रकट हो जाता है।

बस में टिकट बांटने वाला कंडक्टर भी मूंछें मरोड़कर मेरी ओर देखता रहता है — टिकट के लिए पैसे लेते हुए मेरा हाथ छूकर ही लेता है। टिकट देते समय भी हाथ छू लेता है। मैं देखती हूं कि दूसरों के साथ भी क्या वह वैसा ही कर रहा है? नहीं, सिर्फ मेरे साथ ही ऐसा करता है। टिकट देने के लिए जब वह मेरे पास आने लगता है, तभी यह सोचकर कि अब वह मुझे छू लेगा, मेरा दिल धड़कने लगता है।

कुल मिलाकर, पुरुषों के बारे में सोचते सोचते, मुझे एक प्रकार की नफरत होती है। नफरत भरा डर, जैसा तिलचट्टा देखने पर होता है। तिलचट्टा यदि शरीर पर चढ़ जाए तो उसे झाड़कर छुड़ा लिया जाता है। इसी प्रकार का एक डर। लेकिन मैं अब 'तिलचट्टे' की तलाश कर रही हूं। एक प्रयोजन से ही तलाश कर रही हूं।

अब कुछ दिन से मेरी सेल्फ कांशियेंस जागृत हो गयी है। मैं अपने आसपास के वातावरण और व्यक्तियों के प्रति सचेत रहने लगी हूं। बार बार मुड़ मुड़कर देख लेती हूं। बस पर जाते हुए, पैदल चलते हुए, हर एक कार को गौर से देखती हूं। ऐसा लगता है कि मेरे पीछे वह कार अचानक आ रही हो, आनी चाहिए -- वैसी एक कल्पना कर लेती हूं।

आजकल मैं शाम के वक्त घर की ड्योढ़ी पर आकर खड़ी रहती हूं। हर एक आदमी को गौर से देखती हूं। मेरे इस प्रकार देखने पर पता नहीं, उन्हें कैसा लगता होगा? कुछ लोग सिर झुकाकर चले जाते हैं। क्यों, मेरी तरफ तुम भी तो देखते हो? — क्या वह ठीक है?

'उस आदमी' का चेहरा याद कर करके उसकी सूरत याद कर लेती हूं।

आजकल जरा पलकें बंद कर लूं, तो भी एकदम चेहरे ही चेहरे दिखाई देते हैं। पुरुष मुख—मूंछवाले मुख, मूंछ मुंड़ा-मुंड़ाकर एक हल्के हरे रंग से भरे मुख, गोल मुख, लंबे मुख, कूलिंग ग्लास लगाये मुख, चमकते हुए मुख, फुंसियों भरे, चेचक के दागों से भरे, तेल की चिकनाहट से भरे, बेवकूफी से भरे, हमेशा हंसते से लगने वाले, लंबे दांतों वाले मुख, 'उम्' करके फूले हुए मुख — कितनी तरह तरह के मुख ! एक जैसा दूसरा नहीं। वैसा होने पर भी आदमी बदल जाता है। पहचान भूल जाती है। मनुष्यों की नाक के ही कितने रूप हैं, कुछ चेहरे देखने पर कुछ जानवर याद आते हैं, कुछ चेहरे देखने पर कुछ पक्षी याद आते हैं। बकरे जैसे, घोड़े जैसे, बंदर जैसे, गिद्ध जैसे, तोते जैसे, छछूंदर जैसे — इस तरह तुलना करके देखना मेरे लिए एक अच्छा 'पास्ट टाइम' हो गया है। मैं कोई इन्हें देखने की कामना से नहीं देखती। वैसे इन मुखड़ों को देखकर न तो मैं प्रसन्न होती हूं, और न भीतर ही भीतर दुखी होती हूं। जिस किसी को देखती हूं तो सोचती हूं कि यह उस आदमी का कम से कम परिचित तो न होगा? उसके बारे में पूछताछ करने की इच्छा भी होती है। लेकिन क्या कहकर पता करूं? नाम मालूम नहीं...कार का नंबर पता नहीं...मैं किससे क्या पूछूं?

हाय ! मेरी तकदीर ! जिसके नाम तक का मुझे पता नहीं, वही मेरा सब कुछ है। मामा ने कह दिया है न? मामा? महापंडित ! मामा ने कह दिया तो मेरे लिए काफी नहीं है? वही मंत्र है न!

मामा के कहे अनुसार क्या मैं सचमुच नीच स्वभाव वाली हूं? जिसके बारे में यह भी पता नहीं कि वह कौन था, जिसके बारे में जानने की इच्छा तक न जागृत हो, मैं कैसे उसके वश में हो गयी? यह क्या नीच प्रकृति के कारण था? नहीं।

वह कोई, जिसके नाम तक का पता नहीं, वह मेरा पति है क्या? उस बार मेरे साथ

जो घटित हुआ, वही क्या मेरा विवाह है? वैसे विवाह का नाम है गांधर्व। वैसा ही न? तो क्या मैं अब अपने पति को ढूंढ़ रही हूं? जैसे शकुंतला ने दुष्यंत से कर लिया था, वैसा गांधर्व विवाह करके, जैसे दमयंती नल को ढूंढ़ती रही, वैसे ही इस आदमी को नगर की वीथियों में, हर कार में ढूंढ़ रही हूं न? अब तक वह आदमी और किसी औरत का पति बनकर पता नहीं कितने बच्चों का बाप बन गया होगा ! क्या मुझे वह स्मरण रखता होगा? याद दिलाने पर भी क्या उसे वह सब याद आयेगा?

किसी तरह उसे खोजना है, यह मेरी इच्छा है। मामा के सामने अपने को होशियार सिद्ध करने के लिए ही सही, मुझे उसे खोज ही निकालना है। इस मामा को कुछ दूर रखने के लिए ही सही, उसे ढूंढ़कर पहचान लेना चाहिए।

लंच टाइम है। मेरे सेक्शन के सभी लोग कैंटीन गये हैं। बगल में लेडीज के खाने के लिए अलग कमरा बनाकर पर्दा लगा दिया गया है। उसके पीछे दो-तीन महिलाएं खाना खाती हुई बड़ बड़ बातें करती हुई "हे-हे" करके हंस रही हैं। मुझे तो न जाने क्यों भूख नहीं है...पर मेज पर टिफिन के डब्बे में दही का भात है। इस तरफ हस्ताक्षरों के लिए फाइलों का एक ओर अंबार पड़ा है। ए.सी. ठंड पैदा कर रहा है। बगल में टेलीफोन की मेज पर एक गिलास में पानी भरकर उस पर प्लास्टिक का ढक्कन रखा है। ...क्यों हर रोज इसे यहां लाकर रख देता है? मैं एक दिन भी इस पानी को नहीं पीती ! वह समझता हैं कि अपनी ड्यूटी बजा रहा है। अगर कोई उसे बुलाकर कह दे कि "इस फाईल को ले जाओ" तो घूर कर देखेगा।

"क्यों सा'ब! हस्ताक्षर मारकर रख दिया है न? बस ! धर दो वैसे। जहां उसे पहुंचना है, अपने आप पहुंच जायेगी। और कहीं ले जानी है क्या? अलग करके रख दो उसे...। बाद में आ आऊंगा तो बताना !" यों हुक्म चलायेगा रंगसामी।

मैं किसी से कुछ नहीं कहती। महिलाएं खाने के लिए जाते समय एक-दूसरे को बुला लेती हैं। मुझे कोई नहीं बुलाती। मैं भी किसी को नहीं बुलाती। मेरी कोई मित्र नहीं है।

रंगसामी हमेशा मेरा ही उदाहरण देकर कहता रहता है। उसे दफ्तर का काम करने में ही दिक्कत होती है। कोई 'वहां जाओ, यहां आओ' कहकर भगा दे तो बड़ी खुशी से दौड़ा जायेगा। मैं तो उसे कभी कहीं नहीं भेजती।

जिस तरह मैं आज बैठी हूं, इसी तरह कल भी बैठी थी। मेरे पीछे वाली शीशे की स्क्रीन से उस पार माउंट रोड दिखती है। आती-जाती हुई कारों को देखते हुए बैठी रहती हूं। तभी अचानक सूझ पड़ता है...

यह आर.के.वी. कहीं 'वही आदमी' तो नहीं है?

मुझे तो न जाने क्यों, ऐसा लगता रहा है कि आर.के.वी. कोई स्त्री ही है। लेकिन मामा को तो वह एक पुरुष ही लगता है। वह भी एक लंपट और शोहदे टाइप का बदमाश।

उस कहानी में आधी घटनाएं, स्थान, कार, पात्र, वर्णनरीति — इन सबको देखने पर

ऐसा विचार आता है कि इसे लिखने वाला 'वही आदमी' है। इस क्षण मैं अपने मनपसंद एक इंटेलेक्चुअल के रूप में उसकी कल्पना करती हूं। एक प्रकार की मिश्रित भावना में मेरा मन छटपटाता है—'हाय ! कहीं ऐसा ही तो नहीं है !'

कहां आर.के.वी. के विचार, मानवतावाद, हृदय की उदारता और कहां कार उठाये 'कौन लड़की फंसेगी' सोचते हुए एक बस स्टाप से दूसरे बस स्टाप तक और एक गली से दूसरी गली तक भटकता वह अमीर विलासी शोहदा ! स्त्रियों की मनोवृत्ति, हमारे समाज में उनकी नयी नयी समस्याएं – इन्हीं को आधार बनाकर कहानी लिखने के कारण से ही मैं समझने लगी कि आर.के.वी. सचमुच पुरुष ही होगा। तो भी निश्चय ही आर.के.वी. 'वह आदमी' नहीं हो सकता। नहीं होना चाहिए।

क्यों? किसलिए ऐसा सोच रही हूं। 'नहीं हो सकता' तो ठीक है, 'नहीं होना चाहिए' सोचने में कौन-सा औचित्य है?

पता नहीं, क्यों? नहीं होना चाहिए – बस, इतनी ही बात है। अगर होता तो फिर कैसे आर.के.वी. की रचनाएं मुझे पसंद आतीं? तब तो लिखते हैं कुछ, करते हैं कुछ – ऐसा ही तो हो जायेगा। आर.के.वी. नाम का वह बुद्धिजीवी एक हिपोक्रेट सिद्ध होगा। वे सभी विचार केवन मायाजाल हो जायेंगे। वे विचार और उनको लिखने वाला ही जब ढोंगी होगा तो फिर उसकी प्रशंसा करने वाली, उन्हें स्वीकार करने वाली मैं भी तो झूठी हो जाऊंगी।...

भला कैसे? बारह वर्ष गुजर चुके न...इन बारह वर्षों में कुछ न जानने वाली भोली-भाली लड़की यहां तक आ पहुंची है। इसी तरह इन बारह वर्षों ने उस आदमी को – लंपट बनकर भटकते उस व्यक्ति को परिपक्व बनाकर एक आर.के.वी. बना डाला हो तो क्या यह असंभव है? क्या वह भी सदा उसी प्रकार भटकता रहेगा? जिम्मेदारी तथा विचारशीलता – यह सब ठोकरें खा खाकर अनुभव से ही तो उत्पन्न हो पाता है ! हो सकता है कि उसकी शादी हो गयी हो, एक लड़की भी पैदा हो गयी हो। अब दस-बारह वर्ष की उम्र में वह लड़की स्कूल में पढ़ रही होगी – क्या यह संभव नहीं? उस लड़की को देखते हुए क्या कभी एक दिन उसके मन ने मेरा स्मरण नहीं किया होगा? मेरे साथ जो हुआ, वैसा उस लड़की के साथ भी न हो जाये – इस प्रकार की आशंका ने उत्पन्न होकर क्या उसके दिल को नहीं झिंझोड़ा होगा?

इस जिंदगी में किसी के साथ कभी, कुछ भी घटित हो सकता है। कुछ भी घटित न हो सके – ऐसा कोई उपाय नहीं। घटित हो जाने पर क्या किया जा सकता है? हाउ टू फेस द प्राब्लम?

अगर आर.के.वी. वही आदमी हुआ तो निश्चय ही मेरे लिए एक समस्या पैदा हो जायेगी, क्योंकि उनकी रचनाओं के प्रति मेरे मन में प्रशंसा-भाव है। उस दशा में आर.के.वी. से भेंट करने में मुझे बड़ा झंझट होगा। मेरे इस जमे हुए अकेलेपन को वह भीतर ही जमा रहने देगा। मैं किसी के साथ हमेशा के लिए रह जाऊं, या किसी से शादी ही कर लूं तो भी मेरे भीतर

का कुछ जो कभी टूटना नहीं चाहिए, विचलित हो जायेगा।

आर.के.वी. कौन है – यह जान लेने का यत्न तथा उस आदमी को ढूंढ़ने का यत्न छोड़ ही दिया जाये तो कैसा रहेगा? यह विकट प्रयत्न किसलिए?

मेरी आंखों के सामने एक के बाद एक करके कारों का तांता दौड़ा चला जा रहा है। मैं सातवीं मंजिल से देख रही हूं। सैकड़ों आदमी जैसे ढेर का रूप लिये खड़े हैं, घूम रहे हैं। काली, सफेद, नीली, हरी कारें कतारें बांधकर दौड़ रही हैं। फिसलकर सरकती, खेलती हुई सी सरपट आमने-सामने दौड़ लगाती हुई जा रही हैं...यहां से देखने पर कारों की छत मात्र दिखाई देती है। भीतर बैठे आदमी को नहीं देखा जा सकता।

इन कारों में से किसी में वह बैठता होगा? कौन जाने, उसके पास कितनी ही कारें होंगी। छोटी कार भी होगी। वह देखो, एक छोटी कार आ रही है, बिलकुल सफेद, खरगोश के बच्चे जैसी। बहुत छोटी कार है। हाय ! हाय ! सामने से यह ट्रकवाला भी कैसे सड़क पर ही पीली रेखा को पार करके...हाय रे कम्बख्त ! ब्रेक...

मैं यह देख रही हूं, मेरी नजर के सामने ही एक क्षण में उस कार से ट्रक टकरा जाता है...।

यहां आवाज ही नहीं सुनाई पड़ती...

उस छोटी सफेद कार का अगला हिस्सा चूर चूर हो गया...फिर भी नहीं दिखाई पड़ा ...एकदम भीड़...पुलिस...मेरे सामने शीशे की स्क्रीन से बाहर का कोई शब्द भीतर नहीं सुनाई दे रहा – जैसे मैं गूंगी पिक्चर देख रही हूं।

लंच पर गये हुए लोग लौट आते हैं...। टाईपराइटर की खट खट फिर उभरने लगी है।

रंगसामी फाइलें उठाकर तरतीब से रखते हुए शादी की खबर की तरह दांत निपोरकर किसी को सुना रहा है, "आदमी आउट हो गया सा'ब! सजा-धजा बड़ा चमकदार आदमी था। चेहरा बिलकुल नजर नहीं आ रहा। सिर तो एकदम कुचला गया है...खतम !"

"रंगसामी! प्लीज...," कहकर मैं कान बंद कर लेती हूं। वह अपना मुंह बंद किये चला जाता है। जाने मुझे क्यों रोना आ रहा है। उस ओर मुड़कर देखने को मन तड़प रहा है। फिर भी हिम्मत नहीं होती...।

मैं जाने के लिए उठते हुए स्क्रीन से बाहर देख लेती हूं। अभी पुलिस खड़ी है। उस छोटी कार को क्रेन से उठाकर ले जाया जा रहा है...। मेरे पेट में जाने क्या होने लगा है।

दोपहर को कितनी खूबसूरती से, खरगोश के बच्चे सी दौड़ी आ रही थी। अब कुचली पड़ी है। उसे क्रेन उठाकर ले जा रही है। देखकर बड़ी पीड़ा होती है।

कोई वस्तु चाहे किसी की भी क्यों न हो, उसकी सुंदरता सभी के लिए साधारण स्वत्त्व ही तो है न ! वह सुंदरता जब ध्वस्त होती है, तब उसके सभी मर्मज्ञ रसिकों को दुख होता है...।

रंगसामी कह रहा है, 'वह आदमी – उस कार का चालक खतम हो गया।' मुझे, जाने क्यों, लगता है कि वैसा नहीं हुआ होगा। वह चाहे कोई भी हो, उसका ऐसा मरण नहीं होना चाहिए था। उसके लिए मैं प्रार्थना करती हूं। वह अस्पताल में ही होगा। बच जायेगा। उसके प्राणों को खतरा नहीं होगा। खून-वून कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है न? रंगसामी एक सिक परसन है। यह खुद ही मनगढ़ंत बातें कहता रहता है।

कहीं...वह...वही तो नहीं है? हाय !

7

मामा का सोचना सही था। आर.के.वी. नामक वह लेखक एक पुरुष ही है, स्त्री नहीं। आई एम सारी ! वह एक "महाशय" हैं। अब मैं टेलीफोन पर बात कर रही हूं। उस पत्रिका के दफ्तर में से कोई उप-संपादक मुझसे बात कर रहे हैं। मैं अपने परिचय में यह कहती हूं कि उस पत्रिका के पाठकों में से एक हूं और आर.के.वी. मेरे प्रिय लेखक हैं। उस कहानी के बारे में भी कहती हूं। टेलीफोन पर बात करते हुए मुझे किसी पराये व्यक्ति से बात करने में संकोच बिलकुल नहीं हो रहा। यह जो मैं पकड़े हुए हूं, यह रिसीवर — लगता है जैसे मैं इसी से बोल रही हूं। बहुत बोलती हूं। मैं हमेशा ही अपने भीतर 'बड़बड़' बोलती रहती हूं। वह कहानी — उसकी हर एक पंक्ति याद आती है। यह कहकर कि मैं पत्रिका के पाठकों में एक हूं, फिर यह परिचय देकर कि आर.के.वी. मेरे प्रिय लेखक हैं, मुझे स्वयं आशंका होने लगी कि कहीं यह भी कह न डालूं कि उस कहानी की नायिका मैं ही हूं। झट बात बंद करती हूं। याद आता है कि मैंने किसलिए टेलीफोन उठाया था। अंग्रेजी में पूछती हूं कि मुझे आर.के.वी. का पता चाहिए। अब उस ओर कुछ स्तब्धता सी छा गयी।

''हम लेखकों के पते औरों को, उन लेखकों की सहमति के बिना, नहीं दे सकते। अगर आप चाहें तो एक काम कीजिये। आप जो कुछ भी उनके नाम लिखना चाहती हों, हमारे कार्यालय के पते पर ही लिख दें। हम उस पत्र को उन तक पहुंचा देंगे।''

मैं खीझती आवाज में बोलती हूं, "मुझे उनसे मिलकर कुछ बातें करनी हैं।" मुझे लगता है कि अपनी पीठ को स्वयं थपथपा लूं, इतनी हिम्मत से जो बोल रही हूं।

उधर से बोलने वाले व्यक्ति भी आवाज में खीझ लाकर बोले, "वह ठीक है, मैडम! आप उनसे मिलना चाह रही हैं, वे सहमत हैं या नहीं — यह जाने बिना हम कैसे उनका पता दे सकते हैं? आप एक काम कीजिए। अपना फोन नंबर हमें दे दीजिए। उनके यहां फोन है। उनसे बात करके हम दस मिनट में आपको बता देते हैं।"

मैं फोन नंबर देती हूं। वे मेरा नाम पूछते हैं। जरा ठिठकती हूं। नाम नहीं बताया जा रहा है, "नहीं, आप इस नंबर पर फोन कर दीजिए। एक्स्टेंशन सिक्स्टी थ्री कहकर पूछिए। फोन मेरी मेज पर ही है। थैंक्यू...।" कहकर रिसीवर रख देती हूं। अब इस प्रतीक्षा में बैठी हूं कि कब फोन की घंटी बज उठेगी।

इस समय टेलीफोन की घंटी बजने और तुरंत उसका रिसीवर उठाकर उप-संपादक से

आर.के.वी. का वह पता सुनने के अलावा मानो और कोई काम ही न हो – यों खाली बैठी हुई हूं। मैं भी सरासर पागल हूं। प्रतीक्षा करनी है तो क्या यों हाथ पर हाथ रखकर बैठना जरूरी है? सामने पड़ी फाईल को खोलकर क्या पलटा नहीं जा सकता? ऐसा अभिनय नहीं किया जा सकता जैसे काम में लीन हूं? सोचती हूं, लेकिन करती नहीं हूं। अब भी मैं चुपचाप इंतजार में बैठी हूं।

इस कोने से देखने पर मेरा सारा सेक्शन, इतना ही क्यों, अगला सेक्शन भी दिखाई पड़ता है।

एक बड़े मैदान जैसा हाल। हाल भर में कुर्सियां, मेजें, टाईपराइटर, फाइलें। मेजों की कतारों के बीच पगडंडी जैसे रास्ते पर जल्दी जल्दी फाइलें उठाये हुए कुछ लोग दौड़े चले आ रहे हैं। रंगसामी अब भी धीरे धीरे ही आ रहा है। उस पगडंडी पर आमने-सामने दो व्यक्ति आ जाते हैं...हंस लेते हैं...आपस में नमस्कार कर लेते हैं...उधर मेज के चारों ओर पांच व्यक्ति हैं। इससे पहले ये चेहरे नहीं देखे हैं। उनका आपस में इंट्रोडक्शन होता है। बैठने की जगह नहीं है। अगल-बगल की मेजों के पास से कुर्सियां खींचकर वे बैठ जाते हैं... उनमें से वह व्यक्ति जो काली पैंट और सफेद शर्ट पहने है, कूलिंग ग्लास उतारकर मेज पर रख देता है और सारे हाल को नजरों से जांच रहा है। ऐसे देख रहा है जैसे दूसरों को यह जताना चाहता हो कि वह देख रहा है। जब उसकी नजर मेरे पास आती है तो मेरी नजर और कहीं हट जाती है।

इस हाल में, इस कार्यालय की गतिविधियों ओर इसकी इस सारी बदहवासी को देखते समय बिलकुल ऐसा लगता है जैसे घड़ी को खोलकर रख दिया गया हो।

उन चार विजिटर्स में कोई 'वह आदमी' होगा क्या? वह काली पैंट और सफेद शर्ट वाला क्या वही होगा? इसमें और उसमें क्या समानता है? बारह वर्षों में एक व्यक्ति की शक्ल बहुत कुछ बदल सकती है...। मैं आज क्या वैसी ही हूं, जैसी उस समय थी?

पीछे शीशे की स्क्रीन से कार पार्किंग वाली जगह में खड़ी कारों में उस कार को खोज रही हूं। कई कारें हैं। लेकिन वह कार नहीं है।

मैं क्यों इस तरह सोच रही हूं? किसी भी व्यक्ति को देखूं, कोई भी घटना देखूं, कहीं भीड़ को देखूं, किसी दुर्घटना को देखूं – मैं क्यों इस प्रकार सोचती हूं ?

कल रात छत पर जाकर लेट गयी और आसमान को देखती रही। तब लाल और हरी बत्ती टिमटिमाते हुए एक हवाई जहाज ऊपर से जा रहा था। बंबई वाला या दिल्ली वाला प्लेन था। मैं तुरंत प्लेन के वारे में, प्लेन में जाने वालों की जल्दी के बारे में, बिजनेस वाले लोगों के बारे में सोचने लगी। आखिर यह सोचकर कि इस प्लेन में शायद 'वह आदमी' भी जा रहा होगा, यह निश्चय भी कर लेती हूं कि इसी में वह जा रहा है। कोई भी विचार हो, मेरे सभी विचार अलग अलग रेखाओं में बहकर, घूमकर अंत में 'उस आदमी' पर आकर समाप्त हो जाते हैं।

इसका क्या मतलब है? अगर इसे किसी पर प्रकट करूं तो लोग सीधे से कह देंगे कि मैं 'उस व्यक्ति' से प्रेम करने लगी हूं। उससे मैं प्यार नहीं कर सकती। वैसा विचार ही मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। फिर क्यों मैं अपने मन से भटक भटककर उसे खोजती फिर रही हूं ?...

है कोई प्रयोजन? एक उद्देश्य से ही खोज रही हूं शायद। क्यों, यह नहीं सूझ रहा। लेकिन मुझे लगता है कि किसी क्षण वह मेरे सामने आकर खड़ा हो जायेगा – यह निश्चित सा लग रहा है। वह किसी भी क्षण हो सकता है। ऐसा लगता है कि वह इस क्षण भी इसी भवन में कहीं रहता है। किसी को भी बुलाकर बात करूं – हमेशा लगता है कि यह वही है या उसका कोई परिचित है। लेकिन मैं उसे खोज रही हूं और उसका स्मरण कर रही हूं – यह बात किसी को नहीं मालूम। लो, टेलीफोन की घंटी बज उठी। वन सैकेंड...।

"हां ! हां ! मैंने ही पूछा था। ठहरिए, जरा नोट कर लेती हूं। यस, बताइए ! मिस्टर आर.के. विश्वनाथ शर्मा – उनका पूरा नाम यह है? घर का नंबर सोलह...मंदेवेलि मुहल्ला? थैंक्यू वेरि मच। टेलीफोन नंबर? ओह ! घर में नहीं है? उनके कार्यालय का नंबर है? कहिए। डबल एट...ओ.के.। थैंक्स अ लाट !"

आर.के.वी. नाम से लिखने वाले आर.के. विश्वनाथ शर्मा का पता मैंने बड़े बड़े अक्षरों में लाल पेंसिल से अपने राइटिंग पैड पर लगे ब्लाटिंग पेपर पर लिख लिया है। बड़ी दौड़-धूप करके आखिर पता पा ही लिया। व्हाट नेक्स्ट?

मेरा काम ऐसा ही होता है। केवल सोच लेती हूं, यह करना है, वह करना है। कितनी बार सोचा है कि लैटर्स टू द एडिटर में लिखना है। क्या यह भी वैसा ही किस्सा तो नहीं?

मैं एक कहानी लिखूं तो कैसा रहेगा? मेरे पास अनुभव हैं। मेरी समस्याएं हैं। छिः! कहानी लिखनी हो तो आई शुड स्टार्ट थिंकिंग इन टैमिल। लेकिन मुझसे तमिल में नहीं सोचा जाता। कहानी लिखनी हो तो पहले तमिल में सोचना शुरू करना चाहिए।

मेरे अनुभव, मेरी समस्याएं, मेरे विचार...इन सबको कहानी बनाकर लिखा जा सकता है। फिर भी क्या आर.के.वी. जैसा लिखा जा सकता है? क्यों नहीं? वैसा भले न हो, तो भी किसी और ढंग से तो लिखा ही जा सकता है। लिखना है...ठीक ! अब क्या किया जाये? क्या आर.के.वी. से मिला जाये? इस पते की गली का नाम देखने पर लगता है कि कोई छोटी सी तंग गली होगी।

लेखक ही तो हैं, बड़े बंगले में क्या रहते होंगे? ये तो शायद कहीं नौकरी भी कर रहे हैं। कई लड़कियों के पिता होंगे। विश्वनाथ शर्मा – यह पूरा नाम सुनने पर लगता है कि इनकी काफी उम्र होगी। निश्चय ही, विश्वनाथ शर्मा नाम वाला एक आदमी उस कार में घूमने वाला नौजवान नहीं हो सकता। ये 'वह' नहीं हैं। इसलिए धड़ल्ले से जाकर इनसे मिला जा सकता है। फिर भी विश्वनाथ शर्मा एक पुरुष हैं। सावधान रहना होगा। अंट-शंट बात करते हुए यह

नहीं कहना है कि आपकी कहानी की नायिका मैं ही हूं। तो फिर किसलिए मिलने आयीं – इस पर क्या कहूंगी?

क्यों? ऐसा नहीं हो सकता कि बस एक पाठिका के नाते अपने प्रिय लेखक से मिलने आयी हूं?

ठीक। जब जाना होगा, तब देखा जायेगा।

उनसे मिलने के लिए जाते वक्त कुछ ले जाना है। क्या ले आऊं? मैंने अब तक किसी को कोई उपहार नहीं दिया। मुझे भी किसी ने नहीं दिया है। क्या खरीदकर ले जाऊं? एक विचार आ रहा है कि उनकी लिखी कोई पुस्तक खरीदकर ले जाऊं। क्या उनकी लिखी पुस्तक उन्हीं को भेट करूं? वाह ! खूब ! उनकी लिखी पुस्तक खरीदकर उनके पास ले जाऊं और उस पर उनके हस्ताक्षर लेकर फिर उनके उपहार के रूप में अपने पास ही रख लूं। कैसा विचार है? वेरि गुड आइडिया। इस विचार की वे प्रशंसा करेंगे। कौन जाने मुझसे पहले इस प्रकार कितने लोग उनके पास जाकर उन्हीं की पुस्तक पर उनके हस्ताक्षर लेकर गये हों ! मैं भी तो वैसा ही कर रही हूं। आज बुधवार है...शनीचर की दोपहर को चला जाये तो कैसा रहे? ठीक। क्या वे घर पर ही होंगे? क्या फोन करके एपायंटमेंट तय करना होगा? फोन नंबर...हां...डबल एट...

मैं आर.के.वी. से मिलने जा रही हूं।

छह मास पहले जब पारीस कार्नर में हमारी शाखा थी, तब बीच रोड मार्ग से बस से जा सकते थे। अब माउंट रोड वाले कार्यालय में हूं...यह रूट बड़ा बोर है।

मंदेवेलि मुहल्ले के बस स्टैंड पर बस रुकती है। उनकी गली में पहुंचने के लिए किधर जाना है? पता नहीं। किसी से पूछने में संकोच हो रहा है। तो क्या गली गली घूमती रहूंगी?

एक रिक्शा आ रहा है। इससे पूछ लेना चाहिए कि मंदेवेलि कहां है? हाथ में रखी चिट को एक बार खोलकर पढ़ती हूं। फिर उससे पूछती हूं, "उस गली के लिए तो आपको इससे पहले वाले बस स्टाप पर ही मार्किट के पास उतर जाना चाहिए था...अब वापस चलना हो तो भी इस रास्ते से नहीं चल सकते। यहां 'वन वे ट्रैफिक' है। ठीक है, छह आने दे देना। घर पर ही ले जाकर छोड़ दूंगा।"

मुझे भी वह ठीक लगा। साइकिल-रिक्शा पर बैठ जाती हूं। दो-तीन गलियों में घुमाकर आखिर... । क्या वह यही गली है? बड़ी तंग गली है...! सामने एक रिक्शा आ रहा है। दोनों रिक्शों की घंटियां बज उठती हैं। कोई भी किनारे नहीं होता। आमने-सामने रिक्शे खड़े करके दोनों रिक्शेवाले झगड़ते हैं।

मेरे रिक्शेवाले का तर्क है – उसकी गाड़ी पर सवारी है जबकि सामने वाला रिक्शा खाली आ रहा है, इसलिए खाली रिक्शा ही रास्ता दे।

शायद साइकिल-रिक्शेवालों के ऐसे ही नियम हैं। उनके अनुसार ऐसा करना ही सही होगा। इसलिए यह न्याय के लिए लड़ रहा है। लेकिन भाषा उसकी बदबू भरी है। मुझे डर लगता है। अभी दोनों हाथापाई करने पर उतारू हो जायेंगे – यह सोचकर मैं सकपकाती हूं। अचानक मुड़ती हूं। बगल वाले घर पर तेरह नंबर लिखा है। उतरकर पैदल जा सकती हूं। तीसरा मकान ही तो है।

"अरे भाई, मुझे यहीं उतरना है," कहकर बड़ी रुचि के साथ झगड़ते हुए उस आदमी के हाथ में चालीस पैसे रखकर मैं चल पड़ती हूं।

चौदह, पंद्रह...। उसके बाद – ए.वी. की नेमप्लेट। मकान नंबर सोलह। यही मकान है।

आगे के हिस्से में खपरैल की झुकी हुई छत है। लोहे की सींखचों वाली दीवार। तंजाऊर में जैसे मकान बनते हैं न, ठीक वैसा मकान ! भीतर का हिस्सा बहुत लंबा चला गया है। पहले हम लोग 'तिरुवल्लिक्केणी' मुहल्ले में रहा करते थे, वहां ऐसा ही मकान था। लगता है, बहुत से किरायेदार रहते होंगे। बाहर चबूतरे पर पत्थर बिछे हैं। वहां दो-तीन स्त्रियां बैठी बातचीत कर रही हैं। किनारे वाले कमरे में, जिसमें घर के बाहर हो जाने वाली स्त्रियां (मासिक धर्म के समय) रहती हैं, एक स्त्री सिर बाहर करके मेरी ओर झांकती है। इसे तो आंटी नहीं कहना चाहिए। कमसिन लड़की है। मुझसे भी एक या दो वर्ष छोटी होगी।

चार-पांच स्त्रियां एक साथ बैठी हुई हैं। लगता है कि इस घर में कई किराएदार रहते होंगे। साप्ताहिक पत्रिकाएं, जिल्दबंद 'सीरियल' उपन्यास वाली पुस्तकें आदि बिखरी पड़ी हैं वहां। बड़ा रस लेकर वे सब अपने अपने दैनिक हिसाब के बारे में बातें कर रही हैं।

"मैं तो डर रही थी। बेकार में तीन दिन हो गये।" एक आंटी बड़े आश्वस्त स्वर में कह रही है।

"अच्छा हुआ ! काफी बनाकर रख दी है। रात के लिए चपाती ही है। वे आते ही चिड़चिड़ करेंगे। इसके लिए मैं क्या करूं, मामीजी ?" एक दूसरी स्त्री रोनी आवाज में कहती है। जैसे कोई अपराध कर डाला हो और पछतावे में हाथ मल रही है।

"अरे ! अरे ! आ रे ! आ मर इधर ! अपनी शर्ट उतारकर तो दे मुझे ! पिता को आने दे, कहकर पिटवा डालूंगी।" एक स्त्री अपने को गलती से छूने के बाद घर के भीतर भागते हुए अपने बच्चे को दांत पीसकर डांट रही है।

इसी से पूछती हूं।

"यहां...मिस्टर विश्वनाथ शर्मा यहां रहते हैं क्या ?" सब स्त्रियां मेरी तरफ देखती हैं। मेरे तो न जाने क्यों, हाथ कांप रहे हैं, जीभ सूख रही है, दिल धड़क रहा है। कहीं यह सोचकर कि बिलकुल अपरिचित पुरुष की खोज में एक जवान लड़की आकर खड़ी है, वे कुछ अंट-शंट प्रश्न न कर बैठें !

उधर कमरे के भीतर शालीनता से बैठी हुई वह लड़की मुस्कुराकर जवाब देती है। उसका मुस्कुराना बड़ा खूबसूरत है, जैसे एक बच्चे का मुस्कुराना हो। "हां...यहीं रहते हैं। आपको उनसे क्या काम है...?" वह स्नेहपूर्वक पूछती है। लेकिन दूसरी औरतें घूरकर देख रही हैं।

"और कोई बात नहीं है...। मैं उनकी कहानियां पढ़ती हूं, वे मेरे आदरणीय लेखक हैं। उनसे मिलकर इस पुस्तक पर उनके हस्ताक्षर लेना चाहती हूं।" — कहकर पुस्तक निकालती हूं।

लगता है, उसे मन ही मन बड़े गौरव का अनुभव हो रहा है। नहीं होता होगा क्या? आर.के.वी. जैसे लेखक की पत्नी बनने का अभिमान होता ही होगा? उनकी खोज में मेरे जैसे कितने ही लोग आते होंगे? आखिर यही गौरव तो बचा रहेगा। वरना उनके आवास को देखती हूं तो उन लेखक की आर्थिक स्थिति का पता लग ही रहा है न...? क्या इस पर अभिमान किया जा सकता है?

"अरी कोसी !" अभी यहीं तो खड़ी थी। ''मामी, जरा भीतर देखिए। हमारी 'कोसी' हो तो कह दीजिए कि इन महिला को भीतर ले जाये।"

भीतरी आंगन में दीवार के किनारे तुलसी वाले गमले के पास नल से पानी भरती हुई एक बूढ़ी दादी इधर किसी के आने की आहट पाकर अपना सिर का पल्ला और आगे करती हुई मुड़कर मेरी ओर देखती है।

उसकी बगल में लगभग छह साल की एक लड़की बैठी है। बदन पर फ्राक तक नहीं है, कमर में छींट वाले कपड़े का घाघरा है जिसका नाड़ा इतना कसकर बंधा है कि पेट को दबाकर काट ही डाले। छाती पर एक 'स्लेट' संभाले हुए जीभ बाहर निकाले बड़ी गंभीरता के साथ कुछ लिख रही है। क्या यही कोसी है?...

"अरी जा री ! तेरी मां तुझे किसी काम से बुला रही है।" कहकर वह दादी उस बच्ची को दौड़ा रही है।

"नहीं जाऊंगी।" कहकर वह बच्ची किसी कारण से रूठकर वहीं खड़ी रहती है। इधर किस्से सुनाती बैठी हुई स्त्रियों में से एक दादी से कहती है — "क्या देख रही हैं? आपके घर ही आयी हैं — आपके बेटे से मिलने। लिवा ले जाइए।"

दादी पानी-भरी गगरी उठाए हुए मेरे सामने आकर खड़ी होती है, "कौन है जी? हमारे विच्चु से मिलना है क्या? आप उनके कालेज में हैं क्या?"

कौन सा कालेज?...मेरी समझ में नहीं आता। इतना समझ में आ गया कि आर.के. वी. नामक विश्वनाथ शर्मा का घर का नाम 'विच्चु' है।

"मैं उनकी कहानियां पढ़ने वाली एक पाठिका हूं।" इससे आगे कुछ कहते नहीं बनता। वे भी मुझसे और कुछ सुनने की प्रतीक्षा नहीं करतीं। कोसी...आर.के.वी. की लड़की...दोनों आंखें खूब फैलाकर मुझे देखती है। पानी की गागर लिये हुए दादी आगे चल रही है, मैं उसके

पीछे चल रही हूं।

"पिताजी! आपसे मिलने कोई आयी हैं।" दरवाजे पुकार करती हुई दौड़ रही है कोसी। उन लोगों का पोर्शन घर के पिछले भाग में है शायद। दो-तीन किरायेदार परिवार पारकर आगे पहुंचना है। अनगिनत बच्चे...ऐसा लगा जैसे एक प्रारंभिक पाठशाला के भीतर आ गयी हूं। भीतरी बरामदे में कपड़े लटक रहे हैं, जैसे तोरण बंधा हो।

दादी...आर.के.वी. की मां...बोलती जा रही है। उसका बोलना ऐसा है मानो किसी को लक्ष्य करके नहीं कहा जा रहा है। जैसे अपने से ही बात कर रही हो...लगता है, हमेशा ऐसे ही बोलने की इसकी आदत है।

"कमबख्त रास्ते भर में कपड़े डालकर रखती हैं।...सौगंध खाने पर भी कोई विश्वास न करेगा कि वह ब्राह्मणों का आवास है...पिछवाड़े के नल में पानी नहीं आता। दो दो हिस्से पारकर इधर से पानी भरकर ले जाना पड़ता है। इस पर आगे के हिस्सेवालों ने एक मुकदमा खड़ा कर दिया है...उनके भर लेने के बाद ही कोई दूसरा भरेगा।...मैं भी दो बरस से कह रही हूं....और कोई मकान ढूंढ़ ले रे। कहती हूं...पर मेरा कहना ही क्या काफी है? मकान मिलना क्या इतना आसान है? तुम जैसी सभी परिचित लोगों से कहती रहती हूं...तुम्हारा मकान कहां है?"

...अभी पता लग रहा है कि वह मुझसे ही बोल रही है।

"हमारा घर...'एगमोर'...पंचवटी है न !"

"मैंने कहां देखा है, पंचवटी कहां है, किष्किंधा कहां है ? ...तिरुच्ची से बदली होकर मेरी सगी बहन का लड़का और उसका परिवार यहां आया है...तीन महीने हो रहे हैं... कहीं 'अशोकनगर' में रह रहे हैं। 'जाना है', 'जाना है' कहते हुए मैं अलाप रही हूं। संभव होता है क्या? रास्ता मालूम हो और फुरसत हो—तब अकेली भी जाया जा सकता है। मुझे तो एक सहारे की जरूरत होती है... मुझे जब फुरसत होती है, तब वह नहीं रहता; जब वह रहता है, तब मुझसे नहीं होता।...अरे विच्चु ! तुम्हें ढूंढ़ती हुई कोई आयी है, तुम्हारी पाठिका कहती है, कहानी पढ़ने वाली है...बेचारी बच्ची। 'एगमोर'...पंचवटी कहती है...वहां से चलकर कितने चाव से यहां तक आयी है। बैठ जा, लल्ली!" कहती हुई भीतर चली जाती है और पानी की गगरी भर देती है।

पिछवाड़े आंगन है। मंगलूर वाले खपरैल से चिने छोटे छोटे कमरे कतार में बने हैं। उन तीन-चार हिस्सों में से एक है बड़े विख्यात लेखक आर.के.वी. का प्रासाद ! यह देखकर विश्वास नहीं होता।

उस पोर्शन के भीतर दो ही कमरे दिखते हैं। पहला कदम रखते ही आ जाता है, दूसरा भी वैसा ही बना हुआ है। बायीं ओर रसोईघर है। आगे जहां मैं खड़ी हूं, मेरे दायीं ओर तीन फुट का एक बरामदा है। टाट का परदा और बांस की खपचियों से घिरा हुआ यह भाग ही

आर.के.वी. का स्टडी रूम है शायद। दोपहर की नींद ले रहे हैं क्या?

आरामकुर्सी से उनके उठने की आहट सुनाई दे रही है। अब वे बाहर आने को हैं।

मुझे मालूम है, वे ही हैं मेरी कहानी के लेखक। लेकिन क्या उन्हें यह मालूम है कि मैं ही उनकी सृजित कहानी की नायिका हूं?

यह बात नहीं बतानी है। कहानी और है, जीवन और। कहानी में उस पात्र के प्रति जो सहानुभूति है, वैसा यथार्थ जीवन में स्वयं वे लेखक भी क्या दिखा पायेंगे? क्या मालूम...?

मुझे एक खुली पुस्तक नहीं बन जाना चाहिए। मैं जो यहां तक बढ़ पायी हूं, इसे सोचकर ही मैं प्रसन्न हो रही हूं। मेरा मन ही मुझसे कह रहा है... 'किसी पर आसानी से भरोसा न करना। यथासंभव अपने को छिपाकर रखना। वरना, मां, भाई और मामा के समान ही, सारा जगत तुम्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखेगा।'

लो, टाट का परदा हटाते हुए वे....

8

"यस...प्रभु आरगनाइजेशंस।"

"... ... ..."

"आप कौन बोल रहे हैं?"

"... ... ..."

"किस बात के लिए मिलना चाहते हैं? क्या हम जान सकते हैं? ठीक है, उनके 'सेक्रटरी' को देता हूं। उनसे बात कर लीजिए। प्लीज, होल्ड लाइन।"

"हलो, राव स्पीकिंग। मिस्टर प्रभु इज नाट इन स्टेशन। आप कौन हैं? क्या आपका नाम हम जान सकते हैं?"

"... ... ..."

"कोई रिश्तेदार हैं? वे दोपहर के प्लेन से आयेंगे। दो बजे के बाद घर पर फोन करके देख लीजिएगा।"

उस विशाल बंगले के निर्जन अकेलेपन में हाल का टेलीफोन बड़ी देर से बज रहा है। बाहर सुंदर धूप छिटक रही है। दूर कंपाउंड की दीवार के पास घास वाली जमीन को माली रबड़ की ट्यूब से सींच रहा है।

टेलीफोन की आवाज भी न सुनाई दे —इतनी दूर पर पिछवाड़े के बरामदे में घर के कई नौकर-चाकर और रसोईवाली बड़े उत्साह से बातें कर रहे हैं। उस घर की मालकिन पद्मा ऊपरी मंजिल पर एयरकंडिशन कमरे में अकेली बैठी, दोपहर के भोजन के बाद पान खा रही है। रेडियो पर फिल्मी गीत बज रहा है।

हाल में टेलीफोन की घंटी बड़ी देर से बज रही है। उधर, कंपाउंड के भीतर एक बड़ी कार घुस रही है। आज शनिवार है, इसलिए स्पेशल क्लास में जाकर कालेज से लौटती हुई मंजुला कार से उतर पड़ती है और टेलीफोन की आवाज़ सुनकर कुछ तेज गति से हाल में प्रवेश करती है।

"घर में कोई नहीं है क्या? सब कहां मर गये हैं?" मानो ऐसा कहना चाहती हो, इस अंदाज से दृष्टि डालती हुई दौड़कर रिसीवर उठा लेती है।

"हां ! हां ! प्रभु का ही घर है। आप कौन हैं? पिताजी से बात करना चाहती हैं?"

"... ... ..."

"आई डोंट नो। एक मिनट ठहरिए। पूछकर बताती हूं।" टेलीफोन के पास ही रिसीवर को रखकर 'मां मां' आवाज देती हुई दो दो सीढ़ियां एक साथ पार करती हुई दौड़ती है।

ऊपरी मंजिल के कमरे का किवाड़ खोलते ही फिल्मी गीत सुनाई देता है।

"मां ! पिताजी कहां है, दो दिन से नहीं दिख रहे हैं? सवेरे आये थे क्या? 'गंगा' पूछ रही हैं। उनसे बात करना चाहती हैं। कार्यालय में होंगे क्या?"

"सवेरे ही फोन आया था बैंगलूर से।"

"एअरपोर्ट पर गाड़ी गयी है। कब गये, क्यों गये—यह किसे मालूम है? बैंगलूर में आजकल रेस का सीजन है क्या? ठीक। ठीक। कार्यालय में फोन करके उस राव से पूछने को कहो। घर किसलिए फोन करती है?"

मंजुला किवाड़ बंद कर देती है तो वह गीत भी कमरे के अंदर ही बंद हो जाता है। सीढ़ियों पर चिकनी और चमकती हुई हाथ के सहारे के लिए बनी लकड़ी की रेलिंग पर हथेली दबाकर 'क्रीच' आवाज निकालती हुई सरसर करके मंजुला नीचे दौड़ी आती है और रिसीवर उठाकर बोलती है।

"आपको उनसे किसलिए मिलना है? मैं उनकी डौटर हूं। आफिस का मामला हो तो आज नहीं देख सकते। पिताजी के सेक्रटरी मिस्टर राव आफिस में होंगे। यू टाक टु हिम।"

"... ... ..."

"यस, यू आर राइट। ही इज नाट इन स्टेशन। ठहरिये, पिताजी आ गये। प्लीज जस्ट होल्ड आन। ही इज कमिंग।"

कंपाउंड के भीतर आती हुई वह उस छोटी कार की तरफ बढ़ी। कार पोर्टिकों से हटकर गैरेज में चली जाती है।

प्रभु आजकल के कालेज-स्टूडेंट जैसी पोशाक में हैं। जलती सिगरेट को कार से उतरते ही नीचे डालकर मसलते हैं और सामने आकर खड़ी अपनी लड़की को देखते हैं।

"ओ ! दिस इज आफुल। बैंगलूर में क्लाइमेट कैसा है, मालूम है? अगली बार तुभ भी साथ चलना। किसी वीक एंड को जायेंगे।"

"आपके साथ? वाह ! मां जरूर भेज देंगी!"

"क्यों? मेरे साथ नहीं भेजेगी? तब तो उसी को ले जाने को कह दो। मंजु, यू डू वन थिंग। अगले शनिवार और रविवार को मां से बैंगलूर चलने को कहना। इट इज वंडरफुल। मैं भी आकर वहां ज्वाइन कर लूंगा।"

"यह सब नहीं हो सकता। मेरे इम्तहान हैं। आपका क्या है, पिताजी ! क्या कोई एग्जाम है, बिजनेस है, कुछ नहीं। ठीक है, ठीक है। आपका फोन आया है। बड़ी देर से वेट कर रही हैं। कोई गंगा नामक स्त्री हैं।"

"गंगा?" कहकर भौंहें चढ़ाते हुए वे टेलीफोन के पास जाते हैं, मंजु भीतर चली जाती है।

ड्राइवर कार से एक छोटा बक्सा लेकर दूसरी ओर से उनके कमरे में चला जाता है।

"यस प्रभु हियर..."

मुझसे कुछ भी बोलते नहीं बनता। गला रुंध जाता है। आंखों में आंसू आ जाते हैं।

"हलो, मैं गंगा बोल रही हूं।" मेरी आवाज कांप रही है।

"गंगा? कौन गंगा? व्हाट नंबर यू वांट, प्लीज?"

"यही नंबर है...यह रांग नंबर वाली काल नहीं है। आप मुझे जानते हैं, नाट माई नेम...। नाम से पता नहीं लगेगा। देखने पर पता चलेगा।"

"ओ !" उस 'ओ' के कितने अर्थ हैं! उसमें एक युग का इतिहास और मेरी तकदीर भरी है। उस आदमी को क्या मेरा पता लग गया है? मेरी पहचान हो गयी है?...क्या उसे वह शाम याद आ रही है? मेरा चेहरा दिख रहा है?

"किसलिए मिलना है?" वह अब पूछ रहा है। मैं क्या कहूं कि कौन सी बात है? उसने अभी पहचाना नहीं कि मैं कौन हूं? या पहचान कर भी पूछ रहा है—यह सोचकर कि पहचान लेने की बात नहीं प्रकट करनी।

मैं अपनी घबराहट को, कंपन को थामे, धीरे से बोल रही हूं। साधारण ढंग से बोल रही हूं। बड़े सौजन्य के साथ, आत्मीयता से बोलने की चेष्टा कर रही हूं।

"बात क्या है...यह टेलीफोन पर कहने लायक...मैटर इज नाट सो सिंपल। मेरा आप से मिलना ही एक मुख्य विषय है। अगर आप मुझे देख लेंगे तो तब पता चलेगा। आपका नाम भी मुझे कल ही मालूम हुआ। लेकिन आपको मैं अच्छी तरह जानती हूं। हम दोनों बारह वर्ष पहले मिले थे। एक दिन जब पानी बरस रहा था न? हलो...हलो...डू यू हियर मी?"

"हां," कहकर मेरी बातें सुनने की प्रतिक्रिया जो आ रही थी, वह एकदम बंद हो गयी तो मुझे शक होने लगा कि वह सुन रहा है या नहीं। मैं चिल्लाती हूं, "डू यू हियर मी।"

"यस। आई हियर यू।" उसकी आवाज अचानक मोटी हो गयी है, जैसे रुंधी सी जा रही हो।

"आप मुझे अपनी कार में ले गये...याद है? हम 'आइलैंड ग्राउंड' में गये थे...उसका नाम 'आइलैंड ग्राउंड' है—यह मुझे उसके पांच बरस बाद मालूम हुआ। आपको याद है?... अब मैं आपको देख लूं तो आपको पहचान भी सकूंगी या नहीं—इसमें संदेह है। वह कार ही मेरे लिए एक पहचान है...लेकिन उसके बाद मैंने वह कार देखी ही नहीं। किसलिए देखती? कोई जरूरत ही नहीं थी। आई हेव नेवर बादर्ड टू सी आइदर यू, आर यूअर कार। लेकिन अब आपसे मुझे जरूर मिलना है..."

"क्या तुम्हारा नाम 'गंगा' है?" वह सांप की तरह फुंफकारते हुए उसांस भर रहा है।

आवाज कान झुलसाए दे रही है।

उसकी आंखें सांप की तरह या मोर की तरह थीं... । उस दिन, उस अंधेरे में कम रोशनी में दिखाई पड़ी थीं। वह अब वैसी ही मेरे मस्तिष्क में आ रही हैं।

यहां इस मेज पर उसकी कंपनी के 'एमप्लायर्स रिक्रियेशन क्लब' के वार्षिक अंक में प्रकाशित उसका फोटो कुछ पन्ने पलटने पर दिखाई पड़ा था। इस फोटो के नीचे उसका नाम भी है। इस चित्र को देखकर या यह नाम पढ़कर ही मैंने इसे पहचान लिया। यह वही है, यह जानने के बाद जब देखती हूं तो इन आंखों में सांप दिखाई दे रहा है।

"क्या आपको वह सब याद है? क्या आप समझ सके कि मैं कौन हूं?"

वह कमिट नहीं कर रहा है। वह अपनी बातों से कहीं पकड़ में नहीं आ रहा। वह अधिकतर 'हूं हां' ही कह रहा है।

इस तरह, पता नहीं, उसने कितने लोगों को देखा है। कितने लोग इस पर विश्वास करके इसे फोन कर करके धोखा खा चुके हैं?—यह सोचकर मैं होंठ दबा लेती हूं। दोनों के बीच का यह मौन ही मानो कोई वार्तालाप हो। क्षण भर सोचती हूं—क्या इस रिसीवर को झट से रख दूं? उसी को रखने दो। वही रख देता है या नहीं—देख लें। मैं चुपचाप रहती हूं। 'क्यों, बात नहीं निकल रही क्या?' व्यंग्य करने को मन होता है।

"गंगा !"... हाय ! हाय ! वह मुझे नाम लेकर पुकार रहा है। अब मैं क्या कहूं—सूझता ही नहीं। अब मैं कहती हूं, "हां।"

वही बोल रहा है, "मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। मुझे याद नहीं—उस दिन के बाद मैंने कभी तुमको याद किया है? याद किया होगा। लेकिन बारह बरस बाद तुम्हारा यों मुझे फोन आयेगा—यह मैंने कभी नहीं सोचा था। सचमुच तुम वही हो? ओ, तब तुम कितनी छोटी थीं! तुम्हारे बारे में जानने को मैं उत्सुक हूं। तुम कहां से बोल रही हो? तुम कैसी हो? क्या करती हो? क्या तुम्हारे घर में फोन है?"

एक के बाद एक वह प्रश्न करता ही जा रहा है। मै सब के लिए 'हूं' 'हूं' कह रही हूं। यह भी बंद होने वाला है। गले के भीतर कुछ अटक रहा है। छाती में दर्द हो रहा है। मैं क्यों रोने को हूं—पता नहीं। 'पापी' शब्द गले में अटक के रह गया है। मेरा मन कह रहा है, उसे गाली दूं, लेकिन उसे शाप देना उचित नहीं है।

"हलो...हलो...गंगा! डू यू हियर मी? प्लीज डोंट डिसकनेक्ट। हलो!"

"यस आई हियर यू।" यह सोचकर कि मैंने फोन रख दिया होगा, वह कहीं फोन न रख दे, इसलिए बड़ी कठिनाई से बोल उठती हूं...।

"तुमने कैसे मुझे ढूंढ़ लिया?"

अपनी भावनाओं को थोड़ा शिथिल करके कुछ हंसकर कहती हूं, "बड़े आदमी होने में यही आफत है। सामान्य मनुष्यों की नजर से आप लोग नहीं बच सकते। पहले टेलीफोन

पर जिसने बात की, वह आपकी बेटी ही है न?"

"हां। कालेज में पढ़ती है।"

"कालेज में?"

"हां, इसी वर्ष दाखिला लिया है।"

अपनी बेटी को कालेज जाते हुए देखकर भी इसे मेरी याद नहीं आयी। कालेज जाने लगी है तो उसकी उम्र कम से कम पंद्रह साल की तो जरूर होगी। तो क्या तब इसकी शादी हो चुकी थी?

"तुम यहां क्यों नहीं आ जातीं? जब चाहे, यहां आ सकती हो। मेरे दरवाजे तुम्हारे लिए खुले हैं। तुम मेरी बेटी से मिलो आकर। वह बड़ी अच्छी है।"

अपनी बेटी की बड़ी प्रशंसा कर रहा है। मेरी मां भी उन दिनों मेरे कालेज जाने और अच्छे अंक पाने की इसी तरह तारीफ करती रहती थी। जब वह अपनी बेटी की प्रशंसा में कुछ कह रहा है, तो मुझे क्या जवाब देना चाहिए—नहीं सूझता। वह फिर पूछता है, "तुमने किस काम से फोन किया?"

"आपसे मिलने के उद्देश्य से ही फोन किया।"

"क्यों—यों अचानक? बारह वर्ष से जो बात नहीं सूझी, वह अब?"

"जब समय बदल जाता है तो व्यक्ति को भी बदलना चाहिए? है न? छह मास पहले तक मैंने कभी यह नहीं सोचा होगा कि आपसे मिलने की इच्छा होगी। लेकिन छह महीनों से प्रत्येक क्षण मैं आपको ढूंढ़ रही हूं। मुझे तो आपकी कार की ही पहचान है। रोज मैं कितनी ही कारें देखती हूं। लेकिन वह कार कभी देखने को नहीं मिलती। आजकल वह आपके पास नहीं है क्या?"

"मेरे पास ही है। घर में दूसरों के उपयोग के लिए है। मेरी बेटी उसी में कालेज जाती है। मेरे पास एक छोटी कार है।"

"ओह, बड़े आदमी हो जाने पर छोटी कार! हां, आपके पास कोई सफेद कार भी है क्या?"

"हां।"

"पिछले सप्ताह क्या आप माउंट रोड की तरफ गये थे?"

"क्यों? रोज दो-तीन बार मैं माउंट रोड की तरफ से ही आता-जाता हूं। क्यों? क्या बात है?"

"कुछ नहीं। हमारे कार्यालय के सामने एक सफेद कार दुर्घटना में फंस गयी थी। उस समय मैंने आपके बारे में सोचा था।"

"तो...क्या तुम किसी कार्यालय में काम कर रही हो? क्या तुम विवाहिता हो? संतान है?"

मैं हंसती हूं। बड़े विचित्र ढंग से हंस रही हूं, शायद।

मेरे हंसने की आवाज से शायद वह डर गया है। "इस तरह क्यों हंस रही हो? इसमें हंसने की क्या बात है?" वह जाने क्या क्या पूछ रहा है। मैं हंसती ही जाती हूं।

"प्लीज स्टाप इट!" वह चिल्लाता है। मेरी आंखों में आंसू भर आये हैं, मेरी इस हंसी को शायद रोना ही रोक सकता है। हाय ! मुझे नहीं रोना है। कार्यालय के लोग मुझे देख रहे हैं।

मेरी कुर्सी घूमने वाली है। दफ्तर के लोगों को मेरा रोना नहीं दिखाई पड़ना चाहिए। हंसते हुए, टेलीफोन पर बात करते हुए ही, उनकी ओर पीठ करके घूम जाती हूं।

मेरी आवाज हंस रही है। मेरा मन रो रहा है। रुलाई फूटने पर ही मेरी हंसी रुक जाती है। रूमाल से मुंह पोछते हुए, मैं उसके सवालों का इतनी देर बाद अभी जवाब देने लगी हूं?

"हां, मैं एक कार्यालय में काम करती हूं। सब कुछ कहूंगी। हमें मिलना है। कहां मिल सकते हैं?"

वह मेरे कार्यालय का पता मांग रहा है। कह रहा है कि अभी आकर मिलेगा। अब मुझे लग रहा है कि वह उचित नहीं होगा। क्या घर आने को कह दूं? नहीं। यह कैसा आदमी है—यह जाने बिना, यह वही आदमी है—इस रहस्य को प्रकट करना ठीक नहीं है। कहीं—मामा के कहे अनुसार...

'उसे ढूंढ़कर पहचान लेते हैं—मान लो। लेकिन यह न्याय करने के लिए उसके पास क्या आधार होगा? वह तुम पर विश्वास नहीं करेगा। वह तो तुम्हारे बारे में यही न सोचेगा कि जो भी कार रोककर इसका हाथ पकड़कर खींच ले यह उसके संग चली जाने वाली है।'

कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसी ख्याल में यह इस वक्त मुझसे बात कर रहा हो?

मैं अब बहुत सावधान हूं। मैं तब की जैसी अनाड़ी नहीं। मैं अब बहुत बहुत होशियार हूं।

"उसी स्थान पर मिलेंगे।"

"किस स्थान पर?"

"इससे पहले जहां हम मिले थे, वहीं पर। कालेज के सामने, बस स्टाप पर। या नहीं तो साढ़े पांच बजे 'आइलैंड ग्रांउड' में ही मिलें?"

9

अभी दो घंटे का वक्त है। उस प्रभु से मैं दूसरी बार मिलने जा रही हूं। बारह बरस पहले उससे पहली बार जो मिली थी, उसका फल इस मिनट तक भोग रही हूं। अगर उससे उस वक्त न मिली होती तो? अगर उस कार में न बैठी होती तो? उसके खींचने पर खिंचकर न चली गयी होती तो? अनाड़ी बनकर मैंने रोते हुए सारी बातें मां से न कही होतीं तो?

कौन सी बड़ी चीज घटित हो जाती? उस दिन आर.के.वी. के घर पर कुछ स्त्रियों को देखा न? उन्हीं की तरह किसी से शादी करके पांच-छह बच्चे जनकर, सारे जगत को किसी 'उन' में समेटकर, उस 'उंन' के सामने डरने का दिखावा करके, समय आने पर 'उन' को डराते हुए...बस। स्त्रियों के लिए, और कौन सा जीवन बढ़िया होता है? या चाहें तो रसोई के बर्तन लुढ़काते रहने की बजाए अब मेरे जैसे या यह सामने बैठी है न, टाइप करती हुई, इसके जैसे, या नहीं तो दोनों उंगलियों में स्याही लगाए, हर मिनट आशंका के साथ कि 'वह क्या कहेगा, यह क्या कह देगा' मंगलसूत्र को खींचकर चोली के भीतर छिपाते हुए या जानबूझकर बाहर यों लटकाए हुए कि 'लाइसेंस' बांधा गया हो—दो बरस में एक बार पेट लटकाए हुए, कुछ दिनों में आंख और कान लाल किये हुए—या नहीं तो—'उसने यह कहा, इसने वह कहा'—कहकर आर.के.वी. के घर के चबूतरे के समान ही कार्यालय को भी बनाते हुए—बस, यही सब मेरे भी जीवन में होता? पढ़ने-लिखने से क्या है, नौकरी करने से क्या है, कमाने से क्या है, न कमाने से क्या है, स्त्रियों का जीवन तो, बस, कोल्हू के बैल का जीवन है।

आर.के.वी. से उस दिन बात करते समय मैंने उस तरह, जाने, क्या क्या तर्क किये थे।

इन छह महीनों में उन्होंने उस कहानी के बाद दो-तीन कहानियां लिखी हैं। इसलिए मैंने भी जाते ही उनकी हाल की लिखी रचना के बारे में ही बात छेड़ दी। दस मिनट में उन कहानियों की चर्चा खत्म करके फैसला देकर, इस कहानी में उन्हें घसीट ले आयी।

उसके बाद, जब सात बजे मैं उठ खड़ी हुई और उनसे और उन दादी से बिदा लेते हुए नमस्कार करने लगी, तब तक उसी कहानी के बारे में मैं बात करती रही। अभी उसके बारे में बहुत कुछ कहना-सुनना बाकी था।

मैंने बड़ी होशियारी के साथ अपने को छिपा लिया। उन्होंने जो कहानी लिखी, वह निश्चय ही मेरी कहानी है। उन्होंने मुझे नहीं पहचाना। मैं उन्हें पहचान गयी। उन दिनों जिन्होंने मुझे

देखा होगा, वे क्या अब मुझे पहचान सकेंगे?

आर.के.वी. नाम से अब विख्यात इस लेखक को, मैंने अपने उस कालेज के अटेंडर के रूप में पहचान लिया। इसमें पहचानने के लिए क्या है? वे अब भी उस कालेज के पुस्तकालय में अडेंटर का काम ही कर रहे हैं। उन दिनों तो उनकी चोटी थी। धो धोकर पहनी हुई शर्ट—सारी लड़कियां हमेशा इन्हें घेरकर कुछ न कुछ मजाक करती रहतीं। इनके सिर पर मोटी सी चोटी जो नारियल की जटा जितनी होती थी, उसे देखकर कई लड़कियों को ईर्ष्या होती।

"सर ! सर ! जब भी आप अपने केश कटवायें, इन्हें मुझे दे जाइयेगा। आपकी याद में रख लूंगी।" कहकर मजाक करतीं। वह भी "हां ! हां ! दे जाऊंगा।" कहते हुए हंस दिया करते।

अब मेरी नजर के सामने उनकी वह आकृति साफ नजर आ रही है। उन्होंने सातवीं या आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई की है। लेकिन उसी समय सब कहते कि इन्हें वे सभी बातें मालूम हैं, जो स्वयं लाइब्रेरियन भी नहीं जानते। हमारे कालेज में एक 'ग्रुप' रहा करता था, वह क्लास में भले ही प्रतिदिन न हाजिर हो तो भी लाइब्रेरी में हाजिरी न लगाए, ऐसा कोई दिन नहीं होता था। कोई पुस्तक पढ़ता है—यह पता लगे तो बस, इस विश्वनाथ को जाने कैसे यह मालूम हो जाता कि उन्हें कौन कौन सी पुस्तकें पसंद होंगी। वे जो पुस्तकसूची लाकर देते, उस पर सब आश्चर्य करते।

उस दिन शाम को उनके घर में, आंगन में, उस चमेली के कुंज के नीचे बेंत की दो कुर्सियों पर बैठे, हम दोनों जब बात कर रहे थे, तब उनके घर की रोशनी पीछे की तरफ ही गिर रही थी। इसलिए उनका चेहरा मुझे साफ साफ नहीं नजर आया। वह रोशनी सीधे मेरे मुंह पर गिर रही थी। इसलिए मेरा चेहरा उन्हें दिखाई दे रहा था।

कई बातें करते करते अचानक उन्होंने पूछा, "आपने कहा न एम.ए. इकोनामिक्स ! कौन से कालेज से किया?"

मुझे तो उनका चेहरा नहीं दिख रहा है, मेरा चेहरा उन्हें दिख रहा है। इस पर क्षण भर के लिए मैं घबरा गयी। मैंने तिरुच्ची और चिदंबरम में जो पढ़ा था, बस, उसकी ही बात कही।

"ओह ! नौकरी पाने के बाद ही आप मद्रास आयी हैं?" उन्होंने पूछा। मैंने 'हां' कह दिया। उसके बाद फिर उस कहानी के बारे में बात होने लगी। मैंने ही कहा—"शायद आपके मद्रास में रहने वाली लड़कियों को ऐसे अनुभव होते होंगे। मुझे तो कहानी पर विश्वास ही नहीं होता।" ओह ! मैं भी कैसा झूठ बोल गयी !

वे हंस पड़े। अंधेरे में दांत चमक जाते हैं। उनकी लड़की कोसी दौड़ी आती है। उसे उठाकर वे गोद में बिठा लेते हैं। फिर कहने लगते हैं, "आप ही एक हैं जो इस तरह पूछ रही हैं। सब कोई यह कहते हुए कि 'क्या इस प्रकार लिखना उचित है?' लड़ने को आते हैं। कोई यह नहीं पूछता कि 'क्या ऐसी घटना भी होती है?' जहां तक इस कहानी का सवाल है केवल

इसका अंत मेरी कल्पना पर आधारित है। मूल घटना तथ्य पर आधारित है। कोई दस-बारह वर्ष पूर्व हमारे कालेज में घटी घटना है यह।"

आर.के.वी. के घर की रोशनी मेरी आंखों को चुंधिया देती है। मैं रोशनी से हटकर बैठ जाती हूं। चमेली के कुंज से फूल झड़ रहे हैं। उनकी गोद से वह बच्ची उतर पड़ती है और जैसे वर्षा के पानी को हाथों में भर रही हो, यों झड़ते फूलों को हाथ में संभालती हुई घूमने लगी है। वे मेरी कहानी मुझी को सुना रहे हैं। मेरी कहानी से मिलती जुलती कहानी नहीं, बल्कि मेरी अपनी कहानी आर.के.वी. सुना रहे हैं।

उस लड़की का—यानी मेरा—नाम उन्हें नहीं मालूम। लेकिन 'उस आदमी' को वे भली भांति जानते हैं। "उसकी जिंदगी ऐसी ही रही है।" यह कहकर वे थोड़ी देर सोच में पड़े रहते हैं। फिर कहते हैं, "उस घटना के बाद वह आदमी उस कालेज के आसपास कहीं नहीं दिखाई पड़ा। हाल में जब उसे सामने पाया तो ऐसा नहीं लगता था कि वह अब भी उस तरह का काम करता होगा।"

मैंने पूछा, "उस लड़की का बाद में क्या हुआ?" वे एक शब्द में जवाब देते हैं, "नहीं मालूम।" वह जवाब ऐसा लगा मानो वह कोई उतना मुख्य विषय नहीं। फिर वे अपने आप बोले, "क्या हुआ होगा? दूसरी लड़कियों की बातों से मुझे मालूम हुआ कि उसके मां-बाप ने उसे पीटा था। घर के बाहर निकालकर किवाड़ भेड़ दिये। उसके बाद वह लड़की कालेज में नहीं दिखाई पड़ी। बस, इतना ही। यह सब सुनकर उस लड़की की मां पर मुझे गुस्सा आया।"

"क्या आप उस वक्त भी कहानी लिखते थे?"

"लिखता था। लेकिन किसी को पता नहीं था। इतनी ख्याति नहीं थी। पत्रिका वाले मेरी रचनाएं लौटा दिया करते थे।"

"इतने बरसों के बाद उस कहानी को लिखने की क्या सूझी?"

वे फिर हंसते हैं।

"आर.के.वी. अब भी कालेज की लाइब्रेरी में अटेंडर ही है। इस पर उस कालेज को बड़ा मान है। साहित्यिक सभाओं में, कालेज के वार्षिक उत्सवों में यह आर.के.वी. नामक अटेंडर बड़ी धूमधाम से आकर मालाएं पहनता है, भाषण देता है और दूसरे कालेजों से भी उसे निमंत्रण मिलते हैं। उनमें भी यह जाता है। इस कहानी में जो पात्र है वह नौजवान है। उसका नाम है प्रभु। पूरा नाम प्रभाकरन है। बारह वर्ष के बाद इस वर्ष कालेज खुलने के समय अकस्मात् मैंने उस कार को कालेज के कंपाउंड में देखा है। वह और उसकी बेटी उतरकर प्रिंसिपल के कमरे की ओर जा रहे थे। उसकी उम्र पैंतीस और चालीस के बीच होगी। लड़की पंद्रह-सोलह वर्ष की होगी। लेकिन अभी से वह लड़की अपने पिता के बराबर लगती है। कुछ दिन बाद...अपनी सहेलियों का एक झुंड लेकर आ गयी मुझसे मिलने। पूछने लगी, 'ऐसी कहानियां कैसे लिख लेते हैं?' मुझसे मिलने जो महिलाएं आती हैं वे अनेक प्रकार की होती हैं। उनमें

अधिकतर ऐसे ही प्रश्न करती हैं, इसका मैं क्या जवाब दे सकता हूं? आप ही बताइए। मेरी तकदीर है। ऐसी कहानियां लिखकर हर आदमी से कुछ न कुछ सुनना पड़ता है।"...वे हंसते हैं। मुझे भी हंसी आती है।

मैं कहती हूं, "मेरे एक मामा हैं, अगर आपको देख लें तो आपको खड़े खड़े जला डालें। प्रतिदिन कम से कम एक बार आपको गाली जरूर देते हैं। खूब कोसते हैं।"

"ऐसी बात?"...वे खूब प्रसन्न होते है। "अरी कोसी! तू खाना खा ले। सात बजे हैं। कहां चली गयी?" ...पोती को ढूंढ़ती हुई दादी बाहर आ जाती है। वह बच्ची मेरी कुर्सी के पीछे आकर छिप जाती है और इशारे से अपने पिताजी को कहती है कि छिपे रहने का रहस्य न खोलें। दादी "हो...हो" करती हुई चिल्ला रही है, "कोसी कोसी...!" उस पर भी वे हंस पड़ते हैं। वे कहते हैं..."इसी तरह से, औरों को छेड़ने में तुझे आनंद आता है। थोड़ी देर बाद वह बूढ़ी इस बच्ची को दो थप्पड़ जरूर मारेगी। तो भी इसी प्रकार छिपकर दादी को परेशान किया करती है। वरना दादी और पोती के रिश्ते का क्या अर्थ है, बताइए !"

आर.के.वी. की मां इन बातों को थोड़ा-बहुत सुनती हुई वहां खड़ी है। अचानक मुझे देखकर कहती है, "क्या इसकी लिखी कहानियों के बारे में बात कर रही है? तुम सब लोग ऐसे ही तारीफ करते रहते हो। जाने क्या, यह क्या लिख देता है। सभी के बारे में एक टेढ़ा तर्क करता है। मुझे तो बिलकुल पसंद नहीं आता है भाई। लेकिन इससे जिरह करके कोई नहीं जीत सकता। न्याय को अन्याय कहेगा, अन्याय को न्याय कहेगा। मुझमें क्षमता नहीं है। वरना इसे वकील की पढ़ाई करवाती। इसके पिता वकील के गुमाश्ता थे। वही संस्कार हैं शायद। वे भी ऐसे ही थे। सब के प्रतिवाद में तर्क करते रहते थे।"

आर.के.वी. हंसते हैं, "थोड़ी देर पहले आपने कहा न, सारे जगत को एक 'उन' में समेटने की बात ...वह यही है !"

"बस ! बस ! तुम तो मेरा मजाक उड़ा रहे हो। तुम्हारी बेटी कहां है रे !" एकाएक दादी को धोखा देने की खुशी में ताली बजा बजाकर नाच उठती है वह बच्ची।

"बड़ी होशियारी दिखाती है ! चल ! अपनी मां को बुला ला। दस बजे तक रसोई का काम फैलाए नहीं रह सकती मैं। क्यों री बेटी, बात ही बात करती रह गयी हो। कुछ खा-पी लो। थोड़ी काफी देती हूं। पी लो। यह तो वह सब नहीं पूछता है। बात करने के लिए कोई मिल जाये तो बस, बोलता ही रहेगा।" झुंझलाती हुई वह भीतर जाती है। मेरा मन उसी कहानी में लीन है।

"तो फिर? उनकी बेटी स्वयं आपसे मिलने आयी थी।"

"हां। मेरी सब कहानियां उसे याद हैं। उसके बाद एक दिन उस लड़की के पिता के कार्यालय के किसी वार्षिक उत्सव में मुझे सम्मिलित होने को बुलाने के लिए कुछ लोग आये। उस लड़की को भी सिफारिश करने के लिए अपने संग ले आये थे।

"उस उत्सव में मैंने भाग लिया। उसी वक्त मैंने उस आदमी को आमने-सामने देखा। अब वह एक भद्र व्यक्ति बन गया है। सचमुच वह एक सज्जन है। इस सज्जन का विगत काल मुझे याद आता है। एक और तथ्य भी मुझे आपसे कह देना है। इसे एक और कहानी में कहना चाहता हूं। आप सिर्फ यही समझ रही हैं कि उसने उस लड़की को बिगाड़ा। लेकिन उन लड़कियों को भी जानता हूं जिन्होंने उस सज्जन पुरुष को बिगाड़ा। इस कहानी पर लोग इतना हल्ला कर रहे हैं, अब उस कहानी को लिख डालूं तो क्या पता क्या हो जाये...। लेकिन इस तथ्य को आधार बनाकर 'अश्वमेध' शीर्षक से एक कहानी लिखने वाला हूं। देख लेना। 'हाय, तौबा' करने लगेंगे सब।"

मैं चाहती थी, वह कहानी भी सुना दें। 'सुना दीजिए,' कहना उतना उचित नहीं लगा। उनके मुंह से कौन सी बात निकलेगी...इसकी प्रतीक्षा करती देखती रही। कुछ अच्छे गायकों से गाना गाने के लिए कहने पर वे नखरे करने लगते हैं। इसी ढंग से वे मौन हो रहे।

दादी काफी ले आती है। काफी पीने के बहाने वह मौन बढ़ जाता है। "पता नहीं कैसी है यह! इसका नाम 'काफी' है। अच्छा दूध ही नहीं मिलता। तुम्हारे मुहल्ले में मिलता है क्या? डिपो का दूध मिलता है या भैंस का?"

"मैं समझती हूं कि दूधवाला घर के सामने गाय लाकर दुह देता है। उससे लड़ाई करके मेरी मां कभी कभी डिपो में जाकर भी खरीद लाती है।"

"तुम्हारे घर में कौन कौन है?"

"बस मैं और मेरी मां। मेरे भाई-भाभी सब 'तिरुवल्लिक्केणी' में रहते हैं।"

"वही बढ़िया है,"...कहती हुई दादी काफी वाला बर्तन उठाकर भीतर ले जाती है।

"उस कहानी का नाम 'अग्निप्रवेश' और इसका नाम 'अश्वमेध'—शीर्षक उपयुक्त ही है।" मैं कहती हूं।

वे हंस देते हैं, "मुझे जन्म देने वाली भी एक स्त्री है, आप भी एक स्त्री हैं। इसे भूलकर कहता हूं...। सामान्यतया स्त्री कहलाने वाले ये जीव कोई अच्छे नहीं होते। इसके लिए वे स्वयं कारण नहीं होती होंगी, यह और बात है। अपने कालेज में...स्त्री कितनी नीच हो सकती है...इसके कई नमूने मैंने देखे हैं। 'अग्निप्रवेश' कहानी की उस नायिका को भी मैंने उसी कालेज में देखा था। लेकिन बिरला ही वैसा व्यक्तित्व होता है। लोगों को संदेह होता है कि क्या आज के जमाने में भी ऐसी कोई लड़की कालेज में पढ़ती होगी। मैं तो अपूर्व विषयों को लेकर ही तो कहानियां लिखता हूं।"

"मेरे मामाजी कहते हैं...वह लड़की वैसा बुरा काम करके जब आती है तो उसकी मां उस बात को छिपा लेती है, इसलिए वह स्वयं भी निम्न प्रकृति की रही होगी। यह सब छिपाने के लिए वह अभ्यस्त हो गयी होगी। तभी वैसा संभव हुआ होगा।"

वे हंसते हैं, "क्या आपके मामा के कोई लड़की है?"

"नहीं।"

"वे वैसा ही कहेंगे।"

मैं भीतर की ओर दृष्टि डालती हूं। दादी कोसी को खाना खिला रही है। वह बच्ची पानी पीते हुए अपनी छाती पर पानी उंड़ेल लेती है। "री बंदरिया ! मुझसे कह देती तो क्या मैं न पिलाती।" कहकर दादी उसके गाल को उमेठती है। मुंह में कौर भरकर 'पिता जी' कहकर बच्ची रो पड़ती है।

"उसी को बुला ले। अरे विच्चु! यहां आकर इसकी करतूत देख ले। धरती भर पानी फैलाकर खाने की क्रिया चल रही है। इसकी कमीज उतार दूंगी और इसे मां के पास ही सुला दूंगी। मुझसे नहीं होगा जी यह सब। यह तो दो दिन में ही मेरी जान खा जायेगी।"

"क्यों री, कोसी ! दादी को तंग कर रही है? इधर आ। मैं खिला देती हूं"...मेरे पीछे से आवाज सुनाई देती है। मैं मुड़कर देखती हूं। आर.के.वी. की धर्मपत्नी है। बड़ी खूबसूरती से हंसती हुई, हाथ में थाली और लोटा संभाले दीवार से सट कर खड़ी है।

आर.के.वी. अपनी पत्नी से बोलते हैं, "तंग करने के सिवा क्या करेगी वह? दस साल बाद जो आयी है। इकलौती है, लाड़-दुलार है। छह साल की हो गयी। खाना खाने के लिए इतना ऊधम करती है। बीच वाले हिस्से के उस परिवार को देखो। चार प्राणी हैं। जव रसोई हो रही हो, तभी थाली लिये चिल्लाने लगते हैं? बच्चे न हों तो एक कष्ट, बच्चे हों तो दूसरी परेशानी।" कहकर वे हंसते हैं।

वह भी हंसती हुई "उस...उनके कानों में कहीं आपकी बात न पड़ जाये।" कहकर वह बीच के हिस्से की ओर देख लेती है।

साढ़े सात वज गये हैं। मैं जब चलने लगती हूं तो उनकी पुस्तक पर उनके हस्ताक्षर ले लेती हूं। कमरे के भीतर जाकर पुस्तक पर हस्ताक्षर करके लौटाते हुए वे साथ ही वह सौविनियर भी ले आते हैं। दो-तीन पृष्ठ पलटकर उस फोटो को दिखाते हुए कहते हैं, "आप पूछती हैं न कि ऐसा भी होता है क्या? देखिए...यही है वह हीरो।"

मैं वह फोटो देखती हूं। मुझे उन आंखों में सांप दिखाई देता है।

उसके दो-तीन पृष्ठ बाद आर.के.वी. का फोटो छपा है। उस फोटो को मांगने के बहाने उसी पर 'हस्ताक्षर' कर वह सौविनियर मांग लेती हूं।

"इसमें मेरा एक लेख भी प्रकाशित हुआ है। पढ़कर देखिए।" फोटो पर हस्ताक्षर करके वे पत्रिका मुझे दे देते हैं।

...अपने सैक्शन में मैं अकेली बैठी हूं। मैं भी अब चलने को हूं। मुझे वह नहीं पहचान पायेगा। जिन्होंने उस जमाने में मुझे देखा है, उनमें से कोई मुझे देखकर पहचान नहीं पाता। जिसकी पहचान नहीं हो सकती, उसी को पहचान लेना है। यही मेरी पहचान होगी।

10

वही है। वहीं वह कार खड़ी है। अभी सूरज नहीं डूबा। उस मैदान में एक तरफ धूप पड़ रही है। एक और छोटी कार है—कोई ड्राइविंग सीख रहा है...कार उस मैदान में परिक्रमा करके आती है।

मैं 'मनरो' की प्रतिमा के पास आ रही हूं। इतनी दूर से मैंने उस कार को पहचान लिया है। बारह वर्ष के बाद अभी मैं उस कार को पहली बार देख रही हूं।

वह कार कैसी होगी...इसकी कल्पना करके मैं देख सकती हूं। लेकिन 'वह' कैसा होगा...इसकी कल्पना अब तक मैं नहीं कर पायी हूं।

पता नहीं क्यों, मुझे...उस पुरुष से अकेले मिलने में थोड़ा भी संकोच नहीं हो रहा है। ऐसा लग रहा है जैसे पूरे अधिकार के साथ, न्यायोचित ढंग से कोई काम कर रही होऊं...

मेन रोड को पारकर जाती हूं। उसके बाद दो छोटी छोटी सड़कें। मेरी तरह दो और युवतियां वहां से गुजर रही हैं। सचिवालय में काम करती होंगी। कुछ महिलाएं चली जा रही हैं। कुछ जोड़े भी चले जा रहे हैं। वह कार में बैठा, इधर चलती हुई स्त्रियों की ओर देख रहा है। इनमें से मैं कौन हूं?...वह कैसे जान पायेगा?

मुझे उसे पहचान लेने में सहूलियत हो...इसीलिए अब इस्तेमाल होने वाली छोटी कार की बजाय वह अपनी वही पुरानी कार ले आया है।

मैदान में उतरकर चल पड़ी हूं। शाम की धूप मेरी पीठ पर पड़ रही है। मेरी छाया लंबी होकर सामने जमीन पर गिर रही है। अब उसने मुझे जान लिया है...यह मुझे मालूम हो रहा है। मैं कल्पना कर लेती हूं मानो उस छाया जितनी ऊंची होकर मैं सारे मैदान को देख रही हूं।

विशाल मैदान के एक कोने में वह कार खड़ी है, दूसरे सिरे से हाथ में 'हैंडबैग' लिये मैं उस कार तक की एक सीधी लकीर में चल रही हूं। ड्राइविंग सीखने वालों की वह छोटी कार जैसे कोई खिलौना हो, उस मैदान में चक्कर काटती हुई चल रही है। इतने विशाल मैदान में उधर जो खड़ी है वह कार, उस ओर जो चल रही है वह छोटी कार, और इधर जो मैं चल रही हूं—हम कुछ हलचल ही नहीं पैदा कर रहे हैं। मैदान सूना सा लग रहा है।

उसने मुझे देख लिया है...इसका संकेत देते हुए वह दरवाजा खोलकर पांव उस पर टिकाए कूलिंग ग्लास उतारकर मेरी ओर देख रहा है। मैं अभी भी उसे नहीं पहचान पा रही हूं।

उसे पहचानकर मुझे क्या करना है ! मैं किसलिए इससे मिलने जा रही हूं? किसलिए मैंने इतना कष्ट उठाया? इसे आने को कह दिया गया और अब मैं आ भी पहुंची हूं। आगे क्या कहना है? किसने कहा था यह सब करने को?

कार के निकट आते आते मन में एक प्रकार का डर पैदा होने लगता है। यह सोचकर कि स्वयं अनावश्यक समस्याएं पैदा कर रही हूं—मन बेचैन हो रहा है। सिर उठाकर नहीं देखा जा रहा।

कार के पास पहुंच गयी हूं।

वह भी कार का दरवाजा पूरा खोलकर मैदान में उतरकर खड़ा हो गया। मैं सिर उठाकर उसे भली भांति देखती हूं।

हां...वही है। वे हैं। सम्मुख देखने के बाद मुझसे आयु में बड़े एक व्यक्ति का उल्लेख आदर के साथ ही तो करना है। 'वह' 'यह'—यों सोचते नहीं बनता !

'हलो' कहकर वे मेरी तरफ हाथ बढ़ा रहे हैं। इनके साथ बरसों पहले 'प्लीज गैट इन' कहकर जिसने दरवाजा खोला था, उसकी तुलना करती हूं।

वह पतला और लंबा था। अब की तरह ही कसकर पहनी हुई ड्रेस उस समय ठीक लगती थी। अब शरीर में जहां तहां मांसलता आ गयी है। औसत कद। उस वक्त पतला होने के कारण लंबा लगता था, अब मुटापा आ जाने से कद छोटा लग रहा है। कनपटी पर दोनों ओर जैसे राख लगी हो, यों बाल सफेद हो गये हैं। भौंहें और आंखें ठीक वही हैं।

'हलो' कहकर उनके पसारे हाथ को मैं भी वैसे ही धीरे से पकड़कर 'हलो' कहती हूं। सिगरेट पीने के कारण दोनों उंगलियों पर लाल धब्बे पड़ गये हैं। हाथ मिलाने के बाद मैं अपनी उंगलियां रगड़ लेती हूं। खूब रगड़कर हाथ धो लेने को मन होता है। साढ़े पांच बज रहे हैं। अभी भी ऐसी धूप पड़ रही है। उन्होंने कहा..."कार में बैठकर बात करेंगे।" मैं दरवाजा खोलती हूं। वे दूसरी तरफ से 'स्टीयरिंग' के पास आकर बैठते हैं। मैं दरवाजा खोले हुए उसी तरह खड़ी हूं।

"गैट इन !" उस दिन जैसे कहा था, ठीक वैसे ही कहते हैं। दोनों बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहते हैं। वे सिगरेट जलाते हैं।

"मैंने टेलीफोन पर पूछा 'क्या तुम्हारी शादी हो गयी' तो तुम हंसने क्यों लगीं?"

मैं सिर झुकाए जवाब देती हूं, "शादी बड़ी प्रसन्नता की बात होती है न? उसके बारे में बोलते हुए हंसने की बजाय क्या कोई रोयेगा? मेरी शादी के बारे में जब आप पूछते हैं तो क्या मैं न हंसूं?" ...मैं भी कैसा नाटक खेल रही हूं? मुझे भी इस तरह के संवाद बोलने आते हैं?

ये किसलिए यों मेरी तरफ देख रहे हैं? बारह वर्ष पहले मैं अनाड़ी कुछ न बोल पाती थी, उसी बारे में सोच रहे हैं क्या?

"कालेज जाने की उम्रवाली आपकी एक लड़की है...यह सोचकर आश्चर्य हो रहा है?" अचानक मैं बोल उठी, "आपके कितने बच्चे हैं?"

"जिसने टेलीफोन पर आपसे बात की थी न, वही मेरी बड़ी बेटी है मंजु। उसके बाद दो बच्चे हैं...लड़के। एक 'सुभाष' है, दूसरा 'बाबू'। सुभाष बारह साल का है, उससे छोटा है बाबू।" इनकी बातें सुनने पर लगता है कि ये उन बच्चों से कुछ खिंचे खिंचे ही रहते हैं।

"क्या आपकी उस समय शादी हो चुकी थी? आपकी बड़ी बेटी भी पैदा हो गयी थी, है न?" मैं पूछती हूं। वे 'हां' का संकेत देते हुए सिर हिला देते हैं।

"उस वक्त आपने मुझसे इसके बारे में शायद कुछ भी नहीं कहा था?" मैं गुनगुनाती हूं।

"हमने उस समय एक-दूसरे के बारे में जान लेने की परवाह ही नहीं की... ।" यह वे अंग्रेजी में कहते हैं। "दैट इज गुड। मैं जिन जिन से मिला हूं, उन सबके बारे में जानना शुरू करूं तो उसका कोई अंत ही नहीं होगा। कहीं दो व्यक्ति मिल लें तो एक का बोझ दूसरा अपने सिर पर नहीं लाद लेता। इसीलिए यह न जानते हुए कि कौन है, कहां है...किसी से मिल लेने में एक प्रकार की खुशी होती है। वी शेयर ओनली प्लेजर्स। अपने अपने कष्ट अपने अपने पास ही रखते हैं। किसी का कष्ट कोई और नहीं बांट सकता। इसीलिए मैं किसी से मिलता हूं तो यह भी नहीं पूछता हूं कि आपका नाम क्या है। अपने बारे में भी कुछ नहीं कहता हूं।"

"यह आपके लिए बहुत ही सुविधापूर्ण है। आप समझते हैं कि दूसरों के बारे में जानने की जरूरत नहीं है। लेकिन आप जो दूसरों से मिलते रहते हैं, यह भी जानते होंगे कि सब आपकी तरह नहीं होते।" मैं जो कह रही हूं, यह इनकी समझ में नहीं आ रहा है शायद ! सिर हिला तो देते हैं, जैसे समझ लिया हो।

मैं पूछती हूं, "मैं जो कह रही हूं, क्या आप उसे समझ रहे हैं?"

"नहीं, एक बार और कहो।" कहकर वे अबोध की तरह सिर हिलाते हैं। थोड़ा डल टाइप हैं। उस समय कुछ तेज लगते थे। बारह वर्ष की अवधि किसी को कुछ भी बना देती है शायद।

अब मैं कुछ हिम्मत के साथ बोलती हूं। "इस कार में आपके मेरे साथ जो अनुभव हुए थे, उसी प्रकार और भी कितनों के साथ हुए होंगे। हमारे कालेज की ही बहुत सी लड़कियां आपको मिली होंगी। जिनसे एक बार मुलाकात हुई, जिनसे बार बार मुलाकात हुई, जिनसे कहीं भी मुलाकात हो गयी...ऐसी कितनी ही लड़कियां होंगी। उनमें से कितनी ही लड़कियों की शादी हो गयी होगी। उन्होंने स्वयं आकर आपको निमंत्रण दिया होगा। आप भी कोई उपहार लेकर शादी में गये होंगे। आपने बड़े आदमी बनकर आशीर्वाद दिये होंगे। देखिए, लोग सब घटनाओं को कैसे आसानी से अपना लेते हैं।" देखती हूं कि उनके चेहरे का रंग उड़ गया है।

"इसीलिए मैंने तुमसे पूछा था कि क्या तुम्हारी शादी हो गयी...बच्चे कितने हैं...?"

अब मैं अपने मामा का स्मरण करती हूं। वे कहा करते थे, 'वह तुम पर विश्वास नहीं करेगा। तुम्हारे बारे में यही सोचेगा कि जो भी कार खड़ी करके तुम्हारा हाथ पकड़कर खींचे, तुम उसी के साथ चली जाती हो।'

मामा के शब्दों में ही कहती हूं। मामा की तरह ही यह भूलकर कि मैं एक स्त्री हूं, बिना संकोच के कहती हूं—"जो भी कार खड़ी करके मेरा हाथ खींच ले, उसके साथ मैं चली जाती तो मेरी भी शादी अब तक हो गयी होती। मेरा वैसा स्वभाव नहीं है। उस दिन आपने कहा था न...कि यह सब सर्टिफिकेट नहीं चाहिए।"...जब यह याद दिलाती हूं तो वे कुछ न समझ कर भौंहें उठाकर देखते हैं।

"सर्टिफिकेट? मैंने वैसा कुछ नहीं कहा?" उनका लड़खड़ाना देखकर मुझे हंसी आती है।

"आपको याद नहीं होगा। हमने जो बातें की थीं, वह हर बात, जिस जिस मुद्रा में हम रहे थे...वे सब...उनका एक एक स्पंदन मुझे याद है। आपने मेरा कंधा पकड़कर हिलाया था। तब मैंने कहा था, 'मुझे डर लग रहा है। यह सब कुछ नया है' तब आपने पूछा था...मानो गाल पर तमाचा मार रहे हों... 'यह सर्टिफिकेट किसलिए?' "

"यह याद है।"

वे अपने माथे पर हाथ फेर रहे हैं।

"आई एम सारी। क्यों, परेशानी महसूस हो रही है? बारह वर्ष पहले एक उम्दा शाम जैसे बिगड़ गयी थी, आज भी वैसे ही बिगड़ती जा रही है...इस पर क्या खेद हो रहा है? मिस्टर प्रभु ! बेकार जो जाता है, वह एक ईवनिंग मात्र नहीं है। यह कहने के लिए ही मैंने आपको बुलाया है।"

"नो...नो...वैसा कुछ नहीं। तुम्हारे साथ टेलीफोन पर जो बात की, अब तुमसे जो भेंट हो रही है, इस पर मुझे बड़ी खुशी है। मैं जिनसे मिला, मेरे साथ जो कार में आयीं, तुम उन जैसी नहीं हो...यह तभी मुझे मालूम था। इसीलिए मेरे मन में अपराध भावना बनी रही। मैंने जानबूझकर तुम्हें भुला दिया। स्मरण नहीं रखा। मैंने सोचा कि उस ईवनिंग के साथ ही तुम्हें भूल जाना ठीक है। मैं भूल गया। मैं तुम्हें एक सच्ची बात कह दूं? मैंने अपनी जिंदगी में जिसे सचमुच बिगाड़ा, वह एकमात्र स्त्री तुम्हीं हो, बाकी सब पहले से ही बिगड़ी हुई थीं।"...यह कहकर सिगरेट का कश जोर से खींच लेते हैं। धुएं के कारण या और किसी वजह से उनकी आंखें लाल हो जाती हैं। खंखारकर गला साफ कर लेते हैं। मुझे नहीं देखा जा रहा है, इसलिए बाहर देखने लगते हैं। मैं भी मुंह फेर लेती हूं।

उस मैदान में चक्कर काटती हुई वह छोटी कार अब नहीं दिखाई दे रही है। अब मैदान में हमारे सिवा और कोई नहीं है। लंबे लंबे साये घने होते होते मिलकर एक हो गये हैं और

ऐसी मलिनता छा गयी है कि यह भ्रम होता है—यह संध्या है या सवेरा। अगर सवेरे का समय समझ लें तो वैसा ही लग रहा है। दूर 'आयरन ब्रिज' पर बत्तियां जल रही हैं। सारे बीच रोड पर रोशनी है। अभी प्रकाश है, इसलिए बल्ब देखने पर ही पता लगता है कि वह जल रहा है। मैं घड़ी देखती हूं। साढ़े छह बजे हैं।

घूमकर उन्हें देखती हूं। इधर न देखकर उस तरफ के दरवाजे पर ठुड्डी टिकाये बाहर देखते हुए वे चुपचाप बैठे हैं। माथे पर बाल बिखर गये हैं। उस दिन की तरह आज भी उन्हें गौर से देखती हूं। अब भी...उस दिन की तरह न सही, तो भी आज वे सुंदर ही हैं। जब हवा का झोंका इस ओर बहता है तो सेंट की महक जो धीमी थी, जोर से फैलने लगती है।

इनके पास जो धन है, उसे 'माइनस' करके देखें तो इन व्यक्ति का क्या मूल्य है...? यह विचार आने पर मुझे वड़ी दया आती है। यह शरीर तो मेहनत के लायक भी नहीं है। जो धन है वह भी इनका कमाया हुआ नहीं होगा। इन्होंने कहा...अपनी जिंदगी में सिर्फ मुझे ही इन्होंने पहली वार बिगाड़ा था। इनकी पत्नी की क्या दशा है? मंगलसूत्र बांधा है, इसलिए शायद समझते हैं कि इन्होंने उसे बिगाड़ा नहीं। ऐसे आदमी के संग मंगलसूत्र बांधकर रहने वाली स्त्री धन की प्रतिष्ठा के अतिरिक्त और किस चीज पर अभिमान कर सकती है... ? इसमें स्पष्ट होने के लिए क्या है? यह मेरा अधिकार है...यस। दिज इज माई राइट...मैं शायद हंस पड़ी। ये झट मुड़कर मुझे देखते हैं, "इन बारह वर्षों से मेरे ही बारे में तुम सोचती रहीं, तो मुझे ढूंढ़ने में इतना समय क्यों लगा दिया?"...इनके इस प्रश्न से स्पष्ट है कि ये किसी तथ्य की कल्पना कर रहे हैं। लेकिन यह भी साफ है कि...जैसे मामा जी ने कहा था, इन्होंने मुझ पर अविश्वास भी नहीं किया है। मुझे लगता है, मेरी हर बात पर, वह जितनी सच्ची है, उससे कुछ ज्यादा ही ये विश्वास कर रहे हैं। बेचारे ! मुझे इन्हें धोखा नहीं देना चाहिए।

मैं कह रही हूं..."नो...नो...वैसा कुछ नहीं है। छह महीने पहले मैंने आपका स्मरण किया था। यही सच है कि मैं इन छह महीनों से आपको ढूंढ़ रही हूं। उससे पहले मैंने आपको ढूंढ़ने की न सोची थी, न ढूंढ़ा ही।"

ये कुछ देर सोचकर बोलते हैं..."उसके बाद मेरा ख्याल है, तुमने कालेज की पढ़ाई बंद कर दी होगी। तुम्हें भले ही ढूंढ़ता हुआ मैं आया न होऊं, तो भी उधर से जाते समय मैंने कभी तुम्हें नहीं देखा। क्या मेरा कहना सही है?"

मैं मन में सोचती हूं, 'उसके बाद मैंने जो कुछ भोगा—वह सब आपको क्या मालूम?' जीभ सूख रही है, ओंठ कांप रहे हैं। इन्हें जब जिस मिनट देखा था, तब से लेकर इस मिनट तक मेरी जिंदगी में जो कुछ घटित हुआ, वह सब इनसे कहकर क्या पूरा संवारा जा सकता है? यह सोचने मात्र से स्तब्धता उत्पन्न होती है। एक भ्रम नहीं उत्पन्न हो रहा है; किसी बात को सोचने जाकर उसके पूरे होने के पहले ही दूसरी बात उभर आती है। वैसे मनुष्यों के चेहरे,

उनकी बातें, मार-पीट, गाली-गलौच, कालेज, होस्टल, घर, फ्रेंड्स, लेक्चरर्स, पढ़ी-लिखी बातें—सब कान में गूंज उठते हैं, आंखों में घूम जाते हैं, सब घुल-मिलकर अस्त-व्यस्त हो मेरे सिर के बाहर और भीतर मंडरा रहे हैं।

आंखें बंद किये, सिर झटकाकर एक ओर को झुक जाती हूं।

"क्या बात है?" कुछ पूछते हुए ये मेरे कंधे पर हाथ रख देते हैं।

"छिः!" कहकर चौंकते हुए आंखें खोल देती हूं। संभलकर मुंह पर आये गुस्से को दबाकर धीरे से कहती हूं—"आई एम सारी।"

बेचारे ! इनके हाथ कांप रहे हैं।

"गलत न समझ लीजिए। मैं भी आपको गलत नहीं समझती हूं। मैं किसी ध्यान में थी। अचानक हाथ लगने पर बिना सोचे-समझे कह गयी।" मैं अपने आप कुछ कहती हूं।

"हम और कहां चलें? अंधेरा हो गया है।" वे सहमे हुए स्वर में कह रहे हैं।

"ओ यस...।"

"वैसे ही 'आयरन ब्रिज' मार्ग से 'बीच रोड' पर जाकर 'मेरीना कैंटीन' में काफी या कोल्ड ड्रिंक पियें?"

"ओ यस।"

बारह वर्ष पहले, इसी तरह इसी कार में एक दिन शाम के वक्त...मैं पीछे की सीट पर बैठी थी। इनके साथ इस ग्राउंड के भीतर आकर फिर यहां से चलने के क्षण से लेकर अब तक जो कुछ हुआ वह सब अदृश्य हो गया। अब मैं पीछे की सीट से आगे की सीट पर आ गयी हूं। थोड़ी देर पहले 'छिः' कहने पर ये घबराकर अलग हो गये थे—वैसे ही मानो अपनी ओर बढ़ते हुए इस व्यक्ति को झटककर मैंने अलग कर दिया हो। इसी तरह की कल्पनाएं करती हुई मैं बैठी रही।

कार चल रही है। इस कार का स्टीयरिंग बाईं ओर है। और कारों में ऐसा नहीं होता है न? शायद बस स्टाप में खड़ी रहने वाली लड़की के साथ जैसे सट जाती हो, वैसे खड़ी करके 'लिफ्ट' देने में इस तरह की कार से बड़ी सहूलियत होती होगी।

मैं स्वयं बोल उठी, "उसके बाद मैं इस शहर को छोड़कर चली गयी। उस दिन आपके साथ कार में चली न, बस, वही अंतिम दिन था, जब मैंने वह कालेज देखा। गली के सिरे पर 'आई एम सारी' कहते हुए आप मुझे उतारकर चले गये। जैसे किसी ने पीटा हो—मैं इस तरह रोती हुई घर गयी। मां से सारी बातें कहकर और जोर से रो पड़ी...।"

"ओ माइ गुडनेस !" जीभ दांतों में दबा लेते हैं।

" 'कौन है री वह? बोल...?' कहकर मां ने खूब पीटा। मैं क्या कहूं—कौन है? उसके बाद जाने क्या क्या हो गया। मैं तंजाऊर में अपने मामा के यहां चली गयी। तिरुच्ची और चिदंबरम में पढ़ाई की। जब से नौकरी मिली, यानी इन पांच-छह वर्षों से मैं मद्रास में ही हूं।

मैं शादी नहीं करूंगी। मेरी शादी नहीं होगी। इसका मुझे कोई खेद नहीं है, बल्कि खुशी है। लेकिन अविवाहित स्त्री की यहां इज्जत नहीं होती। इस बात पर कोई विश्वास नहीं करता कि शादी भी न हो, कोई पुरुष साथी भी न हो और पुरुष के बिना कोई स्त्री अलग रह ले। स्त्री को उस प्रकार रहने की कोई अनुमति नहीं देता। इसके लिए क्या मैं और किसी दूसरे पुरुष से जाकर शादी कर लूं और धर्म-कर्म बिगाड़ लूं? बताइए?"

ये एक बार मुड़कर मेरी ओर देखते हैं। मुझे डर लगता है—ये कहीं रो न पड़ें।

"क्यों, आप चुप हैं? कुछ भी नहीं कहा?" मैं पूछती हूं। एक बार खंखारकर वे गला साफ कर लेते हैं।

"तुम्हारे पास बात करने के लिए कोई विषय है। मैं तो किसी लायक नहीं रहा। गुड फार नथिंग। तुम जो कहती तो कि यह पढ़ाई की है, वह पढ़ाई की है...उसके पास फटकने तक की मुझमें योग्यता नहीं है। सोच रही होगी कि मैं कैसे अंग्रेजी बोल रहा हूं? पढ़ाई की है सिर्फ हाई स्कूल तक की...कांवेंट एजुकेशन की। क्या फायदा है? अब तो मैं ठीक-ठाक तमिल भी नहीं बोल पाता। इसलिए कई अवसरों पर बोलने में ही डर लगता है।" ये हंसते हुए ही कहते हैं। लेकिन मैं समझ पाती हूं कि इनके मन में कैसी हीनता की भावना और वेदना है। हम कुछ क्षण चुप रहते हैं। फिर दोनों उस रेस्तरां के भीतर घुस जाते हैं।

ये पूछते हैं, "तुम वेजीटेरियन ही हो न? मैं समझता हूं, तुम ब्राह्मण हो।...तुम्हारी बोली से वैसा ही लगता है..."

मैं कोई जवाब नहीं देती।

एक वेटर आता है। इन्हें सलाम करता है। इनका परिचित लगता है। अक्सर यहां आते होंगे।

"क्या लोगी? बिस्किट्स एंड टी?"

"खाली चाय।"

"ओ.के., सिर्फ चाय ले आओ।"

उसके जाने के बाद मुझे रोशनी में अच्छी तरह देखते हैं, "तुम्हें देखने पर मुझे एक ओर खुशी हो रही है और दूसरी ओर खेद होता है।"...कहकर थोड़ी देर कुछ ध्यानमग्न हो जाते हैं। फिर अंग्रेजी में कहते हैं, "खेल जैसी जो दुर्घटना हो गयी, उसे तुम्हें भूल जाना चाहिए था। इसके लिए क्या अपनी सारी जिंदगी बरबाद कर लोगी?...जीवन की घटनाओं को सरलता से अपनाकर चलना चाहिए।"

लगता है कि मेरे लिए इन्हें सचमुच ही सहानुभूति हो रही है।

"जब मैंने कहा कि मैं तुमसे मिलने आऊंगा...तब मैंने सोचा कि तुम्हारी शादी हो चुकी होगी, दो-तीन बच्चे भी होंगे। एक मित्र के नाते तुम मुझसे कुछ सहायता मांगने आ रही हो...या नहीं तो...केवल परिचय कर लेने के लिए फोन कर रही हो...। मैंने यही सोचा था।"

"ओह ! शायद ऐसी भी महिलाएं हैं जो शादी कर लेने के बाद भी आपसे मिलती रहती हैं?" मैं व्यंग्य से पूछती हूं।

"इस जगत में क्या नहीं होता? लेकिन अपनी जिंदगी को बरबाद करने वाली औरत मेरी जानकारी में केवल एक तुम ही हो... ।"

उनकी बात काटकर पूछती हूं, "वह कैसे संभव है? मेरी अंतरात्मा की बात छोड़ दीजिए। किसी लड़की के बिगड़ जाने की बात फैल जाये तो फिर उससे शादी करने के लिए कौन तैयार होगा?"

"यह तुम क्या बात कर रही हो--बिगड़ गयी...बिगड़ गयी। मैं कई ऐसे उदाहरण जानता हूं। एक व्यक्ति से शादी कर उसे 'डायवोर्स' करने के बाद दूसरे से शादी कर लेने वाली स्त्रियां भी हैं। तुम बिगड़ गयीं... क्या इस बात को किसी ने देखा है? मुझसे तुम्हारी भेंट हो गयी है...इसका कोई परिणाम निकलना है ! क्या चाहती हो, बताओ !"

'वेटर' चाय लाता है।

ये कप और सासर लेकर मेरे हाथ में देते हैं। स्वयं एक प्याला ले लेते हैं। वेटर चला जाता है। चाय की चुस्की लेते हुए कहते हैं, "तुम्हारी शादी होते देखना चाहता हूं। सच ! तुम्हारी जैसी लड़की को यों जिंदगी बरबाद नहीं कर लेनी चाहिए। मैं स्वयं तुम्हारे लिए एक फर्स्ट क्लास दूल्हा ले आऊंगा, देख लेना। यह बिगड़ जाना...यह, वह...इन सब से परे रहता हो—ऐसा उदार व्यक्ति।...तुम क्या कहती हो?"

...यह अब पहले जैसा नहीं है...अब तो यह एक भद्र व्यक्ति हो गया है। हां, यह एक सज्जन है...आर.के.वी. ने इसके बारे में जो कहा था...उसे याद कर रही हूं।

11

उस रेस्तरां से बाहर निकलने तक...इन्होंने मेरी शादी की बात छेड़ दी....उस क्षण के बाद मैं कुछ न बोली। असमय चाय पीने से जाने कैसा लग रहा है। हमारे चारों ओर कारों में या पैदल काफी लोग चल रहे हैं। इनमें से मुझे हमारा कोई परिचित न देख ले...यह डर लग रहा है। डर किसलिए? देखने दो? सब देख लें...इसीलिए तो मैंने यह काम करना शुरू कर दिया है। इसमें डरने की क्या बात? धीरज के साथ सिर ऊंचा करके बैठ जाती हूं।

अब कार 'बीच रोड' पर जा रही है। जैसे शादी का जुलूस हो...कार यों धीरे धीरे चल रही है। ये सिगरेट पी रहे हैं। सिगरेट के धुएं की तरंगें हवा में उड़कर मुझे छूती हुई बह जाती हैं। यह सब अच्छा लग रहा है। छिः ! इसे कोई अच्छा समझेगा? स्त्रियों के लिए यही शोभा देता है कि नाक-भौंह सिकोड़कर कहें कि 'बदबू से चक्कर आने लगा है।' यह सिगरेट की बू अच्छी कैसी? अगर यह अच्छी लगने लगे तो वैसी स्त्री का मन किस हद तक बिगड़ गया होगा, यह बात हमारे मामा से पूछनी चाहिए। एक बड़ी 'थीसिस' पढ़ देंगे। सिगरेट किस तरह एक पुरुष को 'रिप्रेजेंट' करने वाला प्रतीक है? यह बू अच्छी लगती है—कोई लड़की अगर यह कहे तो एक पुरुष का संग पाने के लिए वह कितनी तरसती होगी...!

मामा का मन मुझी को मालूम है। उसमें क्या क्या विचार आते हैं, वह क्या क्या तर्क करता है...यह सोच सोचकर मैं स्वयं कुछ कुछ मामा जैसी हो गयी हूं। मामा के विचारों के प्रभाव से ही तो मैंने इन्हें ढूंढ़कर पकड़ा है। मामा ! देख लीजिए, मैं होशियार हूं या नहीं?

ये क्यों चुपचाप कार चलाए जा रहे हैं? देखने पर बेचारे लगते हैं। मुझे साफ मालूम हो रहा है कि किसी अपराध भावना से ये भीतर ही भीतर पीड़ित हो रहे हैं। मैं स्वयं बात छेड़ती हूं...

"मेरी शादी हो चुकी है। बारह साल पहले। जैसे शकुंतला और दुष्यंत ने कर लिया था, ऐसा विवाह। हमारे शास्त्रों में उसे गांधर्व विवाह कहते हैं। मेरा वैसा एक विवाह इसी कार में हो चुका है।"

'क्रीच' आवाज के साथ ब्रेक लगने पर कार रुक जाती है। बीच सड़क पर एक मछुआरिन औरत सिर पर झाबा लिये, कुछ न समझ पाते हुए, अस्तव्यस्त हो घबराकर भाग रही है। ये हाथ बाहर करके उसे, रिक्शेवालों की तरह कोई भद्दी गाली देते हैं।

'हाय रे ! ये क्या ऐसी गाली भी देते हैं!' मेरा सारा बदन संकोच से सिहर जाता है।

कार फिर चल पड़ती है। अब लगता है, उन्हें लज्जा सी हो रही है। वे स्वयं मुझसे बोलने लगते हैं, "और क्या? एक क्षण अगर मैं न देख पाता तो कैसी दुर्घटना हो जाती ! अंधेरे में किसी डायन की तरह आकर खड़ी हो गयी—देखा न ! कमबख्त...थोड़ी लग जाती तो बस। 'हाय हाय' करके भीड़ इकट्ठी कर लेती। जानती हो? उसके बाद यहां के सारे गुंडे आते। अकेला होता तो मैं भी उन गुंडों में एक गुंडा हो जाता। एक महिला को कार में बिठाये...बड़ा भद्दा लगता न ! इसीलिए डर गया था।"

जब ये तमिल बोलते हैं तो बड़ा अजीब लगता है। वह ठेठ मद्रास शहर की बोली है। मानो कोई एंग्लो-इंडियन तमिल बोल रहा हो। इनका अंग्रेजी का स्तर जितना अच्छा है, तमिल का उतना नहीं। इनके बोलने की तमिल शैली परिष्कृत स्तर की नहीं है।

"बैटर यू टाक इन इंगलिश," कहकर मैं इन्हें अंग्रेजी में बोलने को कहती हूं।

जैसे अपने से ही बोल रहे हों, इस तरह दृष्टि सड़क पर टिकाए हुए कार चलाते चलाते बोलते हैं, "आई फील टेरिबली सारी। तुम उस कारवाली घटना को विवाह और मुझे अपना पति कहकर विवाह-संस्कार का और स्वयं अपना ही अपमान कर रही हो।"

"उस घटना को विवाह कहकर मैं आपसे कोई अधिकार मांगने नहीं आयी हूं। आई मीन लीगली। दूसरे किसी की पत्नी बनने की लालसा को मैंने खो दिया है। मैं किसी की रखैल बनकर रह सकती हूं, पत्नी बनकर नहीं। अगर किसी की पत्नी होने का अधिकार पा लूं, तो भी जहां तक मेरा संबंध है वह जैसे मेरा अपना ही अपमान होगा। इसलिए मैंने आपको ढूंढ़ा। पत्नी बनकर रहने के लिए नहीं। रखैल बनकर रहने के लिए भी नहीं। यह नाम पाने के लिए कि मैं आपकी प्रेयसी हूं। इट विल हैल्प मी ए लाट।"

"बेकार की बातें मत करो। इससे तुम्हारा कोई भला नहीं होगा। बारह वर्षों से तुम जो अपनी जिंदगी बरबाद कर रही हो, यही काफी है। एक मित्र के नाते तुम्हारी कोई भी सहायता मैं कर सकता हूं। तुम अपनी जिंदगी संवार लो। मैंने तुम्हारी जिंदगी बरबाद की है। तुम अगर अब निर्णय कर लो कि एक अच्छा जीवन होना चाहिए तो तुम्हारा भविष्य बड़ा उज्जवल होगा। बेकार ही मेरे साथ अपना नाम जोड़कर अपनी निंदा न करवाओ। मैं किसी के योग्य नहीं हूं। जब मैं तुमसे मिला था, उस समय और कुछ नहीं था तो भी एक धनी व्यक्ति था। यानी एक लखपति का बेटा था। सिर्फ वही होना कोई योग्यता नहीं है...यह मुझे मालूम है। लेकिन अब मुझमें उतनी योग्यता भी नहीं है। अब मैं एक धनी स्त्री का पति हूं। ठीक ! जरा यहां ठहरकर चलें क्या? क्या तुम्हें जल्दी है?" आई.जी. दफ्तर के सामने वाले कार पार्किंग की जगह को दिखाकर पूछते हैं। अचानक उनके चेहरे पर घबराहट और खेद के चिह्न प्रकट होने लगे हैं।

"मुझे कोई जल्दी नहीं है। मुझे किसी को जवाब देना ही नहीं है।" कहती हूं।

'बीच रोड' के साथ साथ रेत डालकर बनायी गयी सड़क पर कार मोड़ते हुए पूछते

हैं, "क्या तुम अकेली रहती हो?"

"नहीं, मेरे साथ मेरी मां है।"

"तुम दो ही?"

"हां। एक भाई भी है। पर वे लोग अलग रहते हैं। मेरे भाई ने उसी दिन शाम को मुझे और मेरी मां को घर से बाहर कर दिया था। दो दिन तक बरसते पानी में मैं और मेरी मां घर के बाहर चबूतरे पर पड़ी रहीं। मां ने मुझे पीटा, कोसा, फिर भी वही एकमात्र मेरा सहारा बनकर रही। इस एक बात के कारण ही मैं उसे और किसी के पास नहीं छोड़ पाती हूं। मेरी जिंदगी ऐसी जो हो गयी है। इसके लिए मुख्य जिम्मेदार व्यक्ति मेरी मां है। इस पर भी क्या मैं उसका तिरस्कार कर सकती हूं?"

कार रोककर ये उतर पड़ते हैं और बाहर खड़े हो जाते हैं। सिगरेट जलाते हैं। आसमान की तरफ सिर उठाकर धुआं छोड़ते हैं। कार का चक्कर लगाकर इस तरफ मेरे पास आकर कार पर टिककर खड़े हो जाते हैं। अचानक मेरी ओर मुड़कर कहने लगते हैं, "उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। मेरे पिता ने मेरे लिए क्या किया, जानती हो?"...कहकर आह भरते हैं। मैं समझ लेती हूं कि इस समय ये अपनी किसी समस्या को याद करके बेचैन हो रहे हैं। ये घड़ी देख रहे हैं। बगैर देखे ही मैं समय जान लेती हूं...साढ़े सात।

ये कहते हैं "मेरी आदत है, इस वक्त मैं रोज क्लब में ही जाता हूं। घर पहुंचते पहुंचते रात के बारह बज जाते हैं। कभी कभी तो दो या तीन भी बज जाते हैं। मुझे अभी हाल में पता चला कि अब मैं शराब का गुलाम बन चुका हूं।"

मैं झट सिर उठाकर उन्हें देखती हूं।

"मैं जो कह रहा हूं, क्या उसे समझ रही हो? आम लोगों की भाषा में कहूं तो एक 'पियक्कड़' हूं। उसके बिना मैं जिंदा नहीं रह सकता। बड़ा अजीब लगता है न? मेरी पत्नी है न, वही लखपति पत्नी !"...अरे बाप रे ! यह कहते हुए इनके मुख पर यह कैसी नफरत है!

"वह मुझे पति जैसा आदर या प्रेम नहीं देती। लेकिन उसे मेरे पियक्कड़ होने का डर है। मैं पीकर जाता हूं तो कांप जाती है। जब नहीं पीता हूं, तब वह चिल्लाती रहती है। पीता हूं तो मैं चिल्लाता हूं, वह डरती है, चुप रहती है। तो मैंने निश्चय किया कि शराबी होना बेहतर है।"...कहकर वे इस तरह हंसते है, जैसे बड़ा मजाक कर दिया हो।

ये आगे अंग्रेजी में बोलते हैं, "मैं एक कैदी जैसी जिंदगी बिता रहा हूं। मेरे नाम पर जो जायदाद है, उसका मालिक मैं नहीं हूं। उस पर मेरा अधिकार नहीं। मेरे बारे में जानना हो तो मेरे पिताजी का लिखा वसीयतनामा पढ़ना होगा। छिः ! इस पर भी उस घर में जब मैं सिर उठाकर एक मर्द बना रहता हूं तो मेरे समान पतित जीव और कोई नहीं होगा।"

'पतित जीव' मेरा अनुवाद है। उन्होंने अंग्रेजी में कहा, "ए डेड सोल"।

ये आगे कहते हैं, "उस वसीयतनामे में मेरे बारे में मेरे पिता जो लिखते हैं...उसकी शुरुआत कुछ ऐसी है...मेरा इकलौता पुत्र प्रभाकर एक नालायक व्यक्ति है। बुरी संगत में रहता है और चरित्रहीन है। ...इस प्रकार एक लंबी सूची देने के बाद मेरे भावी हित की दृष्टि से सारी जायदाद उसी औरत के नाम पर लिख दी है मेरे पिता ने ! मुझे हर माह इतना पैसा मिलता है...फलाने 'आइटम' से होने वाली आमदनी को मैं खर्च कर सकता हूं...इस तरह के 'सब-क्लाजिज़' रखे हैं। इतना करके मरते वक्त मेरा हाथ पकड़कर रो पड़े... 'यह सब तुम्हारी भलाई के लिए किया है,'...कहते रहे। इसके लिए क्या मैं बाप का तिरस्कार कर सकता हूं?"

उस मार्ग से आइसक्रीम का एक ठेला आ निकलता है। उसे देखते ही छोटे बच्चे के जैसे ये पूछते हैं—"आइसक्रीम खायें?"

"नो, थैंक्स।"

"ओह, आई लव इट।" कहकर उसे पुकारते हैं। कार के नजदीक आकर वह ठेला खड़ा हो जाता है। उससे जाने क्या क्या पूछते हैं। आखिर दो कप और एक बार खरीद लेते हैं। पर्स से ढाई रुपये निकालकर उसे देते हैं। इन्हें देखते हुए मुझे बड़ा अजीब लगता है।

"जस्ट...टेस्ट इट...अच्छी होगी।" कहकर एक कप मुझे देते हैं। मैं उसे हाथ में रखे देखती रहती हूं। मैंने भी आइसक्रीम खायी है। लेकिन सड़क पर कार में बैठे, दूसरे आदमी के सामने इसे चाटना—मुझे शर्म लगती है। ये सड़क पर खड़े होकर उस कप को एक क्षण में खुरचकर खाने के बाद लकड़ी की चम्मच को चूस रहे हैं...।

"हमारी मंजु चार कप खा जाती है। हमारे घर में सभी को आइसक्रीम अच्छी लगती है। पद्मा को मालूम हो जाये तो डांटेगी। इसलिए और सब लोग मेरे साथ मिलकर खाते हैं।"

इनकी पत्नी का नाम 'पद्मा' है—जान लेती हूं। "आपके पिता ने आपके बारे में वसीयतनामे में जो कुछ लिख रखा है, अगर वह गलत है तो उसे आप प्रमाणित करके नहीं दिखा सकते थे?" मैं कप में से आइसक्रीम को चम्मच से कुरेदती हुई उनसे पूछती हूं। मेरा विचार यह है कि अगर इसे ऐसे ही मथकर पानी कर डालूं तो इसे वैसे ही पी लिया जा सकता है।

"क्या प्रमाणित करना था?" बड़ी उपेक्षा के भाव से आइसक्रीम चूसते हुए कहते हैं।

कैसा टूटा हुआ व्यक्तित्व है इनका ! इनके बारे में मैं सोच लेती हूं। थोड़ी देर पहले अपने पिता के लिखे वसीयतनामे के बारे में अपने घर के लोगों के अपने प्रति व्यवहार के बारे में कहकर खीझ रहे थे।

अब एक आइसक्रीम में सारी बातें भूलकर 'क्या प्रमाणित करना था?' पूछ रहे हैं।

"आपके पिता ने आपके बारे में वसीयतनामे में जो लिखा है, उसे अपने आचरण द्वारा

गलत प्रमाणित कर सकते थे?"

जैसे गेंद को बैट से मार रहे हों, यों उस कागजी कप को मरोड़कर ऊपर उछालकर दूसरे हाथ से मारते हुए जवाब देते हैं–"किसलिए? मेरे लिए तो बड़ा अच्छा हुआ। जब मेरे बारे में उन्होंने ऐसी उपाधियां दे रखी हैं तो मैंने निश्चय कर लिया कि उनके अनुसार जो सुविधाएं भोगी जा सकती हैं, भोग लें। शायद उन्होंने जो किया, ठीक ही किया। इतनी सावधानी के साथ वसीयतनामा लिखने के बावजूद, शुरू शुरू में यह पद्मा मेरी इच्छाओं के अनुसार ही हर बात पर सिर हिलाकर स्वीकृति देती रही तो कितनी ही रकम मैंने उठाकर पानी की तरह बहा दी। उसके बाद अचानक वह जाग पड़ी। वह सब बातें सह गयी। लेकिन यह जानने पर कि दूसरी स्त्रियों के साथ मेरा संपर्क है, वह बरदाश्त नहीं कर सकी। इस विषय में स्त्री स्त्री ही है। लेकिन एक बात है। मैं जिन स्त्रियों से मिला, उनमें से किसी ने मुझसे प्यार नहीं किया, मेरी पत्नी समेत। मैं भी खोज खोजकर ऊब गया हूं। हर एक से मिलते समय सोचता कि यही प्रेम है। लेकिन बाद में पता चलता कि यह वैसा नहीं।" ये शिकायत कर रहे हैं। मानो सबने इनके प्रति बड़ा अत्याचार किया हो। मुझे हंसी आती है।

मैं हंसी दबाकर उनसे पूछती हूं, "आप इतनी शिकायत कर रहे हैं कि किसी ने आपको प्यार नहीं किया। आपने किसी को प्यार किया है? अपनी पत्नी को भी मिलाकर–किसी को भी? आपके पास दौलत है, आडंबर है, कार है, बंगला है। सुंदर ड्रेस पहन लेते हैं, इत्र लगा लेते हैं–इसके लिए आप सोचते हैं कि सड़क पर चलने वाले सभी आप से प्रेम करें, ऐसी ही बात है न? इसी बात पर कुछ स्त्रियां प्रेम करने के बहाने आपके पास आती होंगी। लेकिन क्या वह प्रेम हो जाता है?" यह कहते समय मुझे आर.के.वी. की 'अश्वमेध' कहानी याद आती है।

ये मुझसे सात-आठ साल बड़े होंगे। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मुझसे पाठ सीखने लायक छोटा बच्चा हैं। इनसे बात करते समय ऐसा कोई संकोच मुझे नहीं हो रहा है कि किसी पुरुष से बात कर रही हूं। इनसे कई गुना अधिक बल मुझमें है–ऐसा महसूस हो रहा है। अभी ये ऐसे हैं तो बारह वर्ष पहले कैसे रहे होंगे! इस अनाड़ी से डरकर अपनी बलि देने के बाद जो मैं चली आयी, तब मैं कितनी अयानी रही होऊंगी! अब इस अंतर को देख पाने योग्य हूं। मैं इतनी बदल गयी हूं–इस पर मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा है। ओह ! जमाना कैसे बदल जाता है, लेकिन कुछ व्यक्ति तो बदलते ही नहीं, इन जैसे।

साढ़े आठ बज रहे हैं। अचानक ये जल्दी कर रहे हैं। मैं समझ रही हूं। अब इन्हें क्लब जाना है। उसे समझकर मैं स्वयं कहती हूं–"अब चलें। अगर आपको जल्दी हो तो आप सीधे जा सकते हैं। मैं टैक्सी करके घर चली जाऊंगी।"

"नो...नो...मैं तुम्हें घर पर छोड़ दूंगा। तुम्हारा घर कहां है?"

"एगमोर।"

कार चल पड़ी है। सिगरेट का धुआं महक उठा है। ये कुछ नहीं बोल रहे हैं। मैं भी चुप बैठी हूं।

जब हमारी गली में कार घुसी तो देखती हूं—मेरे लिए दीया जलाए अभी तक मां प्रतीक्षा करती हुई बैठी है। यहीं से दिख रहा है। कुछ ही क्षणों में उसे एक बड़ा झटका देने वाली हूं।

कार हमारे घर के सामने जाकर खड़ी हो गयी है। मां देख रही है। आगे की सीट पर बैठे हम दोनों पर खूब रोशनी पड़ रही है। मां देख रही है। देखने के लिए उसे पर्याप्त समय देती हुई मैं धीमी गति से उतरकर उनसे विदा लेती हूं।

"कल फोन करूंगी। गुड नाइट !" मैं कार से उतर पड़ती हूं। मां स्तब्ध होकर देखती रहती है।

12

दस बजने वाले हैं। यह गंगा अभी नहीं आयी है। वह आफिस चली जाए तो उसके घर आने तक वैसे भी मन घबराता रहता है। अब तो हर क्षण, न जाने पेट में कैसी पीड़ा सी होती रहती है।

हर दिन सोचती हूं कि उससे आज पूछना है, आज पूछना है। बात कंठ तक आती है। लेकिन मैं क्योंकर पूछूं? कैसे पूछूं?

पूछने को क्या है? सब मेरे मन को मालूम हो ही रहा है। मेरे सिर पर बड़ा वज्र सा गिरने वाला है—यह भी मालूम हो रहा है।

वह किसी भी वक्त आती है। जहां चाहे जाती है। क्या मैंने कभी उससे पूछा? मैं अपने आप ही कोई दुश्चिंता करके डरती रहती हूं। उसके बारे में कोई कुछ भी कहे, क्या मैंने उस पर कभी अविश्वास किया?

गणेश आता है और कितनी ही बातें कहता है। उसकी कही बातें क्या मैंने कभी गंगा से कही हैं? क्यों नहीं कहीं? मेरी बेटी कुमार्ग पर नहीं जायेगी—ऐसा दृढ़ विश्वास मेरे दिल में जमा है। मैं तो सोचती रही कि यह सब गंगा से जाकर मैं भला क्यों पूछूं ?

इसके बारे में कोई कुछ कह देता तो मैं किस प्रकार उस पर हमला कर देती थी ! "गंगा के बारे में बोलने का तुम्हें क्या हक है?" गणेश से भी मैं यही कहकर उसका मुंह बंद कर देती थी।

क्या इसकी कोई सहेली भी है? क्या यह किसी से हंसकर भी बात करती है?—मुझे आश्चर्य होता था।

गंगा का वह माथा, जैसे पुंछा हुआ है। उस पर एक बिंदी लगा ले तो कितना अच्छा होगा?—मैं सोचती। शुक्रवार आये, विशेष पर्वदिन आये, बालों में फूल नहीं टांकेगी यह अविवाहित कन्या। मैं तो तरस गयी।

इसका सैर करने जाना, नौकरी पर जाना देखकर मैं फूली नहीं समाती। मेरी वह प्रसन्नता देव के लिए सह्य नहीं थी। सब कुछ खत्म हो गया।

अपनी बेटी के बारे में डींगें मारती फिरती थी। अब तो बाहर मुंह भी नहीं दिखाया जा सकता।

गणेश अभी अभी आकर गया है। उसका हर सवाल मुझे झकझोर रहा है। मेरा

झुका सिर ऊपर नहीं उठ रहा है। कुछ बोलते नहीं बनता। मैं सिर्फ रो दी। मैं रोती हूं तो उसे क्या? अलग अलग समय में अलग अलग व्यक्ति के कारण रोते रहना ही मेरे भाग्य में बदा है।

मैंने कोई सात सात बच्चे जने हैं? ले-देकर एक बेटा है, एक बेटी। यह बेटी तो वह सब करेगी जो नहीं करना है। और वह बेटा वह सब पूछेगा जो उसे नहीं पूछना है। मैं क्या करूं?

लोगों ने इस लड़की के बारे में जो कुछ भी कहा, वह सच निकला। अब जीवित रहकर मुझे संसार में क्या करना है?

मुझे आशंका हो रही है, कहीं इस लड़की का दिमाग खराब तो नहीं हो गया है? पहले कभी किसी क्षण वह जो पागलपन चढ़ गया था, वह सब निरंतर चल रहा है। इसे नचा रहा है। यह नाचती है। इसकी शिकायत करने से कोई फायदा नहीं है। इस पर किसी डायन की छाया पड़ गयी है। वरना उसकी बुद्धि क्या इस प्रकार भ्रष्ट हो जाती? मैं खुद अपनी आंखों नहीं देखती तो कभी भरोसा नहीं करती।

यह गंगा आजकल ड्योढ़ी पर कदम रख दे तो इत्र की खुशबू रसोईघर तक फैल जाती है। पहले कभी कोई कह देता तो मुझे विश्वास न होता। बिंदी लगा लेनी चाहिए। ठीक। मैं स्वयं तरस जाती थी कि यह बिंदी लगा ले। अब देखती हूं कि यह जाने क्या चाबी जैसी कुछ उठा लेती है और चार-पांच रंगों में डुबो डुबोकर माथे पर छापा लगा लेती है। यह पागलपन नहीं तो और क्या है? कहिए! भौंहों पर काजल लीप लेती है। कनपटी पर हमारे गांव के देवन जाति के लोगों के पट्टेवाले बालों जैसे बाल लटका लेती है। पहले से मिली हुई चोलियां सब ले जाकर दर्जी से ऐसी कटवा ले आयी है कि कंधे तक दिखाई पड़ते हैं। अब जो नयी चोली सिलवा लायी है उसकी तो आस्तीन ही नहीं है। वह तो चोली के भीतर पहनने की अंगिया जैसी है। हमेशा ऐसी ही रहती आयी होती हो तो किसी को कुछ शिकायत न होती। यह पसंद नयी नयी पैदा हुई है न!

"मां! यह मेरी सहेली है," कहकर अब तक एक भी लड़की को घर न लायी थी। पिछले महीने एक दिन किसी तगड़े मर्द को साथ लिये घर में आ खड़ी हुई। बोली—"मेरा दोस्त है।" यह कैसा अन्याय है! वह भी बड़े अधिकारपूर्वक भीतर सोफे पर आकर बैठ गया और रेल-इंजन की तरह धुआं छोड़ने लगा? बदबू से मेरी तो आंतें मुंह को आ गयीं। पता नहीं वह किस जाति का है? कोई तुर्क है? ईसाई है? शूद्र है?

यह खुद ही उसे घर के भीतर खींचकर ले आयी तो मैं क्या करती? 'हे भाग्य...!' कहती हुई काफी बनाकर उसके सामने ले जाकर रख दी। उतने में ही मेरा बदन संकोच के मारे सिकुड़ गया। यह है जो उसके सामने बैठकर सत्कार कर रही है। मैं भीतर से सब कुछ देख रही हूं। पाप है! काफी का बर्तन उठाकर ओंठ लगाकर ही पीने लगा है वह! उसमें जाने क्या

स्वाद है? एक घूंट पीकर रख देता है, अच्छा हुआ। उसके चले जाने के बाद गंगा ने ही उसे उठाकर धोकर रख दिया ! फिर उस बर्तन पर थोड़ा जल छिड़ककर मैंने उठा लिया।

आजकल इसने टहलना छोड़ दिया है। भोर होने के पहले ही वह मर्द आ जाता है।

उसकी कार गली में आ जाये, बस ! घर घर में तमाशा देखने के लिए दरवाजों और खिड़कियों पर आकर सब खड़े हो जाते हैं।

लज्जा, मान—सब कुछ इसने छोड़ दिया है। सिर उठाए घोड़ी जैसी उस मर्द के संग चल पड़ती है। जैसे सौगंध खायी हो कि 'मैं अपनी बदनामी करके दिखाऊंगी—देख लेना।'

अब मैं क्या करूं? यह लड़की काबू के बाहर हो गयी है। पहले की तरह क्या मैं इसे दबा सकती हूं? चुपचाप वेंकु भाई के नाम चिट्ठी डाल दूं क्या? लेकिन अब वे भी आकर क्या कर पाएंगे?

वे अक्सर जो कहते थे न ! उस समय उनकी बातों से मुझे कितना खेद होता था। 'तुम्हारी बेटी के बारे में मैं जो कह रहा हूं, इसका बुरा न मानना। गंगा की बुद्धि स्थिर नहीं है।' तब मुझे उनका कथन अन्यायपूर्ण लगता था। अब सिद्ध हो गया। इसके बारे में लोगों ने जो कहा, वह सब सही हो गया न !

मेरा कैसा दुर्भाग्य है। यह सारा दृश्य देखती हुई, इस सारे कलंक के साथ मैं क्यों जीवित हूं ?

अरी ! मैं चली जाऊंगी। कहीं निकल जाऊंगी। यह रसोई की नौकरी किसी भी घर में जाकर कर लूं तो क्या एक वक्त खाना और पहने को एक कपड़ा नहीं मिलेगा?

छिः ! क्या बेचैनी है ! मैं क्यों रो रही हूं? जो भी अन्याय ये लोग करें, उसके बारे में पूछने का अधिकार ही मुझे कहां है? मां होने का आदर ही नहीं रह गया न।

आज वह आए तो उससे दो टूक बात कर लेनी है, कुछ तय कर लेना है। 'मैं इस घर में रहूं? या कहीं निकल जाऊं?'—मैं उससे पूछूंगी। इतना भी न कह—पूछ पायी तो फिर जैसा कि गणेश कहता है इन लोगों का बिस्तर झाड़कर बिछाना ही मेरा काम हो जायेगा!

हाय ! उसने क्या क्या सवाल कर डाले?

मैं अभी दफ्तर से लौटी हूं। आज कुछ देर हो गयी है। बाहर की बत्ती जलाए, मां ड्योढ़ी पर ही बैठी है। रोज हाथ में कोई पत्रिका रखे रहती थी। अब खाली हाथ बैठे आसमान की तरफ देख रही है।

आज मैं उनके घर गयी थी। मुझे घर पर छोड़ने वे नहीं आए। आज बात करते करते बहुत पी गए। मैंने ही उनसे न आने को कहा।

अब इस बड़ी कार को ड्राईवर चलाकर लाया है। मैं पिछली सीट पर बैठी हूं।

"वह देखो, जहां बत्ती जल रही है न, वहां एक बुढ़िया बैठी है। उसी घर के सामने

रोक दो।" मैं ड्राईवर को बताती हूं। वह कार रोक देता है और उतरकर मेरे लिए कार का दरवाजा खोल देता है।

"मैं जाऊं?" पूछकर सलाम करता है। कार चली जाती है। मैं सीढ़ी पर चढ़ ही रही हूं। यह क्या? मां किसलिए पल्लू में मुंह छिपाए सिसक सिसककर रो रही है? मैं अब क्या करूं? अनदेखा करके भीतर चली जाऊं? 'यह सब क्या है'—कहकर डांट दूं या 'किसलिए रो रही हो मां'—कहकर समझा दूं?

मुझे कुछ नहीं सूझता। लेकिन इस उम्र में मां एक बच्ची के समान रो रही है—यह देखकर मन को दुख होता है। इसे क्या कहकर पुकारूं और समझाऊं? तभी याद आता है कि इसे 'मां' कहकर पुकारे बारह साल हो गये।

मैं मुड़कर देखती हूं, सामने के घर की खिड़की में एक सिर दिखाई देता है।

"सामने वाले घर से लोग देख रहे हैं। कुछ कहना हो तो भीतर आकर कहो," यह कहकर झट बाहरी बत्ती बुझा देती हूं और भीतर चली आती हूं। मां किवाड़ भेड़कर सांकल लगा देती है और मेरे पीछे पीछे हाल में आती है। उसकी ओर मुड़कर देखने में जाने क्यों मुझे डर लग रहा है। कपड़े बदलने के लिए अपने कमरे के भीतर जाकर किवाड़ बंद कर लेती हूं।

तब मां कहती है, "क्या तुम्हारी नजर में आया कि सामने वाले मकान से कोई देख रहा है?"

कपड़े बदलते हुए शीशे में मैं अपने को देख लेती हूं। मुझे हंसी आती है। वेश धारण करके अभिनय कर रही हूं। जानबूझकर अभिनय कर रही हूं।

अब मैं और नहीं बिगड़ सकती। जो काम नहीं कर सकते उसे करने का अभिनय तो करना चाहिए। वैसा अभिनय न करने के कारण ही अब तक मुझे सब लोग अनाड़ी समझते रहे हैं। अब सब मुझे देखकर डरते हैं। लेकिन उस समय भी कोई मेरे प्रति ऊंचे विचार नहीं रखता था, न कोई अब रखता है। उस समय सब मुझे बिगड़ी हुई अनाड़ी समझते थे, अब भी बिगड़ी हुई समझते हैं। लेकिन अनाड़ी नहीं मानते। मेरा भी एक पुरुष है—यह सब को मालूम हो गया है।

अब दफ्तर में कोई मेरी तरफ दांत निपोरकर नहीं देखता। लेकिन पीठ पीछे हंस हंसकर बोल लेते हैं। इसकी मुझे कोई परवाह नहीं है।

विधवा के समान कोई भी सिंगार किये बिना रहना क्या मेरे ही भाग्य में बदा है? इन बदमाशों को देखकर कि ये कहीं मिसबिहेव न करें, डरकर वैसे रहा करती थी। अब मुझे क्या डर है? कोई कुछ भी कहे, क्या परवाह है?

सब कहते हैं कि मैं इनकी रखैल हूं। बहुत अच्छा ! वही ठीक है।

लेकिन वैसा नहीं है—यह मेरा मन जानता है और उनका मन भी। और लोगों को यह

नहीं मालूम होना चाहिए। कोई भद्दा बर्ताव नहीं करे—इस हद तक ये भी परिपक्व हो गये हैं।

उस दिन एक अज्ञात आशा लिये किसी कामना के साथ ही मुझसे ये मिलने आए थे। जब इन्हें मालूम हो गया कि मैं इनसे प्रेम नहीं करती तो उस समय ये निराश हुए—यह मैं समझ गयी। हृदय से प्यार करने वाले एक प्राणी के लिए ये तरस रहे हैं। वैसा एक प्राणी इन्हें इस जिंदगी में नहीं मिलेगा। बेचारे ! पुअर सोल ! मैं इन्हें एक विश्वासपात्र मित्र के रूप में अपना सकती हूं। किसी समय ये बच्चे लगते हैं। किसी वक्त ये पिता के समान भी बर्ताव करते हैं। ये और इनकी लड़की मंजु जब बातचीत कर रहे थे, तब मुझे वह समझ में आया। मेरे साथ जिस तरह बात करते हैं, उसी तरह उस लड़की के साथ भी करते हैं। कहते थे कि इन्हें अपनी पत्नी से बात किये दस साल हो गये। लड़ाई-झगड़ा भी क्या बातचीत में शामिल है? वह तो रोज रोज होता रहता है।

इनकी बेटी मंजु मुझे बहुत पसंद है। आजकल दफ्तर से छूटते ही मैं उनके यहां जाती हूं। ये बोतल और गिलास हाथ में उठाकर छत पर जाकर बैठ जाते हैं और पीना शुरू कर देते हैं। मंजु और मैं बातें करती रहती हैं। ये मतलब या बिना मतलब के हंसते रहते।

जब से मुझसे ये मिले, कहते हैं, तब से क्लब नहीं गये। इसमें जाने क्यों मुझे खुशी है। अब मैं जो सिंगार कर लेती हूं, यह सब मैं मंजु से ही सीखती हूं। अपनी इस जिंदगी में भी मैं खुश रहने का एक उपाय खोज पायी हूं—ऐसा लगता है।

मैं जब आयी, तब मां रो रही थी। किस कारण से? गणेश आया होगा। उस दिन अपने कार्यालय के सामने जब मैं इनकी कार में चढ़ रही थी, तब उसने देखा था। 'खूब देख लो'—कहती हुई सी मैं अगली सीट पर इनकी बगल में बड़े अभिमान के साथ जाकर बैठ गयी। मुझे अच्छी तरह मालूम हो रहा है, आजकल वह गणेश सी.आई.डी. की तरह मुझे 'वाच' कर रहा है। घर जाकर भाभी से कहता होगा कि मैं रोज रोज किसी न किसी के संग, किसी न किसी कार में घूमती रहती हूं। मेरे सिंगार करने का वर्णन करता होगा। वह औरत सब से कह रही होगी कि मैं सिर के बाल कटवाकर गाउन पहने घूमती रहती हूं। कहने दो। ये लोग जो जो कहते रहेंगे मैं भी वह सब करके दिखा दूंगी। सज लेती हूं तो इसमें क्या अपराध है? यह तो अपनी अपनी मर्जी है, अपनी अपनी सुविधा है।

मैं कमरे का किवाड़ खोलकर बाहर आती हूं। यह मां क्यों इस तरह देख रही है? मैं भी उसकी ओर देखती हूं।

रुंधे गले से मां कहती है, "क्या तुम्हें यह सब शोभा दे रहा है?"

मैं कुछ जवाब नहीं दे रही हूं।

"अभी तुमने कहा न, सड़क पर लोग हमारी तरफ देख रहे हैं। वे हर रोज हमारी तरफ देखते हैं—क्या यह तुम्हें मालूम है?"

"देखने दो।" मैं जवाब देती हूं।

"शाम को गणेश आकर क्या क्या कह गया, जानती हो? मां का आदर होता तो क्या वह वैसा कहता? क्या तुम भी ऐसा आचरण करतीं?" फिर रो पड़ती है।

उसका रोना मुझसे नहीं देखा जा रहा है। इस ओर मुंह करके बोलती हूं, "गणेश आज ही क्या नया कुछ कह गया? वह तो हमेशा कहता रहता है। इसके लिए इतना रोना क्यों?"

"वह हमेशा कहता है। मैंने क्या कभी तुमसे कुछ पूछा है? तुम पर मुझे पूरा विश्वास था। सोचती थी—ईर्ष्या के कारण ये सब वैसी बातें करते रहते हैं, लेकिन अब तुम जो जो काम कर रही हो, उससे मेरा पेट जल रहा है। अरी ! जल रहा है।" कहकर पेट पर हाथ मार लेती है।

"तुम्हारी बुद्धि खराब हो गयी है। नहीं तो, इतनी हिम्मत, इस तरह के कपड़े पहनकर तुम कभी चलती थीं? मैंने सोचा था, तुम्हारी किसी से दोस्ती नहीं है। अब तुमने बिगड़ जाने के लिए ही शायद यह एक दोस्ती पकड़ ली है? वैसे एक मर्द और औरत में क्या दोस्ती होती है री? इस तरह समय-कुसमय, किसी की कार में आकर उतरेगी तो देखने वाले गलत ही समझेंगे। वह गलत ही तो है। ओह ! तुम तो पढ़ी-लिखी हो, सब जानती हो, क्यों ऐसा करती हो?" सिसककर रोती हुई वह दांत दबाकर पहले की तरह चिल्ला उठती है, "अरी छनिच्छर ! मुंह खोलकर जवाब दे। मैं बोलती जा रही हूं और तू पत्थर की जैसी खड़ी है। नहीं तो मुझे कहीं ले जाकर खत्म कर दे।"

अब मैं उसकी ओर मुड़कर देखती हूं।

"उस कार में जो आता है, वह कोई नहीं है। वही है 'वह'। तुम्हारे भाई जी ने कहा था न—'होशियार है तो 'उसी' को पकड़कर ले आए, और कह दे कि यही मेरा पति है, मैं इसी के संग रहूंगी—हम क्या रोकने वाले हैं?' मैंने अपनी होशियारी से ही, बारह साल बाद उन्हें खोजकर पहचाना है। लेकिन हम कोई पति-पत्नी जैसे नहीं रहने वाले हैं। हम दोनों ही उस दशा को पार कर गये हैं। उनका अपना परिवार है। एक लड़की है जिसकी उम्र शादी करने लायक हो गयी है। वे ही अब मेरे साथ हैं। तुम दुनिया को नहीं जानती हो, मां! कितने बाघ गाय की खाल ओढ़े हुए विचर रहे हैं।" कहीं मामा के बारे में कुछ कह न बैठूं—यह सोचकर जीभ दांतों के नीचे दबा लेती हूं। मैंने अंबुजम मामी को शपथ दी है न।

इसकी आंखों से मुझे पता चल रहा है कि इसे मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा। आगे बोलती है, "इसलिए तुम यह वेश ओढ़े फिरती हो। तुमने घूम घूमकर दुनिया जान ली है...जैसी ड्रेस पहनती हो, इसी से तुमने दुनिया को जान लिया है—यह दुनिया को मालूम हो रहा है।"

"शटअप! (हाय रे! मैं क्या बोल रही हूं! यह मुझे नहीं कहना चाहिए। यह जरूरी नहीं है,फिर भी कह गयी हूं।) तुम क्या अपनी स्थिति के अनुकूल ही काम कर रही हो?

'ग्लास्को मल' के कपड़े की तुमने चोली पहन रखी है। रंगदार साड़ी पहन रखी है। पिता जिस दिन मर गये, उसी दिन क्या तुमने सिर के बाल कटवा डाले? इन सबके बारे में भी कहते हैं, भाभी लोगों से कहती रहती है। क्या इसका यह मतलब है कि दुनिया भर में बदनामी हो गयी है?"

मां वैसी की वैसी स्तब्ध हो बैठ जाती है।

...आज रात मैंने खाना नहीं खाया है। यह उपवास मां को रुला देने और इसके मन को दुखी करने का मेरा प्रायश्चित है।

13

''ये ही मेरा 'वह' है''—कहने के बाद मां इनके साथ मेरे संपर्क के बारे में क्या सोच रही है—पता नहीं है।

उस दिन मामा मां से कह रहे थे कि "उस आदमी को खोजकर पकड़ लाएगी तो..."

यह कह सकती थी न, 'क्यों भाई ! ऐसी बात क्यों कर रहे हो? पता नहीं, कहां का, किस जाति का है, किस कुल का है? अनाड़ीपन से हमारी लड़की ने कुछ गलती कर दी है तो क्या उसे इस प्रकार त्याग सकते हैं? आपका कहना बिलकुल ठीक नहीं है। न इसे खोजने और न पहचानने की जरूरत है।'

मां यह कह सकती थी न ! क्यों नहीं कहा? ऐसा ही लगता है कि वह कथन इसे न्यायसंगत मालूम हुआ। मैं भी क्षण भर खड़ी देख रही थी कि मां मामाजी की इस बात पर कुछ कहती है या नहीं।

लेकिन मां के चेहरे का भाव तो ऐसा था जैसे कह रही हो कि 'हां, आपका कहना बिलकुल न्यायसंगत है।'

शायद, इस धारणा से—कि कहां वह, कहां यह अनाड़ी लड़की ! यह उसे क्या खोज पायेगी—सब बातें कह गये।

मामा को मेरे अनाड़ीपन पर कितना विश्वास था ! इसी प्रकार 'उस आदमी' की 'बदमाशी' पर भी उन्हें विश्वास था; उन्हें यह भी विश्वास था कि मुझसे उसे ढूंढ़ा ही नहीं जा सकेगा। शायद वे सोचते थे कि मैं कहीं उस आदमी को ढूंढ़ भी लूं तो वह 'छिः! कौन हो तुम' कहकर मुझे झिटककर चला जायेगा।

इसी विश्वास से मामा जी ने वैसी बातें कह डाली थीं। वरना यह न जानते हुए कि उसकी जाति क्या है, धर्म क्या है, यह निश्चित कर देते कि 'वही मेरा पति है'?

शायद मामा और मां इस पर विश्वास नहीं करेंगे। वे सोचेंगे कि वास्तव में यह कोई दूसरा आदमी है। हुंह ! सोचने दो !

जहां तक मेरा सवाल है, मेरी समस्या हल हो गयी। मैं अब निश्चिंत हूं। खुश हूं। मुझे कोई कमी नहीं हैं। मैं शिकायत भी नहीं करती।

अब वह दूसरों की समस्या है कि वे मेरे इस प्रकार रहने को कैसे स्वीकार करें। स्वीकार

न भी करें तो मुझे कोई परवाह नहीं है। मुझे खूब मालूम है कि दफ्तर में और बाहर लोग हमारे बारे में क्या कहेंगे। उनका वैसा बोलना ही मेरी जीत है।

ये बहुत अच्छे आदमी हैं। इन थोड़े ही दिनों में ऐसा हो गया है कि इनके लिए मैं जरूरी हूं और मेरे लिए ये।

दफ्तर के सब लोगों को अब लगता है कि मैं 'नार्मल' हूं। शुरू में एक हफ्ते तक रोज इनका मुझे दफ्तर तक छोड़ना और शाम को फिर लेने आना—यह सब देखकर उन लोगों को आश्चर्य होता था, लेकिन अब इसके अभ्यस्त हो गये हैं। अब इस पर कोई गौर नहीं करता। गौर करने पर भी पहले जैसे भीड़ लगाकर खड़े नहीं हो जाते।

इस एक महीने से ये एक दिन भी चूके बिना नौ साढ़े नौ तक घर पर आ जाते हैं। अगर मैं नहाती, या खाना खाती होऊं तो मेरे तैयार होने तक हाल में बैठे धुआं उड़ाते रहते हैं। यहां ये ज्यों ज्यों सिगरेट का धुआं निकालते, उधर त्यों त्यों मां को जैसे आग लगती जाती।

पिछले हफ्ते ही, सोफा सेट के बीच में रखी तिपाई पर सत्रह रुपये में एक सुंदर 'एश ट्रे' खरीदकर रख दी है। नहीं तो इन्हें वह सब कुछ पता नहीं लगता। जहां बैठे हों, वहीं सिगरेट के टुकड़े वैसे ही डाल देते हैं। मेरा मन भी टुकड़े वैसे ही छोड़ जाने को नहीं मानता। बेचारी मां को ही तो सब बुहारकर फेंकना पड़ता है।

"आप कार में चलिए, अभी एक क्षण में आ जाती हूं," कहकर जैसे कुछ भूल गयी होऊं, मैं घर के भीतर आती और जल्दी जल्दी सब टुकड़े बीनकर कूड़े वाली टोकरी में डाल देती। एक दिन मां ने यह देख लिया तो अपना सिर पीट लिया। उसके बाद ही वह 'एश ट्रे' खरीद लाने का विचार मुझे सूझा। इसके लिए भी मां चिल्ला उठी थी। कहने लगी, "यह थूकदान जैसा है। सिगरेट के टुकड़े भरकर घर के बीच इसे रखने की क्या जरूरत है? कोई देखेगा तो क्या कहेगा?" वह अपने ही आप बोल रही थी, और यह सोचती हुई कि मैं क्या जवाब दूंगी, मुझे देखती खड़ी रही। उसके बाद मैंने एश ट्रे को अपने कमरे के भीतर लाकर रख दिया। जब ये आते हैं, तब वह बाहर निकाला जाता है। इनके चले जाने पर वह फिर मेरे कमरे में चला जाता है।

इस प्रकार इस सीमा तक मैं एडजस्ट करके चलती रही, लेकिन आज मां के साथ टक्कर हो ही गयी।

लगता है, इन्हें जिंदगी बड़ी बोर लगती है। मेरी दोस्ती क्या मिल गयी, इन्होंने गोह की तरह उसे पकड़ लिया है। नाम के वास्ते एक आफिस है इनका। मुझे लगता है, इधर एक महीने से ही रोज वहां जाने लगे हैं। सिर्फ नाममात्र के लिए ज्वाइंट मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। उस औरत का मर्द होने के कारण इनका थोड़ा मान है उस दफ्तर में। उस दिन इन्होंने स्वयं मुझसे कहा था। सुनकर मुझे बड़ा खेद हुआ और मेरे मन में सहानुभूति जागृत हुई। चेक पर हस्ताक्षर ये ही करते हैं। लेकिन वे तभी पास होते हैं जब उन सारे चेकों पर इनकी स्त्री के 'काउंटर

सिगनेचर' हो जायें। विचार करने पर लगता है कि यह सारा प्रबंध जहां तक इनका सवाल है, जरूरी है।

उस घर में सुभाष, बाबू और ये—तीनों ही बच्चे हैं। पद्मा के लिए ये एक 'स्पाइल्ड चाइल्ड' हैं। क्षण क्षण इस डर से कि कहीं यह बच्चा दूसरे बच्चों को न बिगाड़ दे, वह उन बच्चों को इनसे बचाती रहती है। उस घर में दो जिम्मेदार व्यक्ति हैं—एक पद्मा, दूसरी मंजु। जैसे ये कहते हैं—वह बड़ी ही 'ब्राइट गर्ल' है। पद्मा के मन में तो इनके प्रति क्रोध है। लेकिन मंजु के मन में पिता के प्रति प्रेम है। कभी कभी ये उसके सामने भी बच्चा बन जाते हैं। वह भी खूब डांटती है।

"बस कीजिए, आज आपने ज्यादा पी ली है।" कहकर जब वह बोतल उठाकर ले जाती है, तब ये "प्लीज, प्लीज" कहते हुए उसके हाथ से बोतल छीन लेते हैं। तब...

"मैं आपसे बात नहीं करूंगी।" कहकर वह नाराज होकर चली जाती है।

थोड़ी देर उसकी ओर देखते, फिर हाथ की बोतल को देखते, और तब "मंजु, मंजु" पुकारते हुए उसे खींच लाते। "यह देखो, उतनी ही है। ले जाओ। गुस्सा मत करो।" कहकर उस लड़की के हाथ में बोतल थमा देते। उस समय वह मृदुलता से हंसती हुई..."ठीक है, बस इतनी सी ले लीजिए।" थोड़ी उंड़ेलकर स्वयं इन्हें पीने को देती है। ये उसे लेकर "थैंक्स" कहते हैं।

ऐसा लगता है कि उस घर में इनसे छोटा और कोई बच्चा नहीं है।

पंद्रह दिन पहले जब मैं पहली बार उनके घर गयी, उसे अब याद करती हूं। जब मुझसे ये मिले थे, उसी दिन से अपने घर आने के लिए मुझसे कह रहे थे। मुझी को संकोच हो रहा था। लेकिन ये चाहते थे कि मैं इनकी बेटी से मिलूं, उससे बात करूं, उससे दोस्ती कर लूं। जब कभी ये इस प्रकार कहते तो मैं सोचती, इन्हें एकदम अपनी बेटी पर इतना अभिमान कैसा? लेकिन उस दिन उससे मिलने पर, थोड़ी देर बात कर लेने पर, मुझे खुशी हुई कि उससे मिलने का अवसर मिला।

मेरे बारे में उसे इन्होंने पहले से ही बता दिया होगा। पता नहीं, क्या कहा होगा। वह ऐसा बर्ताव करती है जैसे सब कुछ समझती है। छिः ! उस बच्ची पर सारी बातें कोई कैसे प्रकट कर देगा !

मैं जब इनके घर गयी, तब एक ही बार पद्मा को देख पायी। हंसते हुए आकर उसने कहा—'आइए'। मेरे मन में न जाने क्यों एक प्रकार का डर था। पहले से इन्होंने उन सबसे कह रखा था। इसलिए वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे।

ऊपरी छत पर चांदनी की छाया में 'डिनर' का प्रबंध किया गया था। लंबी सी मेज, उस पर सफेद चादर, दोनों ओर कतार में कुर्सियां, आमने-सामने दो कुर्सियां डाली गयीं। मेजबान के आसन पर पद्मा, उसके सामने वाली कुर्सी पर मैं, मेरे बायें मंजु और बाबू, दूसरी ओर सुभाष,

पद्मा के बायें...इस तरह बैठकर हमने डिनर खाया था।

उस घर में सब कुछ आडंबरपूर्ण है। हम छह लोगों पर चार वेटर्स थे। पद्मा को खेद था कि मैं नान-वैजिटेरियन नहीं हूं।

"क्या आप अंडा भी नहीं खाती हैं?" हमदर्दी के साथ उन्होंने मुझसे पूछा। "आजकल तो सभी लोग सब कुछ खाने लगे हैं, अगर मुझसे पूछें तो कहूंगी कि अंडा खाना बुरा नहीं है।"

उसका ये जवाब देते हैं। इन्हें नशा हुआ चढ़ा था। जीभ लड़खड़ा जाती है—"अंडे में जान नहीं है क्या? इसकी सांस का पता नहीं। आवाज करने वाला ही जीव होता है—लोग शायद ऐसा ही सोचते हैं।"

मंजु हंसती है। ऐसे मौकों पर ही पद्मा इनकी बातें मौन हो सुनती है। इसका फायदा उठाकर ये मानो ज्यादा पी गये हों, इस अंदाज में कुछ बकवास करके उसे परेशान करते होंगे। लेकिन वह भी पद्मा है, जो इन सबकी परवाह नहीं करती। इनसे वह बोली ही नहीं। इनकी तरफ देखा तक नहीं।

इनके कहने पर मंजु हंसी, तब वह धीरे धीरे गंभीरता के साथ मेरी तरफ देखकर मंद हास करती हुई चम्मच से कुछ उठाकर खाने लगी। उसके बाद पांच मिनट तक वह कुछ नहीं बोली। उसके बाद उसी बात को लेकर वह बोलने लगी, 'मैं भी विज्ञान की बात ही कहती हूं। कुछ अंडे जानवाले होते हैं और कुछ बेजान। पोल्टरी में इस बारे में आप पूछकर खरीद सकती हैं। बेजान अंडे से चूजा नहीं निकल सकता। उसे खाने से कोई पाप नहीं है।"

मैंने कहा, "पाप लगेगा—इसलिए नहीं। आदत नहीं है, बस इसी से नहीं खाती।"

थोड़ा समय बीत जाने के बाद वह बोली थी। यह इसलिए था कि यह न समझ लिया जाये कि उसकी यह बात इनकी बात के उत्तर में है। इनके कथन के बाद तुरंत वह बोल उठती तो लग सकता था कि वह इनसे ही बोल रही है...। इसी डर से उस वक्त वह नहीं बोली। वैसा मान इन्हें वह देने को तैयार न थी, इसीलिए वह मौन हो रही है—मुझे ऐसा लगा। वही सच था। मैंने और गौर किया। ये बोलते तो वह पांच मिनट तक नहीं बोलती। इस अपमान को न जानतें हुए यह अनाड़ी व्यक्ति...आई एम सारी...ये कुछ न कुछ बीच बीच में बोलते रहते हैं। बोलकर उसकी नाक काट दी है, ऐसा संतोष भी पाते हैं। यह मंजु बड़ी दुष्ट है। यह सब समझते हुए वह अकसर हंसती रहती है। उसकी हंसी को भी अपनी प्रशंसा मानकर...ये और खुश हो जाते हैं। बड़ी परेशानी है।

उस वक्त एक बार पद्मा को देखने मात्र से उसके बारे में मैंने बड़ी अच्छी राय बना ली। उसके बच्चे अच्छी तरह पले हैं। सुभाष और बाबू डिनर के समाप्त होने तक कुछ नहीं बोले। जब एक बार मंजु के हंसने पर वे भी थोड़ा मुस्कुराए तो पद्मा ने धीरे से उनकी ओर मुंह करके देखा। बस, उसके बाद वे मुस्कुराए भी नहीं।

डिनर खत्म करके बालकनी में थोड़ी देर बैठकर हम बातें करते रहे। उस वक्त वे दोनों लड़के मां के पास जाकर 'गुड नाइट' कहते हुए चूमकर जाने लगे और इनके निकट न आते हुए ही 'गुड नाइट, डैडी' कहकर भाग गये।

इन्हें शायद यह भान ही नहीं होता कि वे लोग इनके साथ अपमानपूर्ण ढंग से बर्ताव कर रहे हैं। अगर मंजु न होती तो इनकी हालत बहुत खराब हो जाती। वही इनकी हालत समझकर इनके साथ स्नेहपूर्वक व्यवहार करती है। पता नहीं, वह भी ये समझ पाते हैं या नहीं ? इनकी बुद्धि में यह बात नहीं आती तो भी कहीं कोने में वह चुभ जाती है। इसीलिए ये हमेशा 'बेटी मंजु, मेरी बेटी मंजु' कहते रहते हैं।

पद्मा हमेशा अपने पास एक ट्रांजिस्टर रखे रहती है। लगता है कि फिल्मी गीतों का उसे बड़ा चाव है। डिनर खाते वक्त, हम जब बालकनी में बैठे थे, तब भी एक ओर धीमी आवाज में वह बज रहा था। इतनी बातों के बीच में पद्मा उसका भी मजा ले रही थी। इतने आडंबरों के बीच में भी वह बड़ी सिंपल है। कानों में और नाक में असली हीरे हैं। छोटे, लेकिन सुंदर लगते हैं। पान खूब खाती है। फिर भी दांत चमकते हैं। सिनेमा के बारे में ज्यादा बोलती है। मंजु और पद्मा, लगता है, सिनेमा के बारे में ही बातें करती रहती हैं। लेकिन पद्मा कहती थी कि वह सभी फिल्में देखने के लिए मंजु को साथ नहीं ले जाती। मंजु भी हर प्रकार की फिल्में देखना पसंद नहीं करती।

इन्हें छोड़कर घर के बाकी सभी लोगों का अपना एक सिद्धांत है। अभी साढ़े आठ भी नहीं बजे हैं। लेकिन ये वैसे ही बालकनी में सोफे पर बैठे बैठे खर्राटे लेने लगे हैं। मैं समझ रही हूं कि पद्मा को गुस्सा आ रहा है। पद्मा खर्राटों की आवाज को दबाने के लिए ट्रांजिस्टर को ऊंचा कर देती है। मैं भी उसे खुश रखने के लिए इनकी तरफ देखे बिना उसी से बात करती हूं।

मैं पढ़ी-लिखी हूं, एक अफसर हूं, इसलिए पद्मा मेरा आदर करती है। लेकिन मुझे डर लग रहा है कि कहीं वह यह न पूछ बैठे कि मेरा इनसे कैसा परिचय है। अच्छा हुआ, अब तक मुझसे किसी ने ऐसा सवाल नहीं किया।

मंजु और मैं आजकल इन्हीं के बारे में ज्यादा बात करती हैं। इन पंद्रह दिनों से अक्सर शाम को मैं उनके यहां जाती हूं। मंजु के साथ बातें करती रहती हूं। आठ, साढ़े आठ बजे वापस चल पड़ती हूं। संभव हो तो ये स्वयं मुझे मेरे घर तक छोड़ जाते हैं। नहीं तो ड्राइवर जाकर छोड़ आता है।

मंजु अपने पिता को खूब समझती है। मां को भी खूब समझती है। स्पष्ट है कि वह मन ही मन अपने पिता के लिए दुखी है। पिता के प्रति मां का व्यवहार उसे दुखी करता है। लेकिन अपनी मजबूरी को वह समझती है।

कल या परसों उसने कहा था। मंजु को उसकी मां इनके साथ बाहर नहीं जाने देती।

मंजु का इनके साथ बोलना वगैरह भी हाल ही से हुआ। वह भी केवल मंजु को ऐसी रियायत है। बाकी बच्चे उनके पास भी नहीं फटकते। मंजु जब यह बात मुझसे कह रही थी, तब मुझे लगा कि वह इस पर दुखी है। लेकिन उसके बाद, उसने स्वयं ऐसा होने को न्यायसंगत ठहराया था।

एक दिन जब ये पी रहे थे, तब सुभाष इनके कमरे में आ गया। ये उस लड़के को भी थोड़ी शराब गिलास में भरकर 'पी ले रे! तबीयत के लिए अच्छी है' कहते हुए से पिलाते पिलाते उसका तमाशा देखते रहे। लड़के का सिर चक्कर खाने लगा और वह लड़खड़ाता हुआ मां के कमरे में जाकर कै करने लगा। रोकर कहने लगा कि 'पिता ने ही पिला दी।' ये पीछे आकर खड़े हो गये और जैसे बड़ा मजाक कर दिया हो, इस तरह ठहाका लगाकर हंसने लगे। मां को कैसा लगा होगा? तब भी पद्मा ने इनसे कुछ नहीं कहा। इनकी ओर देखा तक नहीं। सुभाष को ही पकड़कर चार थप्पड़ लगा दिये। तो फिर क्या इन्हें पीट सकती थी? उस रात भर बेटे की पीठ पर लगे हाथ के निशानों पर हाथ फेरती हुई पद्मा रोती रही। मुझे मंजु ने यह सब बताया।

एक शाम को ये कम से कम एक हजार रुपये खर्च कर देते हैं...क्लब में ताश खेलकर हार जाते हैं। अपने पास पैसा न हो तो पद्मा से मांगने से डरते हैं, इसलिए मंजु से कहते हैं कि अलमारी से ले आये।

'रात को वापस लाकर दे दूंगा। मां की आंख बचाकर फिर रख देंगे।' यों परेशान करते हैं। यह मुझसे कहकर फिर मंजु ने बताया, "सुभाष और बाबू कहीं पिता की राह पर न पड़ें, ऐसा मुझे भी डर होने लगा है। आप ही बताइए, मां की क्या गलती है?"

मंजु मुझे पसंद करती है। रोज आने को कहती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि मेरे जाने से ये इतने दिनों से क्लब नहीं गये, उसे जैसे भुला बैठे हैं।

मुझे बड़ी खुशी है। अपनी अज्ञानता के कारण इन्होंने तो मेरे जीवन को बिगाड़ दिया। लेकिन अपनी होशियारी से अगर मैं इनकी जिंदगी को सुधार सकूं तो खुश हो जाऊंगी।

हम दोनों के बीच क्या संबंध है, इसके बारे में मैं अपनी ओर से निश्चय कर चुकी हूं। मैंने उसके बारे में इन्हें खूब समझा दिया है। उस दिन जब ये मेरे लिए 'आइलैंड ग्राउंड' में आकर खड़े रहे तब इनके मन में कुछ इच्छा थी। मुझसे मिलकर बात करने के बाद यह मिट गयी।

ये मुझे घर पर छोड़ने के बाद सीधे अपने घर लौट जाते हों, ऐसी बात नहीं है। कार में ही बोतल रखकर चलते हैं। इसका यही तो मतलब है कि और कहीं जाकर...रात बिताने वाले हैं। लेकिन मैं उस सबके बारे में नहीं पूछती। मुझे इससे क्या?

लेकिन मुझे घर छोड़ने के लिए ये निकलें और अगली सुबह घर वापस जायें तो मंजु मेरे बारे में गलत ही तो समझेगी। ये और कहीं जाकर सोये पड़े रहें, ऐसा थोड़े ही समझेगी।

मेरे साथ रहे, यही मान लेगी। और लोग चाहे कुछ भी समझें, मुझे परवाह नहीं है। मंजु को वैसा नहीं सोचने देना। इसके लिए कोई कसर नहीं उठा रखनी चाहिए। इस मामले में मैं लापरवाह कैसे रह सकती हूं? इसके बारे में इन्हीं से कह देना चाहिए।

इनसे क्या कहूं? कैसे कहूं? छिः ! इन सबके बारे में मैं क्या बोलूं ? बड़ी परेशानी है। रात को मैंने खाना नहीं खाया। मैंने मां को दुख दिया, इसके प्रायश्चित में उपवास रखा। पेट में कुछ पीड़ा भी हो रही थी। रात को नींद नहीं आयी। कब सवेरा होगा, कब गरम गरम काफी मिलेगी...। ऐसी इच्छा हो रही थी।

मां से क्या कोई आश्वासन की बात कहूं? यह सोचकर कि मां रोती होगी, मुझे दुख हो रहा था।

छिः ! मेरी जीभ जब चलने लग जाती है तो पता नहीं क्या क्या नहीं बोल जाती है।

लगता है, सवेरे मैं थोड़ा फिर सो गयी थी। जागी तो देखा कि बाहर रोशनी फैली है। मां ने काफी बनाकर रखी होगी।

बाथरूम में जाकर मुंह धोकर लौटती हूं। रूमाल से मुंह पोंछती हुई रसोईघर में जाकर देखती हूं तो मां नहीं दिखाई पड़ती। चूल्हा जलाया ही नहीं। दूध भी बिना गर्म किये वैसे का वैसा पड़ा है।

बाहर किवाड़ खोलकर देखना चाहा। अच्छा हुआ, बाहर से बंद करके वह गयी है। वापस लौट आएगी।

वह आ गयी। फाटक खोलने की आवाज है। मुझे गुस्सा है। नीचे पड़े अखबार को उठाकर मुंह छिपा लेती हूं।...यह कहां से आ रही है? शायद दुकान पर गयी होगी...!

उसे देखा नहीं जा रहा था। 'हाय' कहती हुई मुंह छिपा लेती हूं।

पानी में लथपथ एक बदरंग सा कपड़ा बिना चोली के पहने, सिर घुटाए आकर सामने खड़ी हो गयी है।

बड़े शांत स्वर में कहती है,"क्या देख रही हो? मुझे ऐसे ही रहना चाहिए था। मेरी मां, सास, सब ऐसे ही रहती थीं। मैं भी बहुत दिन से सोच रही थी। वह तुम्हारे मुंह से निकलना था...यह मेरा दुर्भाग्य था। मैं गुस्से में आकर ऐसा नहीं कर बैठी। और तड़के ही जाकर लौट आना चाहती थी। ठहरो ! ठहरो ! अभी काफी बना देती हूं।"...कहकर साड़ी निचोड़ रही है।

मां को इस रूप में देखकर मुझे रोना नहीं आता। लेकिन दुख जरूर हो रहा है।

14

मंजु कालेज से घर लौट आती है। आधे घंटे के बाद गंगा और प्रभु भी वहां आ पहुंचते हैं। साधारणतया मंजु आठ बजे के बाद ही पढ़ाई शुरू करती है।

आरंभ में गंगा के इस समय आने का, मंजु की पढ़ाई के साथ कोई संबंध नहीं रहता था। आजकल गंगा की सहायता से लाभ उठाने के लिए मंजु छह बजे ही पढ़ना शुरू कर देती है। पढ़ते हुए कहीं कोई शंका हो तो घर में किससे पूछकर शंका का निवारण कर सकती थी? इसलिए फोन पर किसी मित्र से पूछती। ऐसे भी दिन होते जब शंका के बारे में पूछे जाने पर बात इधर-उधर भटक जाती और एक घंटे तक बातें करते करते असली शंका को ही भूल जाती और उस दिन की पढ़ाई वहीं खत्म हो जाती।

इस घर के सभी लोगों में ज्यादा पढ़ी-लिखी या पढ़नेवाली मंजु है, इसलिए पढ़ाई के बारे में उसे टोकने वाला कोई नहीं था। मंजु अपने मन में कई बातें इसी उद्देश्य से सोच सोचकर रख लेती कि गंगा के आने पर पूछ सके। उसके कितने भी प्रश्न हों, गंगा सबका उत्तर एक अनुभवी टीचर के समान धीरे धीरे स्पष्टतया देती। वह कभी यह नहीं कहती कि 'मुझे नहीं मालूम है'। कक्षा में अध्यापकों से भी जो बातें स्पष्ट न होती थीं, उन्हें मंजु गंगा से समझ लेती।

आजकल मंजु को 'ट्यूशन' देने वाली एक अध्यापिका की ही तरह गंगा वहां जाती रहती है।

शाम से ही गंगा के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई मंजु उसके आते ही उसे अपने कमरे में ले जाती है। उसके रहते ही मंजु अगले दिन के लिए आवश्यक पाठों की भी तैयारी कर लेती है।

उस घर की ऊपरी मंजिल पर स्थित तीन कमरों में से एक प्रभु और दूसरा पद्मा का है। तीसरे कमरे में मंजु रहती है। और लोगों के लिए भी निचली मंजिल में अलग अलग कमरे हैं। मंजु का कमरा साफ-सुथरा, एक अध्ययन-कक्ष जैसा ही लगता है। प्रभु के कमरे को गंगा ने एकाध बार बरामदे से ही देखा है। यहीं से पता चलता है कि वह कितना अस्त-व्यस्त पड़ा है। कभी कभी मंजु प्रभु की आलोचना करती हुई वह कमरा ठीक कर देती है।

पद्मा का कमरा वातानुकूलित है। वह बंद रहता है। वह कैसा है — इसका पता तक गंगा को नहीं।

गंगा को घर लाने के बाद वह नहाने चला जाता है। उसे स्नान करके कपड़े बदलकर

आने में एक घंटा लग जाता है। कभी बाथरूम के टब में पड़ा पड़ा जो चिल्लाता है...तो 'लो लो' की आवाज यहां तक सुनाई देती है। गंगा ओंठों में हंस लेती है। कभी कभी मंजु जाकर पिता से कहती है कि धीरे से गाएं।

मंजु को पाठ पढ़ाते समय उसके साथ पढ़ाई संबंधी बातें करते हुए शाम का समय बीत जाता है। नहीं तो इनके साथ कार में बैठकर कभी समुद्र का किनारा, कभी होटल,...यों घूमना पड़ता है। इस लड़की के साथ मिलकर प्राचीन काल के इतिहास और आधुनिक युग के इतिहास की तुलना करते हुए व्याख्यान देते समय, गंगा को आपने कालेज के दिन याद आ जाते हैं और उन मीठे अनुभवों को पुनः प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

मंजु कुछ लिखती हुई अपनी जगह से ही आवाज ऊंची करके "मिस गंगा, एक डाउट है" कहकर पुकारती है। गंगा उठकर उसके पास चली जाती है और समझा देती है। फिर वापस आकर प्रभु के पास बैठ जाती है।

"मिस गंगा, एक डाउट है," मंजु की यह आवाज सुनते ही गंगा का मन यह सोचकर कि जाने क्या पूछने वाली है, सजग हो जाता है।

'पिताजी के संपर्क में आप कैसे आयीं? आपका परिचय किस ढंग से हुआ?'...इस प्रकार का कोई प्रश्न मंजु कर बैठे तो क्या जवाब देगी – इस विचार से ही गंगा का मन बेचैन होने लगता।

पद्मा और मंजु उसके रोज रोज आने के बारे में बातें करती हैं – यह संकेत अपने प्रति पद्मा के उपेक्षा भाव और दखल देने के अंदाज से ही गंगा पा लेती है।

रविवार का दिन गंगा अधिकतर यहीं बिताती है। तब गंगा और मंजु पढ़ाई और पाठ्य पुस्तकों के बारे में नहीं, दूसरे कई विषयों की चर्चा भी करती हैं। शापिंग करने जाती हैं। रेडियोग्राम पर संगीत सुनती हैं। इन लोगों के साथ गंगा ने एक पिक्चर भी देख ली है।

उस परिवार के साथ गंगा ने इतनी घनिष्ठता बढ़ा ली है, फिर भी पद्मा उससे दूर ही रहती है। गंगा भी उन सबके साथ बड़ी सावधानी से व्यवहार करती है। गंगा ने निश्चय किया कि यह बात कभी जाहिर नहीं करेगी कि वह आर.के.वी. से मिली है। या उसे यह मालूम है कि मंजु का आर.के.वी. की कहानियों के प्रति आकर्षण है।

"क्या आपने आर.के.वी. की कहानियां पढ़ी हैं? मुझे अच्छी लगती हैं। 'अग्निप्रवेश' पढ़ी है? केवल वही कहानी मुझे पसंद नहीं आयी। मिस गंगा ! क्या आपको मालूम है, वे हमारे कालेज के पुस्तकालय में अटेंडर है।"

अचानक ही यह आर.के.वी. के संबंध में क्यों बोल रही है? मुझे कुछ समझ में नहीं आया। मैं स्तब्ध हूं। अच्छा हुआ। कह रही है कि वह कहानी पसंद नहीं आयी। 'तुम्हें उसका पसंद न आना ही अच्छा है।' मन में सोचती हूं। इनके कालेज के पुस्तकालय में वे काम करते हैं, यह मुझे मालूम है। इसे स्वीकार करूं या न करूं – समझ में नहीं आता। क्या इसे पता

है कि मैं भी इसी कालेज में पढ़ी हूं? पता होना चाहिए या नहीं? मेरा इनके साथ परिचय कैसे हुआ – इस संबंध में इन्होंने मंजु से क्या कहा है?

"क्यों मौन हैं? क्या आपने यह कहानी नहीं पढ़ी है? हमारे कालेज भर में उस पर एकदम कंट्रोवर्सी है। हम सब सीधे उनके पास चली गयीं, पूछने के लिए। कुछ लड़कियां तो झगड़ने भी लगीं। इस प्रकार की कहानी की लड़कियों का अपमान ही तो होता है? वह भी विमेंस कालेज में नौकरी करने वाला एक व्यक्ति ऐसी कहानी लिखता है तो – हाउ रिडिकुलस!"

"व्हाट इज रिडिकुलस अबाउट इट?" मेरा प्रश्न मुझी को कुछ कठोर सा लगता है। जैसे क्लास रूम में अपराध करने वाली स्टुडेंट को टीचर डांट रही हो। यह उसे नहीं लगना चाहिए – इसलिए हंसकर संभाल लेती हूं।

"आपने शायद यह कहानी नहीं पढ़ी है। सचमुच वह कालेज की लड़कियों को अपमानित करने वाली है।" वह बार बार कहती है। मैंने मौन न रहकर पूछ लिया, "वह क्या कहानी है?" यह अपनी शैली में कहानी सुनाने लगती है। कहते समय उस घटना को झूठा सिद्ध करने का उसका उद्देश्य स्पष्ट हो रहा है। यह कहती है, "कहते हैं – खूब पानी बरस रहा था। कालेज के सामने बस स्टाप पर सब चली जाती हैं। सिर्फ एक छात्रा अकेली खड़ी है। तब एक आदमी कार चलाता हुआ आता है। वह उस लड़की को लिफ्ट देता है। वह छात्रा भी कार में चढ़ जाती है। वह कुछ नहीं जानती। अबोध लड़की है। उसे कहीं ले जाकर वह आदमी उसकी इज्जत लूट लेता है। वह लड़की रोती हुई आकर सब कुछ अपनी मां से कहती है। नानसेंस! इससे तो तमिल पिक्चर्स ही अच्छी हैं। क्या इस प्रकार आजकल कहीं होता है? उसकी जैसी लड़की दिखला दीजिए।" – कहते हुए हाथ पसारकर मुझसे झगड़ने को होती है।

मैं गुमसुम बैठी हूं, जैसे कुछ पता नहीं। हाय रे ! इसी वक्त ये भी यहां आ जाते हैं और कहानी सुन लेते हैं। मैं उन्हें अनदेखा करके इससे पूछती हूं –"तो फिर क्या हुआ? बस, इतनी ही कहानी है?" उसके बाद जो हुआ उसे ये कहीं –जिस प्रकार पद्मा के बोलते वक्त बीच में ही दखल देने लगते हैं वैसे – सुनाने न लग जायें – मुझे यही डर है। अगर सुनाने लगें तो क्या होगा ? यह भी कल्पना करती हूं। ये कहते हैं,''उसके बाद क्या हुआ, जानती है? मां और भाई मिलकर उसे पीटते हैं, कोसते हैं। वह भाई यह कहकर कि 'अपनी बेटी को ले जाओ', मां को उस लड़की समेत घर से निकाल देता है। उसके बाद वे दोनों कहीं अंकल के घर चली गयीं। वह लड़की खूब पढ़ने लगी। उसने शादी नहीं की। आखिर एक दिन उसी आदमी को ढूंढ़ लिया। किस को? उसी को जो उसे कार में बिठाकर ले गया था। इस बीच दस-बारह बरस हो गये थे। इसमें यही आयरनी है कि उस आदमी की बेटी ही उस लड़की से पूछ रही है, शो मी ए गर्ल लाइक हर। यह सोचती हुई कि इसका क्या जवाब दे, वह लड़की गुमसुम बैठी है। यह है देखो। यों अपनी ओर इशारा करना चाहिए न !''...

मैं सोचती हूं – अगर ये इसी प्रकार कहें तो कैसा रहेगा ? शायद पहले से ही सब

कुछ कह तो नहीं रखा है – एक शक होता है। यह कहानी लड़की द्वारा सुनाया जाना, उनका आकर सुनते हुए खड़ा रहना, 'वैसी किसी लड़की को दिखाइए' कहकर मेरे सामने इसका हाथ पसारे खड़ा रहना – यह सारा एक नाटक तो नहीं है?

"क्या है – कोई स्टोरी? सिनेमा स्टोरी है? तमिल है या अंग्रेजी?" पूछते हुए ये आ बैठते हैं।

"पिताजी ! यू जट लिसन। अब हम साहित्य की चर्चा कर रहे हैं," कहकर मंजु इन्हें अलग रखती है। ये भी चुपचाप सिगरेट फूंकते हुए बैठे हैं। अपनी इस बात को वे कहीं गलत न मान जायें, इसलिए सहज ढंग से उनकी ओर देखती हुई कहती है मंजु –"वही पिताजी...आर.के.वी. आपके आफिस के कार्यक्रम में आकर बोले थे न, उन्हीं की लिखी कहानी के बारे में बात चल रही है।"

"वह भाषण अच्छा देता है न, गंगा ! विश्वास नहीं करोगी। वह आर.के.वी. तुम्हारे कालेज में ही एक आर्डिनेरी प्यून है। मगर लेखक बनना, व्याख्यान देना – यह सब गिफ्टेड होता है।" आर.के.वी. की प्रशंसा करते हुए ये अंग्रेजी में ही अद्भुत ढंग से बोलते हैं –"कुछ लोग अपने मुंह में चांदी की चम्मच लेकर पैदा होते हैं। कुछ सोने की जीभ के साथ पैदा होते हैं। तुम्हारे कालेज में भी उसका बड़ा मान-सम्मान है। मंजु से ही मुझे यह मालूम हुआ।"

ये मुझसे जब 'तुम्हारा कालेज' कह रहे हैं, मंजु ऐसे देखती है कि वह कुछ समझ नहीं पा रही हो।

"मिस गंगा! क्या आप हमारे कालेज की ओल्ड स्टूडेंट हैं?" कुछ नयी आत्मीयता से पूछती है। और चारा न पाकर 'हां' कह देती हूं। "तो आप आर.के.वी. को जानती होंगी?" मुझे घेर रही है, "लगभग बीस बरस से वे हमारे ही कालेज में हैं। उनका पूरा नाम है आर.के.वी. विश्वनाथ शर्मा।"

"उन दिनों मैं उन्हें सिर्फ विश्वनाथन के नाम से ही जानती थी। वे ही आर.के.वी. हैं, यह अभी हाल ही में पता चला। यह भी मुझे पता है कि वे हमारे कालेज की लाइब्रेरी में काम करते हैं। उसी कालेज में तुम पढ़ रही हो, यह भी मुझे मालूम है। लेकिन इन सारी बातों को कनेक्ट करके कभी नहीं सोचा। इसकी जरूरत भी नहीं थी।" मैं चतुराई के साथ झूठ और सच दोनों मिल कर कहती हूं और किसी प्रकार उलझन से छूट जाती हूं।

अब भी मैं सोचती हूं कि इन्होंने कहीं इन सब लोगों से यह तो नहीं कह रखा है कि मेरा इनसे परिचय किस प्रकार हुआ ? यह बात तो मेरे लिए झूठ ही है। ये लोग जब इस हद तक स्वच्छंदता से बोलते हैं तो सिर्फ मैं क्यों किसी डर से बातों को छिपाकर रखूं? मंजु और उसके पिता – दोनों को सामने देख मैं पूछती हूं, "मंजु ! मुझे आपके पिताजी कैसे जानते हैं, क्या यह कभी उन्होंने तुमसे कहा है?" मंजु से यह पूछकर मैं इनकी ओर मुड़कर अंग्रेजी में कहती हूं, "क्या आपने कभी मंजु से हमारी पहली भेंट के बारे में कहा है?" मेरे इस प्रकार

अचानक पूछने पर इनकी ऐसी हालत हो गयी जैसे खड़े हुए व्यक्ति के पैरों तले से अचानक दरी खींच ली गयी हो। मैं मंजु का चेहरा देखती हूं। उसके चेहरे से भी यह जान लेने की उत्सुकता प्रकट हो रही है। क्षण भर में मुझे स्पष्ट मालूम हो जाता है कि इसके बारे में यहां कभी बात नहीं चली है।

"इसकी क्या जरूरत ? मैंने कहा है, मेरी दोस्त हो। क्या इतना काफी नहीं है? हर एक दोस्त को लाते समय क्या यह सारी कहानी कहना संभव है कि कैसे परिचय हुआ? कैसे मिले? इन सब को मालूम है कि मैं अपने 'भद्र मित्रों' को ही घर में लाता हूं।" वे घबराते हुए कहते हैं।

मंजु मेरे कान में कहती है, "हमारे पिताजी के डीसेंट फ्रेंड्स भी हैं – यह आपको देखने के बाद ही हमें पता चला।"

"ए मंजु ! तुम कुछ मेरे बारे में कह रही हो?" तब मेरी ओर देखते हुए पूछते हैं, "क्या कह रही है यह?"

"कैसे बता सकती हूं? मुझसे जो रहस्य कहा गया आपसे क्यों कहूं? लेकिन अब मैं कहने वाली हूं कि हमारा परिचय किस प्रकार हुआ।"

"एक रोज खूब पानी बरस रहा था। कालेज से भीगती हुई मैं निकली। बस नहीं आयी। आपकी एक बड़ी कार है न, उसे चलाते हुए ये आये। मुझे 'लिफ्ट' दी – उसके बाद मैं तिरुच्ची चली गयी। पिछले महीने एक दिन दफ्तर के किसी काम से हमारे कार्यालय में ये आये थे – मेरे ही डिपार्टमेंट में। लेकिन इन्हें मेरी याद नहीं रही, न पहचान ही पाए। मुझे खूब याद था। पहचान गयी। बस इतना ही। इसमें कोई कहानी नहीं है।"

मेरी पीठ पीछे, न जाने इनके मुख पर क्या क्या रंग आ-जा रहा होगा।

"गंगा, मैं जरा बाहर जा रहा हूं। रास्ते में, चाहो तो तुम्हें ड्राप करता जाऊंगा। नहीं तो यहां रहकर जब चाहो चली जाना।" ये जल्दी से चल पड़ते हैं।

यह देखकर मंजु पूछती है, "कहां ? क्लब में ?"

"नो, नो। और काम है। हो सकता है, क्लब भी चला जाऊं। बहुत दिन हो गये न।"

"जाइए।...लेकिन ताश मत खेलना।"

"खेलूंगा।"

"खेलिए, लेकिन मुझसे पैसा न मांगना।"

"मागूंगा, तुम्हारे बाप के घर का है क्या?"

"हां !" कहकर मंजु हंसती है। ये भी बच्चे के समान हंस देते हैं।

मां को रोज रात के वक्त प्रतीक्षा में रखना मुझे कष्टदायक लगता है। आज मैं भी जल्दी जाना चाहती हूं "रुकिये ! मैं भी चलती हूं। घर में कुछ काम है।" कहकर इनके साथ ही चल पड़ती हूं। मंजु हाथ हिलाकर मुझे विदा करती है।

15

इनके साथ मुझे जरा अकेले में बात करनी है। इसीलिए जब ये चल पड़े तो मैं भी साथ में चल पड़ी। आजकल इनके साथ अकेले में बात करने के लिए मुझे अवसर नहीं मिलता। दफ्तर से मुझे ले आते समय बात कर सकते हैं। लेकिन वह समय काफी नहीं है। बात शुरू करने पर आगे बढ़ाने के लिए समुद्र के किनारे, या होटल में जाना पड़ता है। उनके घर में तो जाते ही मंजु के साथ बात करने बैठ जाती हूं। ये स्नान करने चले जाते हैं। बाद में पीना शुरू कर देते हैं। यह जानने के बाद कि ये पिये हुए हैं, इसके साथ कोई सीरियस बात चलाना मुझे ठीक नहीं लगता। पहले से ये कुछ अनाड़ी हैं। कुछ पूछो तो 'बड़ बड़' करते ही जाते हैं। तब देखने में बड़े बेचारे लगते हैं। यह आदमी किसलिए पीता है? इन्हें देखने पर पता लगता है कि शारीरिक रूप से इन्हें बड़ी पीड़ा हो रही है। माथे पर खूब पसीना बहता है। आंखें लाल हो जाती हैं। जीभ खिंच सी जाती है और लड़खड़ाती है। कभी कभी कै भी कर देते हैं। दम फूल जाता है। ऐसा लगता है कि सभी पीनेवालों की हालत ऐसी ही होती होगी। फिर भी यह आदमी क्यों पीता है – पता नहीं !

मुझे तो पिया हुआ आदमी, सन्निपातग्रस्त व्यक्ति और पागल – तीनों में कोई बड़ा अंतर नहीं मालूम होता। यह समझकर कि इसमें खुशी है, पीना भी एक भ्रम है। मनुष्य का शरीर इसे स्वीकार न करके 'रिवोल्ट' करता है। वे मनुष्य ऐसे हैं कि सोडा डालकर, बर्फ डालकर तीखे या नमकीन पदार्थ खाते हुए अपने शरीर को मनवा मनवाकर उसे भीतर डालते रहते हैं। उसके बाद भी भीतर 'रिवोल्ट' होता है। इसी को ये खुशी समझते हैं। इससे बढ़कर अज्ञानता और क्या हो सकती है !

इसके प्रभाव में जो आदमी रहता है, वह किसी भी विषय के प्रभाव में आसानी से आ जाता है। जो व्यक्ति इस समय से लाभ उठाकर इनसे कुछ काम लेना चाहते हैं, उनके लिए इनके साथ बात करने और जिरह करने का यही उपयुक्त समय होता है। लेकिन जो लोग यह चाहते हैं कि इनकी बुद्धि को जागृत करके चिंतन में संलग्न करना है, उनको ऐसे अवसर पर जाकर इनसे बात नहीं छेड़नी चाहिए। वैसा करना बेवकूफी होगी।

मैं इनसे जो बात करना चाहती हूं, नहीं कर पा रही हूं। इसका यही एक मात्र कारण नहीं है।

वह बात मेरे अनुभव से बाहर है, संबंधरहित है और इनके अंतरंग का विषय है, इसे मैं कैसे बताऊं, कैसे आरंभ करूं – यह मुझे नहीं सूझता।

फिर भी मुझे इनसे यह बात करनी ही चाहिए। इनके और मेरे बीच में दुराव-छिपाव क्या है? मेरे विषय में इन्होंने वैसा गलत आचरण नहीं किया है।

'यह भी एक लड़की ही तो है,' यदि मेरे बारे में ये ऐसा विचार करते तो क्या ऐसा होता? ये मुझसे इतना अपनापन दिखाते हैं कि मेरे परिधान को हटा दें, मेरे एकांत में दखल दें तो भी मुझे कुछ बुरा न लगेगा। इनके साथ बात करनी है, मुझे मान-प्रतिष्ठा की चिंता नहीं करनी चाहिए।

इसके लिए इनके साथ आज शाम को अगर समुद्र के किनारे या किसी होटल में कहीं एकांत में चला जाये तो अच्छा होगा।

कार में चढ़ने से लेकर इस क्षण तक ये या मैं कोई शब्द न बोले। ये जिस मार्ग से कार चलाते जा रहे हैं, इससे लगता है कि मुझे सीधे घर पर ले जाकर छोड़ेंगे। ऐसा लगता है, आज कोई स्पेशल प्रोग्राम है। प्रसाधन-सिंगार सब बहुत बढ़िया कर लिया है। इन्हें आज शराव शायद वाहर ही प्राप्त होगी। इसे मैं क्यों खराव करूं ? छिः ! मैं भी कैसी हूं? मेरे जीवन को ही जिसने खराब कर डाला, उसके विषय में मैं इतनी मृदुलता दिखाऊं, यह भी गलत है। इनकी शाम को मैं क्यों खराब न करूं? मैं खराब कर दूंगी, मैं इनकी इस शाम को खराब कर दूंगी। क्यों नहीं करना चाहिए?

जब स्पर्टांग रोड के लिए कार घूम रही थी, तब मैंने इनसे कहा, "मुझे काफी पीने की इच्छा हो रही है।"

कुछ न समझते हुए ये मेरी तरफ देखते हैं। क्योंकि, हम काफी पीते हैं तोउसका मतलब सिर्फ पानी पीना नहीं है, वह एक बड़ी रस्म है। उस विशाल 'ड्राइव-इन' होटल के अहाते में एक पेड़ के नीचे कार खड़ी करके वैरा को बुलायेंगे, वह पास आकर पूछेगा कि क्या चाहिए – इतने में दस मिनट लग जायेंगे। उसके बाद वह हमारी जरूरी चीजें पूछकर जायेगा। उन्हें लाकर देगा, फिर हमारे बिल का पैसा अदा कर आयेगा – इसमें एक घंटा लग जायेगा। जो जल्दी काफी पीना चाहते हों, वे यहां नहीं आते हैं। इन्हें तो क्लब जाने की जल्दी है।

"कहीं जाकर कुछ खाएंगे। आपसे मुझे कुछ बात करनी है। क्या आपको कहीं जाने की जल्दी है?"

कार रुक जाती है। कुछ अप्रत्याशित घटित हो जाने का सा आश्चर्य इनके मुंह पर दिखाई पड़ता है। क्या सचमुच मैं ही हूं जो उनसे इस ढंग से बात कर रही हूं? मैं पूछ लूं तो फिर चाहे कोई भी काम रुक जाये, मेरी इच्छा को पूरा करना चाहिए – जिस वेग से ये कार को

रिवर्स कर रहे हैं, इसी से उनका यह उत्साह प्रकट हो रहा है।

"आई एम सारी। घर में काफी, नाश्ता कुछ नहीं लिया था। क्या तुम्हें भूख लगी है? इसलिए चेहरा मुरझा सा गया है। मैं भी कैसा बुद्धू हूं!"

मानो मैं भूख से तड़प रही हूं —ये एकदम चिंता करने लगे हैं।

"नो ! नो ! वैसा कुछ नहीं है। आपसे थोड़ी देर बात करना चाहती थी, इसलिए पूछा था, वरना मुझे वैसी कोई भूख नहीं है।" मैं स्पष्ट करती हूं। मगर मेरी बात इनके कान में नहीं पहुंचती है।

"कहां चलें? ड्राइव-इन होटल? अगर कार में ही बैठकर खाना हो तो वहां चलें। नहीं तो और कहीं जा सकते हैं।"

"ड्राइव-इन ही चलें।"

कार फिर चलने लगती है। शायद अब ये अपना प्रोगाम भूल गये। मेरे प्रति काफी मान रखते हैं। अब आगे जब मैं घर जाने को कहूंगी, तभी ये मुझे मेरे घर छोड़कर वापस जायेंगे। साफ मालूम हो रहा है कि मेरे कारण यदि इनके सारे प्रोग्राम खराब हो जायें तो ये भी उसकी कुछ परवाह नहीं करेंगे। बड़े अच्छे हैं। वह होशियार पद्‌मा क्यों इतने अच्छे व्यक्ति को अपने वश में नहीं रख पाती है ? मैं कर पाती हूं। एक लकीर खींचकर अगर कह दूं कि आप इसे न लांघें तो ये नहीं लाघेंगे। अगर ये लांघ भी जायें तो उस बात की परवाह किये बिना इन्हें फिर कह दें तो फिर कभी खींची हुई लकीर को नहीं लांघेंगे। लेकिन पद्‌मा के विषय में संदेह होता है कि ये वैसा नहीं करेंगे। मंजु की जितनी मानते हैं, उतनी पद्‌मा की नहीं। किस कारण से? वह कहती है, 'अगर आप इससे ज्यादा पिएंगे तो मैं आपसे नहीं बोलूंगी।' ये बच्चे की तरह 'हां' कहकर मान जाते हैं। वह इसके लिए 'चायस' देती है। पहले वह बोतल उठा ले जाती है। ये पीछे पीछे दौड़े जाकर उसे खींचकर लाते हैं। इसके बाद वह एक 'चायस' देती है, 'आप पियेंगे तो मैं नहीं बोलूंगी। अगर मेरे न बोलने की भी परवाह न हो तो पी लें।'

यह था वह? — वे दुविधा में फंस जाते हैं। इट इज दी सीक्रेट। वैसा न करके जिस प्रकार इन्होंने मंजु के हाथ से बोतल छीन ली, उसी प्रकार मंजु भी इनके हाथ से छीनने लगे तो क्या होगा? ये ही जीतेंगे। होड़ लगाने के कारण ही हर मामले में ये ऐसे हो गये हैं।

मंजु को पिताजी से प्यार है। इन्होंने यद्यपि मुझे बिगाड़ा है, तो भी, जैसे कि मामा कहते हैं, ये मेरे मर्द हैं — मेरे मन में इनके प्रति ऐसा ही कुछ आदर-भाव है। इनके मन में भी अपनी बेटी के प्रति स्नेह है। अपने द्वारा बिगाड़े जाने पर भी मेरे प्रति ऐसी भावना रखते है कि मैं एक भद्र महिला हूं। क्या यह आदर मात्र है? नहीं। इससे बढ़कर मेरे प्रति इनके मन में कुछ और ही भाव है।

ड्राइव-इन रेस्तरां के अहाते के भीतर कार जाती है। मैं इनसे पूछती हूं, "आज आप

का और कोई प्रोग्राम है शायद। मेरे कारण आपको देर तो नहीं हो रही है?"

"हें!" मेरी तरफ आश्चर्य से देखते हैं। शायद किसी सोच में हैं। कुछ बेमतलब की हंसी हंसते हैं। कार लाकर एक पेड़ के नीचे खड़ी कर देते हैं और कहते हैं, "मेरा सारा प्रोग्राम, ज्यों ज्यों देर होगी, अच्छा रहेगा। फिर अभी तो बहुत समय है।"

वेटर आता है। "क्या खाओगी?" ये मुझसे पूछते हैं।

"आप ही कुछ आर्डर दे दीजिए।"

"स्वीट?"

"हूं।"

"मीठी चीज क्या है?" पूछते हुए वेटर से कुछ कहते हैं। वह चला जाता है।

मैं इनसे जो कहना चाहती थी, उसे अभी शुरू कर देना चाहती हूं। मालूम नहीं हो रहा कि कैसे शुरू करूं। वह सब क्या मैं इन्हें बताऊं...नहीं...नहीं।

"तुम कह रही थीं कि मुझसे कोई बात कहनी है। क्या बात है?" ये मुझे कहने को उत्साहित कर रहे हैं। मेरे मुंह पर हवाइयां उड़ रही हैं। शायद हंस पड़ती हूं। उसकी प्रतिक्रिया इनके चेहरे की मुस्कुराहट है।

"कुछ ऐसी बात नहीं।" मैं शुरू करती हूं। हाय रे ! मैं यह क्या गूंगी जैसी कुछ नहीं बोल पा रही हूं!

ये हंसते हुए कह रहे हैं, "इस मंजु के साथ मिलकर तुम भी वैसी ही हो गयी हो। पहले कोई बात करने के लिए कहना। फिर 'कुछ ऐसी बात नहीं' कहकर टाल देना। वह मुझे अभी बच्चा समझती है। हां ! वह मुझे बाप ही नहीं समझती है। जैसे मैं उसका छोटा भाई हूं। 'वह न करो, यह न करो। वहां मत जाओ, यहां मत जाओ' — कहकर आदेश और उपदेश देती रहती है। तुम भी वैसी कोई बात कहना चाहती थीं क्या? बताओ, बताओ ! अब तुम भी मेरे लिए एक बेटी जैसी हो। तुम मेरे लिए अब मंजु जैसी हो।"

ये किसलिए ऐसी बात कह रहे हैं ? मेरी आंखें छलछला आती हैं इधर देखते समय। मेरे मन में भी मेरे पिता के जैसा — उन्हें मैंने देखा ही नहीं हैं — एक स्नेह महसूस हो रहा है। इनके पके हुए बाल, सरल स्वभाव। इनके प्रति मेरे मन में आदर-भाव अब अचानक कई गुना बढ़ जाता है।

"कुछ नहीं। अचानक कल एक संदेह हुआ था। मुझे कोई संदेह नहीं है, लेकिन कुछ ऐसा लगा कि और लोगों को संदेह होगा। हमें उन्हें कोई अवसर नहीं देना चाहिए, है न?"

"तुम क्या कह रही हो?"

"ठहरिए। अभी तो मैंने आरंभ किया है।" एक क्षण रुकती हूं। उस क्षण में मैं उन्हें गौर से देखती हूं। इनके और अपने बीच के संबंध के बारे में गहराई से सोचती हूं। इनसे

मैं कुछ भी कह सकती हूं। मेरे लिए ये दूसरे पुरुषों के जैसे ही 'कोई' नहीं हैं। सब लोग इन्हें मेरे साथ जोड़ते हैं और सोचते हैं। शायद इन्हें पता हो या न हो। अगर यह पता लगे तो इसके लिए चिंतित होकर या इस आशंका से कि कहीं मेरे जीवन के और बिगड़ जाने का कारण न बन जायें — क्या मुझसे मिलना ही बंद कर देंगे? नहीं ! वैसा गंभीर चिंतन ये कभी नहीं करते, फिर भी व्यथित होंगे। किसी से लड़ेंगे-झगड़ेंगे? मुझे इनसे लज्जा नहीं करनी है, इनके हित की बात कहते हुए मुझे संकोच नहीं करना चाहिए। इनसे मुझे बात करनी है। मैं कहती हूं, "क्या आप जानते हैं कि हम दोनों के बारे में लोग क्या बातें करते रहते हैं?" लगता है, ऐसा प्रश्न उनके मन में कभी आया ही नहीं।

"लोग माने कौन कौन?" पूछते हैं।

"जैसे — वह, जो हाथों में मिठाई-नमकीन ला रहा है न, वह वेटर; जैसे उधर बगल वाली कार में बैठे हमारी तरफ घूरकर देखने वाले ये रिटायर्ड जेंटलमैन। आप रोज मुझे दफ्तर में लाकर छोड़ते हैं — हमारे दफ्तर के लोग। इतना ही क्यों? रोज रात के दस बजे आप मुझे मेरे घर छोड़ने आते हैं — हमें जो देखती रहती है, वह मेरी मां। मुझे मेरे घर में छोड़ आने की बात कह जब आप अपनी कार में बोतल भी साथ लेकर चलते हैं और अगले दिन सवेरे अपने घर जाते हैं तो आपको देखने वाली आपकी पत्नी और मंजु — ये सब.... ।"

जैसे मैं पहले से लिखी कोई सूची पढ़कर सुना रही होऊं। इसी प्रकार कह रही हूं कि इसी बीच वह वेटर कार के पास आ जाता है और मैं अपनी बात रोक देती हूं।

"ए ! एक ट्रे इधर लाओ।" वह वेटर चिल्लाता है। खाकी वर्दीवाला एक लड़का दौड़ा आता है और कार के दरवाजे पर ट्रे लाकर टिका देता है। ट्रे पर वह वेटर सब चीजें कतार में रख देता है। "काफी चाहिए, सर?" पूछता है। ये सिर हिला देते हैं तो वह चला जाता है।

ये मिठाई उठाकर मुझे देते हैं। ये भी कुछ सोचते हुए खा रहे हैं। मुझे देखे बिना ही कहते हैं, "आई डोंट केयर।"

"हम तो 'केयर' किये बिना रह जायें, लेकिन मैं सिर्फ यह पूछती हूं कि वे जो बोलते हैं — क्या आप जानते हैं? जानकर 'केयर' न करें तो ठीक है। जानते ही न हों तो कैसे...?"

"क्या कहते हैं वे लोग?" मेरी ओर ये देखते हैं। मैं उन्हें देखती हूं। पांच गिनने तक चुप रहते हैं। फिर बोलती हूं। "मैं आपकी रखैल हूं, यही कहते हैं।"

"स्टुपिड! कौन कहता है ? कहेंगे तो जूतों से पिटेंगे।"

"मेरी मां ही समझती है।"

"सारी।" कहकर सिर खुजलाते हैं। "आई विल एक्स्प्लेन हर एवरीथिंग। क्या कहा था उन्होंने? मैं खुद आकर उनसे बात कर लूं तो सब ठीक हो जायेगा। डोंट वरी।" — देखने

पर बेचारे लगते हैं।

"आपकी पद्मा नहीं समझेंगी?" मैं पूछती हूं। भौंहें सिकोड़कर 'चू !' कह देते हैं बड़े उपेक्षा भाव के साथ, जैसे अपने कानों से उन बातों को निकाल रहे हों।

"मंजु?"

"हां। शी इज जस्ट ए चाइल्ड।"

'आपसे भी बढ़कर?' मैं मन ही मन सोचती हूं। इन्हें देखकर हंसते हुए मैं अंग्रेजी में पूछती हूं, "जहां तक आपका संबंध है, इससे संबद्ध सारे प्रश्न समाप्त हो गये। है न? मेरी मां को समझाया जा सकता है। पद्मा के बारे में 'चू' और मंजु बच्ची है—कह देना इतना आसान है क्या? हम दोनों ही बड़े अक्लमंद हैं, क्यों ?"

ये अंग्रेजी में जवाब देते हैं, "आई डोंट नो। हम अक्लमंद हों या नहीं, जिन्हें हम रोक नहीं सकते, ऐसी बातों पर माथापच्ची करना मुझे अक्लमंदी नहीं लगता। जहां तक मेरा सवाल है, मैं जो भी करता हूं उसका मुझ पर दायित्व नहीं है। वैसा दायित्व उठाने का मुझमें बल ही नहीं है। अपनी लिमिटेशंस का मुझे पता है। मेरे बारे में लोग क्या नहीं कहते, जो अब नया कह रहे हों! मगर तुम्हारी चिंता है मुझे। बेकार ही तुम्हारी बदनामी होगी, यही सोचता हूं। नाम खराब हो सकता है, लेकिन व्यर्थ ही बदनामी नहीं मोल लेनी चाहिए। मेरा मतलब है, बदनामी नहीं होनी चाहिए। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम्हारे लिए एक अच्छा वर ढूंढ़ना है। तुम शादी कर लो। सब ठीक हो जायेगा।"

ये क्यों बार बार वह बात करते हैं? ये कैसे सोच रहे हैं कि मेरी शादी इतनी आसानी से हो जायेगी? इनके मन में क्या है? नहीं तो कौन है वह?

मैं कहती हूं, "इसमें दो बातें हैं। पहली बात है, क्या मैं विवाह के लिए सहमत हूं? दूसरी बात है, मेरे बारे में इतनी अफवाहें फैल गयी हैं, इस पर भी क्या कोई मुझसे विवाह करने को तैयार होगा? और सत्य को छिपाते हुए मेरे लिए विवाह कर लेना क्या अच्छा होगा?"

"नहीं, नहीं, वह ठीक नहीं होगा। वह बड़ी गलती होगी। फिर भी, कितने ही लोग हैं, जो विवाह करने के लिए तैयार होंगे। मैं तो तुम्हारी स्वीकृति चाहता हूं। तुम 'हां' कह दो बस।"

मुझे लगता है, इस बात को आगे नहीं बढ़ाना चाहिए। अंकुर को ही तोड़ देना चाहिए। मैं दृढ़ता से कहती हूं, "उस बात को छोड़ दीजिए। मैं तो आपसे कहने आयी थी कि हम दोनों के बारे में लोग चाहे कुछ भी समझ लें; मुझे इसकी परवाह नहीं है। मेरी मां, मेरे दफ्तर के लोग आदि हमारे बारे में कुछ भी कहते रहें, तब सब—जैसा कि आपने कहा — मेरे लिए 'चू' हैं। लेकिन मंजु भी तो है।...पता नहीं क्यों, मुझे लगता है कि उसे हमारे बारे में कोई बुरा विचार नहीं रखना चाहिए। अब भी मेरा विश्वास है कि वह हम दोनों के बारे में कुछ बुरे ढंग से नहीं

सोचती। मुझे डर है कि कहीं वह बुरा न समझने लगे। जब समय आयेगा, तब मैं उसे अपने बारे में सभी तथ्य बता दूंगी। लेकिन वैसा समय आने से पहले ही कहीं उसका मन मेरे प्रति मैला न हो जाये और उसके बाद मेरे कहे जाने वाले तथ्य उसे असत्य न प्रतीत हों। वह मेरा आदर करती है तो जैसे सारा जगत ही मेरा आदर करता है। इसीलिए मैं इस मामले में आपकी मदद मांग रही हूं।"

"इसके लिए मुझे क्या करना है, बताओ?" मुझे लगता है, जैसे कैकेयी ने दशरथ से वर मांगे थे, संक्षेप में वर मांग लूं। मैं मांगती हूं – "जब कभी आप मेरे साथ बाहर निकलते हैं, तब मुझे मेरे घर छोड़ दें और आप सीधे अपने घर लौट जायें। उसके बाद आप चाहें कहीं भी जायें। ऐसा करना बहुत जरूरी है।"

16

मैंने सोचा था, मां को रात्रि के दस बजे तक प्रतीक्षा में रखे बिना जल्दी लौट जाना चाहिए। लेकिन आज भी दस बज गये। इन्हें क्या? ज्यों ज्यों देर होती जाती है, कहते हैं इनके सारे कार्यक्रम और भी अच्छे होने लगते हैं। मेरे पूछने पर ये वैसा जवाब देते हैं। मेरे साथ बात करते समय इन्हें न तो विलंब हो जाने का विचार आया, न पहले से निश्चित कार्यक्रमों का ही ध्यान रहा। थोड़ी देर पहले मैंने ही याद दिलाया। तब भी बड़ी लापरवाही के साथ यही कहा, "कोई बात नहीं। मैं तुम्हें तुम्हारे घर छोड़कर जाऊंगा।" मैंने "नहीं" कहकर इन्हें घर वापस भेज दिया और एक टैक्सी लेकर अपने घर आ गयी।

यहां जब टैक्सी से घर आ पहुंची तो दस बज रहे हैं। टैक्सी का किराया देकर भीतर आती हूं। मां रोज बाहर मेरी प्रतीक्षा में बैठी रहती, लेकिन आज नहीं दिखाई पड़ी। दरवाजा खुला है। ओ ! वेंकु मामा आये हैं। आराम्कुर्सी पर बैठे बैठे मेरी ओर देख रहे हैं। मेरे देखते ही उस ओर मुंह फेर लेते हैं। शायद समझ रहे हैं —इनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी है, यह मैंने अभी नहीं देखा है।

क्या हमेशा की तरह ही आये हैं, या मां ने चिट्ठी डालकर उन्हें बुलाया है ? चाहे जैसा भी हो। मुझे तो सिर्फ यही दुख है कि आज के दिन मैं अकेली ही टैक्सी से चली आयी।

मामा की यह आदत रही है कि मेरे आने के पहले चाहे जितने भी कोप के साथ मेरे बारे में बात कर रहे हों, तो भी मुझे देखते ही वह सब भूल जाते और मंद हास करते हुए मेरे सामने आकर खड़े हो जाते, अपनी बांहें फैलाकर कहते, 'गंगा ! आओ ! आओ !' जैसे किसी घुटने के बल चलते बच्चे को पास बुला रहे हों।

इस समय मामाजी मेरी ओर मुंह नहीं फेर रहे हैं, कहीं छत की ओर गुमसुम देखते हुए बैठे हैं। मां सिर का पल्ला खींचे हुए चुपचाप मेरी तरफ देख रही है। उसका चेहरा पूरा नहीं दिखाई दे रहा है। इसलिए वह क्या सोचती हुई देख रही है—स्पष्ट नहीं हो रहा है। ठीक है। ये चाहे मेरे बारे में कुछ भी समझ लें, मुझे इसकी क्या परवाह है ? मुझे अब ऐसा आचरण करना है जैसे मैं इन सब बातों पर ध्यान ही नहीं दे रही हूं।

"कब आये?" मामा से पूछती हूं। मामा मेरी तरफ देखते हैं। उन्हें खेद है, कोप है, वह सब दबाकर बोल रहे हैं, यह स्पष्ट कर रहे हैं, "दोपहर को।" एक ही शब्द में जवाब देते हैं। उसके बाद क्या पूछूं...? समझ में नहीं आ रहा है। चुपचाप अपने कमरे के भीतर चली जाती

हूं। खंभे का सहारा लिये खड़ी हुई मां देख रही है। जाने क्यों, आजकल जब यह अपना सिर का पल्ला आगे खींचकर मुंह छिपाये देखती है तो मुझे डर लगता है। लगता है, यह मां नहीं है, कोई और है। उसका मुंह किसी मनुष्य जैसा नहीं प्रतीत होता है। मैं कमरे के भीतर जाकर किवाड़ बंद कर लेती हूं।

अब कमरे के भीतर अकेली रहना अच्छा लग रहा है। कपड़े बदलने के बाद, किवाड़ खोलकर बाहर जाना है, खाना है, इनके साथ बात करनी है, इनके पूछे प्रश्नों के जवाब देने हैं, बैठे बैठे इनके सभी तर्क सुनने हैं, उपदेशों को बर्दाश्त करना है, इन्होंने जो उपकार किये हैं, उनका कृतज्ञता सहित स्मरण करना है—यह सब सोचते समय किवाड़ खोलकर बाहर जाने में ही डर लगता है।

अब मुझे साड़ी बदलने की नहीं सूझती। हाथ-मुंह धोना नहीं सूझता। भूख नहीं है। अब मैं खड़ी हूं, मगर खड़े ही रहना हो तो भी सवेरे होने तक ऐसे ही अपने ही कमरे के भीतर बड़ी खुशी से खड़ी रहूंगी। सामने की अलमारी पर लगे शीशे में अपना प्रतिबिंब देखती हुई खड़ी हूं।

यह सब सिंगार देखकर मामा क्या सोचेंगे? उन्होंने मुझे देख लिया है न ! तो भी शायद इस पर ध्यान नहीं दिया है। उनके लिए यह शायद कुछ नया या अचरज पैदा करने वाला नहीं है। लगता है कि मां ने न केवल इन्हें यहां आने को लिखा है, बल्कि मेरे बारे में सभी बातें लिख दी हैं, कुछ नहीं छोड़ा है।

लेकिन हर एक मामले के बारे में मामा कौन सी 'लाईन' पकड़ेंगे—यह बात मेरे सिवा और कोई पहले से नहीं कह सकता।

वे कहेंगे कि जो कुछ हुआ, सो ठीक ही हुआ। फिर कहेंगे कि जाति से, परिवार से मुझे अलग कर देना होगा। और फिर मुझसे अकले में कहेंगे कि जाति के प्रति, परिवार के प्रति मेरा क्या कर्तव्य है और मुझे कैसा त्याग करना चाहिए...

देखा जाये, क्या कहते हैं? शायद यही सोच रहे होंगे कि चाहे कुछ भी हो—मैं इनके वश से बाहर न हो जाऊं।

मुझे इस कमरे के भीतर आये पांच मिनट से अधिक हो रहे हैं। वैसी ही खड़ी हूं। मैंने सब काम बड़ी हिम्मत से कर डाले। फिर भी मन के भीतर डर है। कल सवेरे वे यहां आयेंगे। तब मामा उन्हें देखकर क्या कहेंगे? या कुछ बात ही न करेंगे?

यह 'वही आदमी' है – मां ने बताया होगा। नहीं तो, जैसा कि मां को संदेह है, 'वह' का बहाना करते हुए मैं किसी और के संग घूम रही हूं।

कब तक मैं किवाड़ बंद किये खड़ी रहूंगी ? मामा सोचेंगे कि किसी डर के कारण मैं यहां आकर छिप गयी हूं। मां भी यह सोच रही होगी। वैसा सोचकर ही तो उसने मामा को

पत्र लिखा है। शायद उसका ख्याल है कि मामा यहां आते ही तलवार उठा लेंगे और मेरा सिर काट देंगे।

सिर का कपड़ा आगे खींचकर मुंह छिपाए देखती है। उसकी दृष्टि मानो कह रही हो, 'ये आये हैं ! अरी...इनसे जरा बात तो कर लो !'

हूं...बात करती हूं। उनसे मैंने किस विषय पर बात नहीं की है ? इस संबंध में भी बात करूंगी। यह कोई गलती नहीं है। गलत हो या सही, इसके बारे में मुझे बात करनी है। मुझे इनका सामना करना है।

जल्दी जल्दी अपनी साड़ी बदल लेती हूं और 'खड़ाक' से किवाड़ खोलकर निकल पड़ती हूं। हाल में जाकर खड़ी होती हूं। मां ने मेरे लिए खाना लगा दिया है, मेरी प्रतीक्षा में रसोईघर में ही खड़ी है।

औपचारिक ढंग से मैं मामा से पूछती हूं, "क्या आपने भोजन कर लिया है?"

"हां। तुम जाकर खा लो। अब सवा दस बज रहे हैं।" साधारण ढंग से मुझसे बोल रहे हैं मामाजी। शायद सोच रहे हैं—खाना खाकर आ जाये, तब बात की जाये। सारे 'प्वाइंट्स' मन में एकत्र कर रख लिये होंगे। जमकर कहां से पकड़ा जाये—यह सोचते हुए दांव खोज रहे हैं शायद? झट उछल पड़ेंगे। उस उछलने में मैं बहुत बुरी तरह फंस जाऊंगी – ऐसा मां सोच रही है। इसे क्या पता होगा कि मैं इनकी बातों के लिए अभ्यस्त हूं।

मैं चुपचाप बैठ जाती हूं और सिर झुकाए खाने लगती हूं। शाम को उस रेस्तरां में जो खाया था, वह पेट में अभी वैसा ही पड़ा है। जाने किस किस तेल में बनाते हैं। अच्छा हुआ। मां पहले की तरह कुतर कुतरकर 'इसे जरा ले लो, उसे थोड़ा और ले लो' कहती हुई थाली में नहीं भर रही है। थाली में मट्ठा भरकर चावल मिलाकर खा लिया और उठ गयी। मां सोच रही होगी – इसने कहीं जाकर कुछ खा लिया होगा।

हमेशा मामा का बिस्तर मैं ही बिछाती हूं। "समय हो गया है। क्या आपका बिस्तर बिछा दूं?" कहती हुई मैं अपने कमरे में लपेटकर रखे हुए उनके 'बेड' को उठा लाने के लिए जा रही हूं।

"हां ! समय तो हो गया है !" वे भी कह रहे हैं। मैं उनका बिस्तर उठा लाती हूं और 'धम' से ला रखती हूं। झाड़ती हूं। मामा का बिस्तर तैयार ! मेरा कर्तव्य पूरा हुआ। कमरे के भीतर जाकर किवाड़ बंद कर लेना है। उसके बाद सवेरा होने तक चिंता नहीं है। मामा कुछ नहीं बोल रहे हैं – अखाड़े से पीछे हट रहे हैं। लग रहा है, बड़ी भारी छलांग भरनेवाले हैं !

मामा के बिस्तर से एक तिलचट्टा निकलकर भाग रहा है। बिस्तर बंद रखे आठ महीने हो गये न ! तिलचट्टा देखते ही मैं घिनौने भाव से खड़ी रह गयी। उसी समय मामा आराम-कुर्सी से उठकर बिस्तर के पास आते हैं।

"बैठ जाओ।" मुझे हाथ से संकेत करते हैं और वे पालथी मारकर बिस्तर पर बैठ जाते हैं। क्षण भर आंखें बंद किये ध्यान करते हैं। "शंभो ! महादेवा !" बोल उठते हैं। दीवार से पीठ टिकाकर बैठ जाते हैं। बाएं घुटने को ऊपर उठा लिया है। घुटने पर हाथ फेर रहे हैं, जैसे तेल लगा रहे हों।

"जरा दबाओ।" कहकर पैर मेरी तरफ फैला देते हैं। मैं धरती पर, पास बैठी उनके पैर दबाती हूं। हर बार दबाते समय 'आह ! आह !' कहकर आश्वासन पाते हैं।

मां रसोईघर के भीतर लेट गयी है। लेकिन वह सोई नहीं है। नहीं सोयेगी। वह प्रतीक्षा कर रही है कि मामा अभी बहस शुरू करेंगे।

'ओह ! आह !' एक तरह से बंद हुई। मामा भौंहें हाथ से मलते हुए आह भरते हैं। आंखें खोलकर मेरी तरफ देखते हैं। कुछ याद करके हंस पड़ते हैं। मुझे भी हंसी आती है। लेकिन मैं नहीं हंसती।

"हां ! तुम जो जो करना चाहती हो, वह सब करती हुई मेरा सिर झुका रही हो – मैंने सुना। क्या ऐसा है ही? बात क्या है?" मामा बड़े साधारण ढंग और अपनेपन से पूछते हैं। उनके प्रश्न को समझ लेने में ही मुझे एक मिनट लग जाता है। उसे समझकर जवाब दूं – इससे पहले वह स्वयं बोलते हैं।

"तुम क्या कोई छोटी बच्ची हो ! तुम तो अपनी हैसियत से, चाहे कुछ भी कर सकती हो। तुम्हें कौन रोक सकता है ? धर्म, न्याय, अनुशासन, औचित्य आदि की बात की जाये तो क्या मान लोगी तुम ? इसलिए मैं कह रहा हूं। 'उन सब की मुझे कोई परवाह नहीं है।' यह कहती हुई अगर तुम स्वच्छंदता बरतना चाहो और फिर वैसा ही करो तो तुम्हारा कौन क्या कर सकता है? उन दिनों गणेश ने तुम्हें घर से बाहर कर दिया था। अब क्या कनकम तुम्हें घर से बाहर कर सकती है? अगर तुम्हारी ये बातें उससे सही नहीं जाती हैं तो उसे स्वयं घर छोड़कर कहीं भाग जाना होगा। अपने मन को जो ठीक लगे वही करो। मुझे बीच में क्यों घसीटती हो? जाने कैसे तुमने कहा था कि कभी मेरे कहने पर ही तुम 'उस आदमी' को ढूंढ़कर पकड़ लाई हो। क्या मैंने कभी ऐसा कहा था? तुमसे मैंने क्या कहा था? अगर उसे ढूंढ़ने जाओगी तो वह तुम पर भरोसा नहीं करेगा, तुम्हारे बारे में उसके मन में ऊंचे विचार नहीं होंगे – इस प्रकार मैंने तो समस्या की उलझन को ही स्पष्ट किया था ! क्या मैंने तुम से यह कहा था कि तुम उसे ढूंढ़ लाओ और ऐसा नाटक करो?" मामा जी पूछ रहे हैं और मानो डरा रहे हों। हाथ के पंखे को आगे बढ़ा रहे हैं। मैं भी छोटी बच्ची के समान सिर झुकाए जवाब देती हूं, "उस दिन आप ही मां से कह रहे थे, अगर यह होशियार हो तो उसे ढूंढ़कर..."

"वाह ! खूब है बेटी ! बहुत खूब !" मामा बीच में ही टोककर कहने लगते हैं। मैं चुप हो जाती हूं। वे कहते हैं, "मैंने तुमसे क्या कहा था? तुम्हारी मां मुझसे कुछ बात कर रही थी। मैंने उसे कुछ बताया। उसे छिपकर तुमने सुन लिया और कहती हो कि अब तुम जो कुछ कर

रही हो, उस सबका वही कारण है। क्या यह कहने में होशियारी प्रकट कर रही हो? लेकिन और लोग क्या कहते हैं — पता है? तुम किसी के संग घूम रही हो। तुम कैसे सिद्ध कर सकोगी कि यह वही है? दूसरों को कैसे भरोसा होगा? अरी बेटी ! बेकार ही क्यों बदनाम हुई जा रही हो? यह कैसा ग्रह-प्रभाव है?''...पंखे से माथा पीट लेते हैं।

मैं कुछ क्षण चुप रहती हूं। वे भी चुप हैं। कहीं रेडियो पर राष्ट्रीय गीत सुनाई पड़ता है। उसके समाप्त होने तक चुप बैठी हूं। रेडियो की आवाज बंद होते ही झट पूछती हूं, "कौन हैं वे दूसरे लोग?"

"दूसरे लोग कहने से मेरा मतलब राह चलते लोगों से थोड़े ही है !" कहकर वे सिर उठाकर मुझे देखते हैं। फिर कुछ रहस्य बताने के अंदाज में कान में कहते हैं, "तुम्हारी मां ही विश्वास नहीं करती कि यह वही है," कहकर आंख झपकाते हैं। मेरा सारा बदन संकोच के मारे सिकुड़ जाता है। मन में हुआ कि इनसे पूछूं—क्या आप विश्वास करते हैं? किसलिए पूछना है ? वे न तो वैसा विश्वास करते हैं, न उसके बारे में कुछ चिंता करते हैं।

"तुम्हारी मां ने चार पन्नों की एक चिट्ठी लिखी थी। उसे बड़ा अपमान अनुभव हो रहा है। मन को कष्ट हो रहा है। लिखा था कि 'आप आकर कोई उपाय कीजिए'। सवेरे वह पत्र तुम्हें दूंगा। तुम्हीं पढ़कर देख लेना। तुम्हारी मां की हालत बड़ी दयनीय है।" यह कहते हुए मेरा हाथ पकड़कर उंगलियां चटकाने लगते हैं। मुझसे सटकर बैठ जाते हैं। उनका मेरी तरफ देखना ऐसा है जैसे मेरे सारे वदन को चर रहे हों। मुझे साफ मालूम हो रहा है कि उनके मन में कितनी गंदी बातें विचर रही हैं। वे हंसते हुए कहते हैं, "तुम बहुत वदल गयी हो। बदन मोटा हो गया है।'' कहकर हाथ मरोड़ते हैं। वे क्या सोचकर यह कह रहे हैं — मेरी समझ में आ गया। वड़े रहस्यपूर्ण ढंग से अंग्रेजी में पूछते हैं, "प्रिकाशंस ले रही हो न?"

"प्रिकाशंस अगेंस्ट व्हाट?"

"कंसेप्शन।" कहकर फिर आंख मारते हैं। मेरे तन-बदन में आग लग जाती है। बाहर जाकर खंखारकर थूकने को मन होता है। थूक निगलकर वैठी रहती हूं। जांघ पर चिकोटी काटते हैं। दर्द होता है।

"नो।" कहती हूं। इस 'ना' का अर्थ उन्हें समझ में नहीं आया शायद। यह जो चुटकी काट रहे हैं — इसे रोकने के लिए कह रही हूं, या पेट में बच्चा न आये — इसे रोकने के लिए प्रिकाशंस नहीं लेने की बात कह रही हूं —स्पष्ट न होने से उलझन में पड़ जाते हैं। मैं भी उन्हें उलझन में ही रखने के लिए चुप हूं।

"किसी मुसीबत में मत पड़ जाना।" वे चेतावनी देते हैं। मैं उसका भी कोई जवाब न देकर उनके हाथ में फंसे रहने के अपमान में वैसी ही स्तब्ध रहती हूं। यह पहली वार है कि मैं उनका हाथ हटा देती हूं, ''मुझे नींद आ रही है। आप भी सो जायें, समय हो गया है।" कहकर उठती हूं। मामा कुछ समझ लेते हैं।

"थोड़ा जल लाकर दे जाओ न।" कहकर उठ बैठते हैं। मैं एक बर्तन में जल और गिलास लाकर झुककर उनके सामने रख देती हूं। ऊपर होने को होती हूं, तभी मेरा हाथ पकड़कर कहते हैं –"आई वुड लाइक टु मीट द जेंटलमैन।"

मामा को इन से मिलने की सूझ रही है–इस पर भी मुझे आश्चर्य होता है। लेकिन ये 'जेंटलमैन' हैं। हंसी आती है। यही मामा की प्रकृति है। किसी के साथ घनिष्ठ संपर्क में आयें, तो भी तर्क की दृष्टि से ही मामा उन्हें अपनाते हैं। सब ने अब मुझे बाहर कर दिया, तो भी ऐसे लाजिकल अप्रोच से ही मुझे सहारा देकर मेरी सहायता की। यह कोई मामली गुण नहीं है। मेरी इतनी बदनामी हो चुकी है, फिर भी मैं जिस पुरुष के संपर्क में हूं, उसे ये सज्जन कह रहे हैं। औरों की तरह नाक-भौंह नहीं सिकोड़ रहे हैं। स्वयं उनसे मिलने की बात कर रहे मामा के इन गुणों के कारण ही मैं अब भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखती हूं।

"सवेरे आयेंगे।" कहती हूं।

'ओ, हां। उसने लिखा था कि प्रतिदिन आते हैं।" बुदबुदाते हैं। मैं हाल की बड़ी बत्ती बुझाकर, नीली बत्ती जला देती हूं और अपने कमरे में जाकर अच्छी तरह किवाड़ बंद कर लेती हूं।

नींद नहीं आ रही है। फिर भी बत्ती बुझाकर लेट जाती हूं। मामा से कहकर आयी हूं कि नींद आ रही है। अब कमरे के भीतर बत्ती नहीं जलाये रखनी है।

अंधेरे में चित लेटकर टकटकी लगाये हूं। अंधेरे में आंखों के सामने चिंगारी सी, कुछ पिरोये हुए धागे से संतरी रंग के कुछ ऊपर-नीचे उड़ते से, टूटते से लग रहे हैं। कुछ भ्रम सा उत्पन्न हो रहा है। अंधकार जमा होकर मुझे दबा रहा है, दम घुटता सा जा रहा है। बत्ती जलाने पर कुछ आराम मिलेगा फिर भी बत्ती नहीं जलानी चाहिए, इस विचार से चुप हूं। खिड़की तो खोल सकती हूं।

उठकर खिड़की खोल देती हूं और खिड़की के पास उसी तरह खड़ी रहती हूं। गली और सामने का घर चित्रांकित जैसे दिखाई पड़ रहे हैं।

आज शाम को उनसे जो बातें कर रही थी उन्हें याद करती हूं। कितना भी नीच व्यक्ति क्यों न हो, बहुत निकट होकर देखने पर यह पता लग जायेगा कि उसे नीच समझना कितना गलत है !

आज ही ये अपने बारे में बहुत कह रहे थे। इन्होंने एक बात कही थी – 'अपने किसी भी कार्य का दायित्व मैं नहीं ले सकता।' यह बड़ी खतरनाक स्थिति है। इनके परिचित व्यक्तियों के लिए ही नहीं, किंतु वे स्वयं अपने लिए भी आफत पैदा कर लेंगे !

17

आज शाम उस रेस्तरां में, फिर समुद्र के किनारे कार में बैठे बैठे इन्होंने मुझसे अपने ही बारे में जो बातें बतायी थीं, उन्हें अब याद करके देखती हूं। जब कभी ये अपने बारे में बोलते हैं, तब अपने पिता के बारे में ही अधिक कहते हैं। लगता है कि इन्हें अपने पिता से बड़ा स्नेह था। तब मैं इनके मुख को गौर से देखती हूं। इनकी दोनों आंखें चमक उठती हैं। कदाचित् इनके पिता का चित्र इनके सामने जीवित खड़ा रहता है। अपने परिवेश को भी भूल जाते हैं। तब ये कहते हैं, "मां का तो चेहरा भी मुझे याद नहीं है। मेरी मां के मर जाने के बाद पिता ने दूसरी शादी नहीं की। कोई उनकी शादी की बात छेड़ता तो कहते, 'अरे, अब मेरे विवाह की क्या आवश्यकता है? राजा के समान एक बेटा देकर चल बसी। इतना ही था मेरे भाग्य में, बस। अब मेरे जीवन का एक ही लक्ष्य है – उसे पालकर बड़ा करना है। और किसी से शादी कर लूं और उसके दो बच्चे हो जायें, तो उनमें और इसमें तुम्हारा मेरा कहकर झगड़ा शुरू हो जायेगा – यह सारी उलझनें क्यों पैदा करूं?' अब वे बातें मेरी समझ में आ रही हैं। मुझसे उन्हें इतना प्रेम था कि मेरे लिए उन्होंने दूसरी शादी तक नहीं की। वैसे वे कोई बहुत पढ़े-लिखे भी न थे। लेकिन उनका बड़ा अच्छा बिजनेस माइंड था। शायद बच्चों के लिए इतना प्रेम भी उचित नहीं है। एक बात कहूं। मैं इस प्रकार जो बिगड़ गया हूं, इसका कारण वे ही थे। उन्होंने मुझ पर जितना स्नेह रखा, अपने अंतिम दिनों में मेरे कारण उन्होंने उतना ही कष्ट भी भोगा। ओह ! वे कैसे मुझे कोसते थे ! एक दम शाप सा देते थे। फिर वे अपने आप रोने लगते थे।"

रूमाल से जैसे माथा पोंछ लेते हैं, वैसे ही आंखें पोंछ लेते हैं। मैं सोचने लगती – मैंने ऐसा क्या पूछा था? किसलिए ये ऐसी बातें कह रहे हैं?

हां, थोड़ी देर पहले इन्होंने कहा न –'मैं जो भी काम करता हूं उसकी जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है, मुझमें उतना बल नहीं है ....'

आज मैंने इनसे इतना ही कहा था –"आपके इस विचार से अहित ही होगा। अगर आप अपने कार्यों की जिम्मेदारी ही नहीं लेते हैं तो उससे और लोगों को ही नहीं, बल्कि स्वयं आपको भी कष्ट भोगना पड़ेगा। कितनी गैरजिम्मेदारी के साथ आप ऐसी बातें कर रहे हैं।" मेरी बातें सुनकर मेरी ओर इस तरह देखते हैं जैसे कोई अपराधी बच्चा हो। उन्हें और भी स्पष्ट समझाते हुए मैं अंग्रेजी में बोलती हूं, "आप एक वयस्क व्यक्ति हैं। बड़े और बच्चे में

यही अंतर है। बच्चा कोई गलती करता है तो उसकी जिम्मेदारी उस पर नहीं होती। बच्चे के मां-बाप ही उस गलती के लिए जिम्मेदार होते हैं। लेकिन बड़े लोगों के साथ ऐसा नहीं होता। मानो कोई छोटा बच्चा अपनी मां से कह रहा हो, इस प्रकार आप कह रहे हैं कि अपने कार्यों की जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है।''

अंधेरा छा गया है। हमारे चारों तरफ कतारों में कारें खड़ी हैं। उस गार्डन में रखे अलंकार दीप जहां-तहां मद्धिम प्रकाश देते हुए चमक रहे हैं। उन कारों पर भी दीपों की रोशनी पड़ती है और कारें चमक उठती हैं। कभी कोई कार अपनी हेडलाइट की रोशनी से देखनेवालों की आंखें चौंधिया देती है और घूम जाती है। उस समय, ये उस कार वाले को गाली देते हैं। इनके मुंह से अपशब्द बड़ी आसानी से निकलते हैं ! क्या बोल रहे हैं – इसका ख्याल नहीं करते। मुझे डर लगता है कि कहीं किसी के कान में न पड़ जायें और वह लड़ने न आ जाये। कभी इनका गाली देना सुनकर मैं भौंह सिकोड़ती हूं, तो मुझे देखकर ये बड़ी विनम्रता से कह देते हैं, "माफ करना।'' फिर थोड़ी देर चुपचाप सिगरेट फूंकते बैठे रहते हैं और कुछ सोचते हैं। वह विचार बाद में वैसे ही लंबी उसांस बनकर बात के रूप में परिवर्तित होता है। एश ट्रे में राख झाड़ते हुए, मेरी तरफ न देखते हुए ही अंग्रेजी में कहते हैं, "मैं बड़ा अभागा हूं। बड़ा घर, कार और दूसरे आडंबर हों तो काफी है क्या? इसी कारण, मैं अभागा होकर रह गया हूं। कहीं तुम्हारे जैसे परिवार में मेरा जन्म हुआ होता तो मैं एक अच्छा आदमी बन गया होता। उन दिनों स्कूल की उम्र में ही मेरे पिता मुझे दस दस रुपये देने लगे। 'जितना पैसा चाहो, दूंगा, लेकिन चोरी मत करना। चोरी न करने का वचन दो' – कहकर मुझसे शपथ उठवा ली ! गंगा ! क्या तुम जानती हो?" पूछते हुए मेरी तरफ देखते हैं। मैं भी अंधेरे में उनकी ओर नजर गड़ाकर देखती हूं। उनकी आंखें चमक उठती हैं। पीछे से रोशनी पड़ रही है, इसलिए सिर और कनपटी के बाल नीले रंग में चमक रहे हैं।

"मैं अब भी चोरी करता हूं। कैसा दुर्भाग्य है ! मैंने पहले पहल चोरी की थी न ! उसी दिन अगर मेरे पिता ने चार थप्पड़ लगा दिये होते तो मैं सुधर गया होता। मुझे सुधारने के लिए ही सही, उन्हें मुझे पीटना चाहिए था। उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्हें मुझसे बहुत स्नेह था। बारह साल के लड़के को, कार से स्कूल आने-जाने वाले लड़के को, पाकेटमनी के लिए दस रुपये देते थे। क्या यह उचित था? आज के जमाने में भी पद्मा मेरी लड़की को पैसे देने से मना करती है। उन दिनों मैं अपने दोस्तों को इकट्ठा कर होटल ले जाता। इससे मेरा बड़ा मान होता था। किसी तरह प्रतिदिन दस रुपये खर्च हो जाते। कभी कभी तो वह भी नहीं होता। सोचो तो सही। पच्चीस साल पहले दस रुपये का कितना मूल्य था। तुम्हारे जैसे परिवार की एक दिन की आय दस रुपये नहीं रही होगी। ठीक कह रहा हूं न?'' कहते हुए मेरे मुंह के सामने हाथ फैलाते हैं।

"हां ! आप ठीक कह रहे हैं।" मैं जवाब देती हूं। उस समय हमारे परिवार की क्या स्थिति थी – स्मरण करती हूं। पच्चीस वर्ष पहले तो पिताजी भी रहे होंगे। उनका वेतन अस्सी रुपये ही तो था न? उसके बाद गणेश नौकरी पर गया, तभी भी उसे सत्तर ही रुपये मिलते थे। उस मकान का किराया था सत्रह रुपये। उस आमदनी में परिवार चलाने के लिए मां ने कितना कष्ट उठाया होगा? बेचारी...!

ये आगे कहते हैं, "मेरे पिताजी सोचते थे कि उस दस रुपये से मैं कुछ बचा लेता हूं। मेरी इस कल्पित होशियारी पर वे गर्व करते। 'तू पैसा बचा लेता है न?' मुनीम से कहकर फूले न समाते। मुझसे बार बार पूछते कि 'ठीक है न !' मैं सिर हिला देता। फिर उस बात को रखने के लिए चोरी करता। सौ-दो सौ रुपये का कोई समान खरीदा जाता तो मेरे पिता जी यह सोचकर कि मैंने पैसे बचाकर वह खरीदा, खुश होते। बड़े लोग कभी बच्चों को जीवन के योग्य न बनाकर इसी प्रकार बिगाड़ देते हैं। बच्चे के मांगने पर पैसा देते रहो, बस। खूब उदारता के साथ उठा उठाकर दो। ज्यों ज्यों खर्च करता जाये. देते रहो। बाद में अकस्मात् पैसा देना बंद कर दो। तब उसकी दशा क्या होती है – देख लेना। शत्रु को मिटाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। मेरे पिता ने मुझे इस ढंग से विगाड़ डाला।"

इन्होंने इतना जाना-समझा है, फिर भी इस प्रकार का आचरण क्यों करते हैं? मेरी समझ में नहीं आता। मानो मेरा सोचना उन्हें मालूम हो गया हो, वे जवाब देते हैं, "ये विचार...यह ज्ञान अभी उत्पन्न हुआ है। वह भी तुम्हारे जैसे सज्जन लोगों के साथ रहने से ऐसा हो गया है। अब कुछ दिनों से तुम्हारे बारे में सोच सोचकर मैं दुखी हो रहा हूं। तुम कहती हो कि मैं अपनी जिम्मेदारी को समझूं। हर काम की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लूं। दूसरों के बल पर न रहूं। तुम्हारे प्रति मैंने जो आचरण किया, उसकी जिम्मेदारी कैसे ले सकता हूं? उसका कोई उपाय नहीं। इसलिए मैं मान लेता हूं कि किसी काम की जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है। मैं तटस्थ रह जाता हूं। 'जिम्मेदारी नहीं है'...कहकर हम हट सकते हैं। लेकिन अब सोच रहा हूं कि वह पाप क्या हमें छोड़ देगा?...लेकिन एक बात है। वह पाप जानबूझकर नहीं किया गया था। मैंने उस समय यही सोचा था कि मेरी तरह तुम भी उसे एक खेल समझ लोगी। मेरा वह विचार कितना गलत था! यह मैं उसी दिन समझ गया था। लेकिन, ओह ! उस घटना को हुए बारह वर्ष बीत गये। तुम जैसे अनाथ बनकर रह गयी हो ! यह सब मेरे कारण ही हुआ। अब मैं तुम्हारी क्या सहायता – मेरा मतलब है – क्या प्रायश्चित कर सकता हूं? मुझे कुछ करना ही चाहिए। हम दोनों के बारे में लोग गलत ढंग से सोच रहे हैं। हमें सावधान होना चाहिए। लोगों को कोई अवसर नहीं देना चाहिए। लेकिन तुम क्यों जानबूझकर ऐसा कर रही हो, मेरी समझ में नहीं आता। यदि तुम वास्तव में चाहती हो कि हम दोनों का पति-पत्नी जैसा संबंध हो तो मैं समझ सकता हूं। लेकिन मुझे मालूम है कि तुम्हारी वैसी कोई इच्छा नहीं है। फिर क्यों ऐसी बदनामी लेती हो ? तुम कहती हो...मंजु कहीं बुरा न समझ ले...अभी तो नहीं

समझती होगी। कल वह भी समझेगी। मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। मेरी किसी बात की जिम्मेदारी नहीं है न ! तुम्हारे दृष्टिकोण से सोच रहा हूं। मैं तुम्हें समझ नहीं पा रहा हूं।"

हमारे चारों ओर की कारें एक एक करके चली गयीं। दूर एक-दो खड़ी हैं। वह खाकी वर्दी वाला लड़का आता है। "क्या ट्रे उठा लूं?" पूछता है। ये 'हां' कह देते हैं। वह ट्रे उठाकर ले जाता है। मुझे लगता है कि बहुत देर से हम यहां पर हैं। मैं कहती हूं, "और कहीं चलें? यहां बैठकर बोर हो रही हूं।" ये मेरी तरफ आश्चर्य के साथ देखते हैं।

18

"क्या समुद्र के किनारे चलें?" ये पूछते हैं।

"हां।"

कार चल पड़ती है। कार चलाते हुए मेरी तरफ देखकर कहते हैं – "आज तुम्हें क्या हो गया है ? मैं तुम्हें समुद्र के किनारे या होटल चलने को कहता तो भी तुम नहीं चलती थीं। आज तुम स्वयं कह रही हो कि यहां चलें, वहां चलें। बात क्या है?"...ये हंस रहे हैं। इस प्रकार हंसते समय ये बच्चे जैसे लगते हैं। मंजु भी हमेशा ऐसे ही हंसती है। बाप और बेटी में केवल हंसने में ही समानता है।

"ओ! बात अभी बाकी है? मैंने सोचा था कि बात खत्म हो गयी है। और कुछ उपदेश या परामर्श?"

"ओ, नो, वैसा कुछ नहीं है।"...मैं कहती हूं। दोनों मौन हो जाते हैं। कार चल रही है। मैं सोच लेती हूं कि इनके साथ और क्या बात करनी है। क्या मुझे ईर्ष्या हो रही है कि रोज इस समय ये और कहीं जाते हैं, खाते-पीते हुए खुशी मनाते रहते हैं? इससे मुझे ईर्ष्या क्यों हो? मैं सिर्फ इसलिए इनके साथ संपर्क रखे हुए हूं कि मैं...इनकी रखैल होने का नाम पा जाऊं? कहीं भी जाते हों, मुझे उससे क्या है? अगर मेरे बारे में मंजु भी वैसा ही समझ लेती है तो मेरा क्या बिगड़ता है? मैं इस प्रकार क्यों झूठी भावुकता में फंसी हूं ? इस-उस संबंध में – पति-पत्नी जैसे संबंध में बुरा क्या है? मेरे सहमत होने पर ये 'न' नहीं कहेंगे। हाय रे ! अब क्या यही प्रश्न बाकी है? मामा मुझसे जैसी 'लिबर्टी' लेते रहते हैं, वैसा भी ये नहीं करते। ये इतने चरित्रवान बन गये हैं? वैसे औरों के साथ ये इतने ही चरित्रवान नहीं दिखाई पड़ते। एक रात भी ये घर पर नहीं रहते। मेरे साथ ही क्यों इनका ऐसा संयम हो?

मैं किसलिए ऐसा सोच रही हूं ? मैं क्या हूं...मुझी को स्पष्ट नहीं हो रहा है। क्या इनसे मुझे प्रेम होने लगा है? छिः...! छिः ! कैसी गलत बात है। इन्हें मुझसे प्रेम हो जाये...क्या इसलिए मैं तरस रही हूं? वैसा हो जाये तो क्या उस प्रेम को मैं स्वीकार करूंगी? इन्हें मुझसे, या मुझे इनसे प्रेम भी हो जाये तो क्या वह ठीक होगा? लेकिन वैसा प्रेम इनसे मुझे नहीं होगा, इन्हें भी मुझसे नहीं होगा? इनका वैसे ही मन हुआ होगा। वैसा मन होने के कारण ही तो ये मुझसे मिलने आये। मैंने ही दिशा बदल दी है। इसलिए वैसा प्रेम वगैरह नहीं होगा। अंग्रेजी की एक कहावत है – 'व्हेन दि मिल्क इज सो चीप, व्हाइ शुड आई बाइ ए काऊ?' वह इन पर लागू

होती है। मुझे न इनसे प्रेम होगा, और न किसी दूसरे से। ऐसा ही लगता है। लगता है कि अगर कोई जबरदस्ती करे, मुझसे बलात्कार करे तो मैं किसी के भी वश में हो जाऊंगी। अगर कोई वैसा कर भी दे तो अच्छा होगा शायद। ऐसा भी लगता है कि इनके अतिरिक्त और कोई मुझसे जबरदस्ती न करे तो अच्छा होगा। अगर कोई जबरदस्ती हो तो वह इन्हीं के द्वारा हो, यही मेरी कामना है। इसीलिए शायद मैं इनके निकट आयी। दूसरे पुरुषों की जबरदस्ती से अपने को बचाने के लिए नहीं, बल्कि अपनी ही बलहीनता से बचने के लिए मैं इनके संपर्क में आयी हूं शायद। अगर मैं भी स्वच्छंद हो जाऊं – यह कह दूं कि किसी काम की जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है, और तटस्थ रह जाऊं तो? ओह ! वह बड़ी खतरनाक स्थिति होगी ! सामने चंद्रबिंब बड़ा दिखाई पड़ रहा है। यहां से देखने पर ऐसा लगता है मानो धरती से एक हाथ ऊंचा उठा है। समुद्र का जल उसकी रोशनी में छिप सा जाता है। कल या परसों यहां आये होते हो चंद्रमा पूरा दिखाई देता। मुझे मालूम ही नहीं है कि इन्होंने कब यहां कार लाकर खड़ी कर दी है। मैं वैसे ही कुछ सोच में पड़ी रही। मन में हजारों विचार उठते हैं। हम जो चाहते हैं वे विचार भी आते हैं; जो नहीं चाहते वे विचार भी आते हैं। विचारों पर भी कोई रोक होती है? ये सब व्यवस्थाहीन विचार ही तो हैं।

"कुछ बात करना चाहती थीं न, बोलो?"...कहकर दरवाजा खोल देते हैं और एक पैर कार के दरवाजे पर रखे पीठ टिकाकर सिगरेट फूंकने लगते हैं। सिगरेट के धुएं से महक उठ रही है। किसी दिन मैं भी एक सिगरेट पी लूं तो कैसा रहे? हेड क्लर्क मिसेज मैनुएल है न, वह सिगरेट पीती है। मैंने देखा है। उसका मुंह देखने से ही पता चल जाता है। सिगरेट फूंकना काफी 'मैनली' लगता है। मैं कहां फूंकूंगी ? वैसे ही सोच लेती हूं। क्या नहीं सोचना चाहिए? मेरे और उनके बीच में पड़े सिगरेट के पैकेट को उठाकर सूंघती हूं। किसी एक फल की गंध है !

"यह गंध तुम्हें अच्छी लगती है क्या?" वे पूछते हैं।

"इसमें अच्छा लगने का क्या है? कोई उधर फूंकता है तो इधर मुझे मितली सी होने लगती है। लेकिन यह सिगरेट वैसा नहीं है।" मैंने हिम्मत करके झूठ-मूठ कह दिया।

कुछ बोलना है – इसलिए मिसेज मैनुएल के सिगरेट पीने के बारे में इनसे कहती हूं। उसमें इन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। सिगरेट पीने वाली स्त्रियां ही क्या, साथ में बैठकर ब्रांडी और व्हिस्की पीने वाली कितनी औरतों से ये रोज मिलते रहते हैं ! मेरी बात पर ध्यान न देकर चांद की ओर देख रहे हैं।

मैं पूछती हूं, "कुछ बात करने के लिए आपको यहां ले आयी, कोई खास बात न करके क्या मैं आपको 'बोर' कर रही हूं?"

"नहीं, नहीं।" कहकर ये मेरी ओर देखते हैं," बोर नहीं, वास्तव में मैं तुम्हें समझ नहीं पा रहा हूं। पहले यह बताओ कि उस दिन तुमने मुझे क्यों फोन किया था? किसलिए मुझे

बुलाया था? मेरे नाम के साथ अपना नाम जोड़कर क्यों बदनामी का शिकार बन रही हो? अपने फ्यूचर के बारे में तुम क्या सोच रही हो?...यही सोच रहा हूं। किस प्रकार मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूं?" यह कहकर ये बेचैन हो रहे हैं।

इनके प्रश्नों का क्या उत्तर दूं – कुछ नहीं सूझ रहा है। लेकिन ऐसा लगता है, जैसे किसी योजनाबद्ध तरीके से यह सारा किया जा रहा है। एक दिन, किसी चंचलता के कारण ये मुझे कार में बिठाकर ले गये। उसके क्या परिणाम होंगे – इसका विचार किये बिना ही ले गये थे। क्या उसी प्रकार मैं भी किसी चंचलता के कारण इन्हें घसीट लायी हूं? मैं एक सत्य को बिना किसी विचार के इनसे कह डालती हूं, जैसे किसी नशे में हूं – बरबस यों कह देती हूं, "मुझे कुछ दिनों से डर लग रहा है कि कोई मुझे रेप न कर दे। वैसे कोई जबरदस्ती करे तो कहीं मैं उसके वश में न हो जाऊं – यही डर है। इसी डर से मैं आपके पास आकर छिप गयी हूं।" यह कहते ही, यह विचार करते ही कि शायद मुझे यह सब नहीं कहना चाहिए था, ओंठ दबाकर सिर नीचा कर लेती हूं। सारा बदन थरथराने लगा है।

"डोंट बी सिली !" ये मुझे आश्वासन दे रहे हैं, "तुम क्या वैसी बच्ची हो? अब तुम एक आफिसर हो, पढ़ी-लिखी हो, समझदार हो। कोई तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता है – वह भी तुम्हारी मर्जी के खिलाफ ! अनावश्यक भय न बढ़ाओ !"

मैं रो पड़ती हूं। आंखों से आंसू बहने लगते हैं। मन का मैला जल। शायद मेरा मन मैला है। संभलकर गालों को पोंछ लेती हूं। पोंछती हुई कहती हूं, "एक बार वैसा हो गया, इसलिए मुझे स्वयं पर भरोसा नहीं रहा। अगर ऐसा ही होना मेरे भाग्य में है तो वह कोई और पुरुष न होकर आप ही हों – इसलिए मैंने स्वयं आपको ढूंढ़ लिया...।"

"बेकार की बातें मत करो।" वे दृढ़ता से कहते हैं। मैं उनकी ओर सिर उठाकर देखती हूं। "क्या तुम्हें मालूम है, मैं कोई ऐसा-वैसा व्यक्ति नहीं हूं ? जिस किसी के भी संग जाता रहता हूं। लेकिन एक बात है – किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध कभी उसे छूता भी नहीं हूं। वैसी गलती मैंने सिर्फ तुम्हारे साथ की है, वह भी इस गलत धारणा के कारण कि तुम्हें वह सब मंजूर था। तुम सोचकर देखो। उस दिन भी क्या मैंने तुम्हें मजबूर किया था ? अब मैं उसे न्याय-संगत नहीं कह रहा हूं। उस अन्याय के घटित होने का कारण एक गलत धारणा मात्र थी – यही कह रहा हूं...।" जैसे बड़ी देर से अपने मन में कुछ सोच रहे थे, वही अब अंग्रेजी में बोल रहे हैं।

"उस समय मैं काफी बिगड़ चुका था। लेकिन मैच्योर नहीं हुआ था। मेरे अनुभव भी ऐसे थे। मेरे बुलाने पर मना करने वाली कोई नहीं थी। मेरी परिस्थितियां ही वैसी थीं। तुम जानती ही हो कि मैं...।" यह कहते हुए उनका गला भर आता है। गला साफ करके कहते हैं, "मैं अपने बारहवें वर्ष में ही गिर चुका था।"

मैं चौंक पड़ी। यह सब कुछ विस्तार से न कहने लगें – यह सोचकर मेरा बदन संकोच

के मारे सिकुड़ा जा रहा है। अच्छा हुआ। वह बात वहीं छोड़कर सिगरेट पीने लगे हैं। कुछ याद करके नाक-भौंह सिकोड़ रहे हैं। लग रहा है — इन्हें बड़ा घिनौनापन महसूस हो रहा है।

मैं क्यों इन्हें इन बातों में घसीट लायी? मैं मन ही मन झुंझलाती हूं। लेकिन यह झुंझलाहट झूठी है। एक प्रकार से मन के दूसरे कोने में सत्य चमक उठता है।

ये धुएं के साथ आह भरते हैं। अब देखने पर लगता है कि ये धुएं का ही श्वास ले रहे हैं — इस सीमा तक ये अधिक सिगरेट पीने लगे हैं।

"मैं मदरलेस चाइल्ड जो था, यही इन सबका कारण रहा होगा। मुझे एक दाई ने ही पाला था। जब कभी मैं मां की बात करता हूं तो मुझे उसी दाई की याद आती है। वह भी अभी दो साल पहले चल बसी। उसकी एक लड़की है। अब उसकी भी पचास से अधिक उम्र है। पोते-पोतियों के साथ कहीं रहती है। जैसे तुम डरती हो, वैसे ही मैं...मुझे उसने रेप किया था। बहुत छोटी उम्र में ही मैं बिगड़ गया। फिर भी मैंने किसी को बिगाड़ा नहीं। पैसा ! पैसा एक पिशाच है। वरना किस हाई स्कूल के लड़के को कालेज लेवल की गर्ल फ्रेंड्स मिलती होंगी? मेरी कार रुकवाकर लिफ्ट मांगने वाली लड़कियां भी कई थीं। आईसक्रीम और मैटिनी शो—यही बड़ी चीजें थीं। ऐसे रोमांस को ही जीवन का प्रमुख तत्व बनाकर मैं भटक रहा था। इसीलिए तुम्हारे बारे में भी मैंने वैसा सोचा ! लेकिन मैंने किसी को नहीं बिगाड़ा। अब भी मैं रातों में घर पर न रहकर शहर में बिचरता रहता हूं — किसलिए? मेरा स्पर्श भी पद्मा को अच्छा नहीं लगता है, तो क्या वह मेरे लिए 'कोई' हो गयी? वह मेरी पत्नी तो है ही। इसीलिए क्या मैं उसके साथ जबरदस्ती कर सकता हूं? मैं किसी को रेप नहीं कर सकता। नहीं।" कहकर ओंठ चबाते हैं।

इनकी बातें सुनकर मुझे बड़ा दुख हो रहा है। गर्दन की नसें दुख रही हैं। ऐसा महसूस हो रहा है कि रो दूं तो अच्छा होगा। लेकिन रोना नहीं आ रहा है।

मैं मन ही मन हंस देती हूं। उस हंसी का अर्थ हर्ष नहीं है।

मैं चाहूं तो भी दूसरी बार बिगड़ जाना मेरी तकदीर में नहीं है शायद। इनको मैं प्यार नहीं कर पा रही हूं, अपने को न चाहने वाली से ये जबरदस्ती करना नहीं चाहते। हम दोनों इतने घनिष्ठ हैं, यह भी कैसा सुविधापूर्ण झंझट है — मैं सोचती हूं और बिना खुशी की हंसी हंसती हूं।

"मुझसे किसी को प्यार नहीं किया जाता।"

"ऐसी बात है?" ये मेरी तरफ देख रहे हैं। फिर अंग्रेजी में ही बोलते हैं, "तुम समझ रही हो कि तुममें किसी को प्यार करने की योग्यता नहीं रह गयी है। इतना ही नहीं, तुम अपने बारे में यही बिचार करने लगी हो कि तुम सिर्फ जबरदस्ती से बिगाड़ने योग्य ही हो? तुम्हें एक बात समझ लेनी चाहिए। वह बलात्कार नहीं था। उस दिन कार में जो घटित हुआ, वह तुम्हारी स्वीकृति के साथ ही हुआ। अगले ही क्षण, मुझे पता चल गया कि तुम्हारी उसमें सहमति नहीं

थी। लेकिन उस सबसे पहले, उस के लिए तुम सहमत हो गयी थीं – यह झूठ नहीं है। हो सकता है कि अज्ञानतावश ही तुम सहमत हो गयी होगी। मैंने उसी वक्त समझ लिया था। लेकिन इस पर भी यह न समझना कि वह रेप था। तुमने वैसा सोच लिया था, इसीलिए अपनी मां से जाकर कह दिया था। सारी मुसीबत का कारण यही था। इस समय भी वैसी ही कल्पना करते हुए तुम दुखी मत होओ। तुम इतनी सारी बातें मुझसे कह रही हो। अगर मैं दूसरे प्रकार का बदमाश होता तो अब, इस तुम्हारी बलहीनता का लाभ उठाते हुए क्या अब भी मैं तुमसे मिसबिहेव नहीं कर सकता? इसका यह मतलब नहीं कि इस बलहीनता को छिपाए रखने की मैं तुम्हें सलाह दे रहा हूं। सिर्फ इतना कह रहा हूं कि इस बलहीनता को जड़ से उखाड़कर फेंक दो।" उन्होंने अंग्रेजी में जो कहा वह था, 'यू शुड एरेडिकेट दैट वीकनेस फ्राम यूअर माइंड।'

मैं मन में सोचती हूं – अरे बेवकूफ ! मैं बलहीनता को जो तुमसे कह रही हूं, यह इसलिए कि तुम लाभ उठा लो। क्या यह समझ में नहीं आ रहा है?

अकस्मात् हम पर लाइट फेंकती हुई एक कार आती है। मैं आंखें बंद कर लेती हूं। कार नजदीक आ गयी, मैं उसे देखती हूं। 'एल्' बोर्ड लगा है। एक महिला, जिसने सिर पर चमेली का गजरा पहन रखा है, कार चला रही है। बगल में कोई मर्द बैठा है। जैसे कोई आटे की चक्की हो – यों आवाज करती हुई हमारी कार के पास आकर वह कार झट से रुक गयी।

वह मर्द जैसे पीटने जा रहा हो, इस तरह हाथ उठाकर, दांत किटकिटाकर जोर से कहता है, "यू फूल ! जब गियर बदलो तो क्लच को पैर से दबाओ – कितनी बार कहा है।" लगता है, उसके सिर पर चपत लगा दी है। इधर कार में हम बैठे हैं, इस पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। उस महिला के चेहरे का रंग उड़ गया था – उसे देखकर बड़ी सहानुभूति हो रही है। वह इधर मेरी तरफ देख रही है। मैंने जैसे उन्हें देखा ही नहीं, यों मुंह फेर लेती हूं। मुझे डर लग रहा है, कहीं ये हंस न दें। महिला दुबारा कार स्टार्ट करके आगे बढ़ती है। ये उसी की ओर देख रहे हैं। फिर मुझसे बोलते हैं, "तुम ड्राइविंग सीख लो। मैं सिखाऊंगा। हमारा सुभाष है न...उसके पैर नीचे तक नहीं पहुंचते है। इस बड़ी कार को चलाना चाहता है वह। पद्मा खूब ड्राइव करती है। मंजु को सिखाने की इच्छा है।" बड़े उत्साह के साथ ये कह रहे हैं।

पहले सवेरे-शाम मैं टहलने जाया करती थी। आजकल उसके लिए समय ही नहीं मिलता। मैं जो सोच रही हूं न, उसे ऊंची आवाज में बोल देती हूं –"तड़के ही उठकर समुद्र के किनारे आ जायें तो अच्छा होगा न? मंजु को भी साथ लाएं तो अच्छा होगा। उसे ड्राइविंग सिखा सकते हैं। समुद्र के किनारे की सड़क पर ऐसे ही वाकिंग पर जा सकते हैं।" आगे मैं हंसती हुई कहती हूं, "तड़के का समय कैसा होता है – क्या आपको इसका पता भी है?"

"व्हाट आर यू टाकिंग? अकसर उसी वक्त तो मैं घर लौटता हूं। मैं घर पर रहूं, तब भी उसी वक्त मैं जाग जाता हूं। मैं केवल नशे में ही सोता हूं। नशा टूटते ही मेरी नींद भी

खुल जाती है।"

अचानक इनके स्वास्थ्य की चिंता कर मैं दुखी होती हूं। ये अपनी कितनी ही व्यथाओं को मन ही मन छिपाए हुए हैं। प्राकृतिक नींद भी इनके लिए कृत्रिम हो गयी है। हर रोज दिन भर पीते रहते हैं। न जाने इसके कारण इनके शरीर में क्या क्या विकृतियां उत्पन्न हो गयी होंगी ! कहीं ऐसा न हो कि अचानक किसी दिन किसी कारण से बिस्तर पकड़ लें।

"क्या आपने कभी अपने डाक्टर से कंसल्ट किया?" मैं पूछती हूं।

"डाक्टर कहता है कि पीना बंद करो। लेकिन मुझे पीना बंद करके जीने की अपेक्षा पीते हुए ही प्राण छोड़ना अच्छा लगता है। इट इज आल राइट।" बड़ी उपेक्षा के साथ धुआं छोड़ते हैं।

हर रोज तड़के ही उठकर समुद्र के किनारे आना है — यह हमने निर्णय कर लिया। मैं चलूंगी तो मंजु भी चलेगी। ये कहते हैं कि यहां, जहां हम इस समय हैं, इसी जगह मंजु को ड्राइविंग सिखाएंगे। मैं गांधी प्रतिमा से होकर आयरन ब्रिज तक टहलकर वापस आऊंगी। फिर सब मिलकर ड्राइव-इन होटल में जाकर काफी पिएंगे। आठ बजे ये मुझे घर पर छोड़कर जायेंगे। दस बजे दफ्तर जाते समय मुझे ले चलेंगे। सवेरे साढ़े पांच बजे मुझे तैयार रहना है। यह इनकी योजना है।

अब दो बज चुके हैं। सोना ही चाहिए — यह सोचकर चादर खींचकर ओढ़ लेती हूं। बड़ी देर से आंखें बंद किए पड़ी हूं। फिर पता नहीं कब सो गयी। क्या मैं सचमुच सोयी थी? या वैसे ही लेटी हुई थी? बाहर हार्न की आवाज सुनाई देती है। उठकर लाइट जला देती हूं। शीशे में अपना मुंह देखती हूं। लगता नहीं कि मैं सोई होऊं। खिड़की से दिखाई दे रहा है कि कार में मंजु भी बैठी है। पहली बार हमारे घर आयी है। भीतर बुलाऊं क्या? खिड़की से देखती हूं। वह मुझे देखकर गुडमार्निंग कहती है।

"अभी जागीं नहीं क्या? पिताजी कह रहे थे कि आपने साढ़े पांच बजे तक तैयार...। मगर अब तो छह बज रहे हैं।" मंजु वहीं से कह रही है।

मैं जल्दी जल्दी सिर के बाल हाथ से संवारती हुई पैर में चप्पल पहने किवाड़ खोल देती हूं।

मामा बिस्तर पर आंखें बंद किए बैठे हैं। जाप कर रहे हैं। यही समय है। इनकी आंख बचाकर निकल जाऊं। मंजु को घर के भीतर नहीं लाना चाहिए। लौटते वक़्त देखा जायेगा। मां रसोई में अंगीठी पर पंखा हिलाती बैठी थी, कार के हार्न की आवाज सुनकर ऐसी दौड़ी हुई हाल में आ रही है जैसे इसी को कोई बुला रहा हो। मुझे देखते ही हाल में ही खड़ी रह जाती है।

"मैं जरा बाहर जा रही हूं। आठ बजे तक आ जाऊंगी। मामा से कह देना।" कहती

हुई मैं बाहर आ जाती हूं।

उधर, उस घर के सामने रंगोली सजाती हुई स्त्री, इधर इस घर पर हाथ में दूध का बर्तन लिये गाय दुहने की बजाय खड़ी होकर इधर देखती स्त्री -- सब मेरी ही तरफ देख रही हैं। झट से सामने वाले भवन की खिड़की भी खुल जाती है। एक चेहरा मेरी तरफ देख रहा है।

मैं कार की पिछली सीट पर बैठ जाती हूं।

"आपका घर छोटा और सुंदर है," मंजु बोलती है।

"मैंने सोचा कि तुम्हें घर के अंदर ले चलूं। लेकिन अभी देर हो रही है। लौटते वक्त तुम्हें हमारे घर चलना ही होगा।"

"ओ यस ! मुझे ऐसा छोटा मकान ही पसंद है। हमारा घर देखिए 'बीस साल बाद' पिक्चर वाले बंगले जैसा है। पिताजी ! हम उस अडियार वाले बंगले में ही क्यों न चलें?"

"वह सब तुम्हारी मां के हाथ में है।" बड़ी उपेक्षा के साथ कहते हुए ये कार चलाते रहते हैं। मुंह से धुआं उड़ रहा है।

"यही तो असंभव है, यह बात साफ है। मां क्यों इस मकान को छोड़ना चाहेगी?"

"तो चुप रहो !"

"क्यों? तुम्हारी मां नहीं चलेगी तो क्या हुआ? जब तुम शादी करके पति के घर जाओगी तब एक छोटा सा सुंदर मकान देखकर ले सकती हो।" मैं मजाक करती हूं। इस पर वह शर्माती नहीं।

"मैं शादी करके क्या यहीं रहने वाली हूं? एक साल तक हनीमून होगा ! स्विट्जरलैंड, पेरिस या ऐसी किसी जगह जाकर रहूंगी? क्यों पिताजी !"

"ओ यस ! लेकिन वहां तुम अपनी मां को साथ नहीं ले जाना।" ये हंस पड़ते हैं।

"पिताजी ! आप और मां हनीमून के लिए कहां गये थे?" मंजु इन्हें तंग करने लगती है।

"गये थे...ऊटी गये थे। लेकिन वहां जाकर क्या फायदा हुआ ! लौटते वक्त झगड़ते हुए आए।" बड़े असाधारण ढंग से ये कहते हैं।

आई. जी. दफ्तर के सामने कार जाकर रुकती है। मुझे ठहरने के लिए वहीं उतार देते हैं।

मैं कार से उतर कर खड़ी हो जाती हूं। मंजु एक नया सुझाव देती है – "पिताजी ! हम तीनों ही टहलते हुए चलें? ड्राइविंग बाद में भी सीखी जा सकती है। मैं ड्राईवर से सीख लूंगी। वाक करना आपके लिए अच्छा होगा। आप तो कोई भी व्यायाम नहीं करते। कम आन।" कहते हुए उनका हाथ पकड़कर खींचती है।

"अरे ! मुझसे यह नहीं होगा। यहां से आयरन ब्रिज तक? माई गुडनेस ! चाहो तो

लुम जाओ।" छोटे बच्चे जैसे अड़ जाते हैं।

"नहीं, मंजु ठीक कह रही है। अगर पैदल चलेंगे तो आपको अच्छा लगेगा।" मैं भी कहती हूं। थोड़ी देर सोचते हैं, फिर 'ठीक है' कहकर उतरते हैं। हाथ में सिगरेट का पैकेट उठाये, कार को 'लाक' करने जा रहे हैं।

मैं 'नो सिगरेट्स' कहकर उसे भीतर ही रखकर 'लाक' करने को कहती हूं। उनके चेहरे का रंग बदल जाता है। फिर भी मेरा कहना उचित मानकर सिगरेट का पैकेट भीतर रखकर कार लाक कर देते हैं।

फुटपाथ पर एक लंगड़ा भिखारी बैठा है। वह लंगड़ा है, भिखारी नहीं है। वह किसी से कुछ नहीं मांग रहा है। वैसे ही देखकर 'विश' करके हंसता है। ये पर्स से पैसे निकालकर उसे देते हैं। वह ले लेता है।

"सवेरे पहला कार्य दान करना है।" कहकर मंजु मजाक करती है।

"क्यों, इसमें क्या गलती है ? अब आगे हर रोज सवेरे यहां आकर पहला काम यही करूंगा। इसे पैसे दूंगा। उसके बाद चाहे जो कुछ भी काम करें, पहला काम तो अच्छा होना चाहिए।"

दोनों में वाद-विवाद शुरू हो जाता है। मंजु कहती है – "मुझे ऐसे कामों में विश्वास नहीं है।"

"इसमें विश्वास की क्या बात है?"

"इस प्रकार भीख देने से कोई पुण्य होगा, आर्थिक समस्या सुलझ जायेगी – ऐसा मैं नहीं मानती।"

"ऐसा किसने कहा? तुम्हारे घर कोई आता है और तुम कहती हो कि काफी पीजिए। क्या उन्हें और कहीं काफी नहीं मिलती जो वे हमारे घर आते हैं? मान लो कि काफी पीने के लिए भी उनके पास पैसे नहीं हैं। हमारे देने से ही क्या तुम जो 'समस्या' कह रही हो – वह हल हो जायेगी? यह सिर्फ 'मैनर्स' हैं भाई! जैसे किसी मित्र को देखने पर उससे कहते हैं, 'काफी पीजिए।' उसी प्रकार किसी गरीब को देखने पर यह करना चाहिए... ।"

"शहर में कितने गरीब हैं, आपको पता है? सभी को जाकर दे आइए न पैसे।"

"किसी छोटी बात को लेकर बड़ बड़ करते जिरह मत करो। जैसे तुम ही सब कुछ जानती हो। लोग सभी को इस प्रकार देते ही रहते हैं। कौन कहता है कि इसी से लोगों की गरीबी दूर हो जायेगी? मेरे देने और उसके लेने की अपेक्षा, यह जो तुम्हारा तर्क है वही भिखमंगेपन से भरा है। बात बात पर जिरह करना आज के लड़कों और लड़कियों के लिए एक फैशन बन गया है।"

"जिरह कीजिए। मैं मना नहीं करती। लेकिन 'वाक' करते वक्त नहीं। जरा चाल को स्पीड अप कीजिए? लौटते वक्त खूब पसीना बहना चाहिए। तभी वाकिंग का लाभ होगा।" मेरे कहने पर तीनों तेज गति से हाथ हिला हिलाकर चलने लगते हैं।

19

वेंकटराम अय्यर अकेले ही वाकिंग करके आते हैं। लौटकर स्नान करते हैं और विभूति धारण करके संध्या, जप आदि अनुष्ठान पूरा करते हैं। फिर काफी पीकर अखबार हाथ में लिये, हाल में आकर बैठ जाते हैं। तब कनकम आकर खंभे के पास खड़ी हो जाती है और कल जो बात बीच में बंद हो गयी थी, उसे आगे बढ़ाती है। उसका मन सदा ही उसी बात को सोच सोचकर चिंता से भरा और व्याकुल रहता है। इसलिए ज्यों ही बोलने लगती है, उसका स्वर गद्गद् हो जाता है। आंखों से अश्रुधार बह चलती है। साड़ी के आंचल से मुंह को, आंखों को पोंछती हुई बोल उठती है–

"भाई साहब ! आप गांव लौटने के पहले कोई उपाय करके तब जाइए। मुझसे बाहर कभी मुंह नहीं दिखाया जा सकता है। इस लड़की के कारण मैंने जो अपमान सहा, वह काफी नहीं है क्या? मुझसे उसके साथ बात नहीं की जा सकती है। गणेश अक्सर आता है और ऐसे ऐसे प्रश्न करता है, जिनका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। उसके सामने भी मैं कुछ नहीं बोल पाती हूं। मेरा भाग्य कैसा है? देखिए। ऐसी एक लड़की, ऐसा एक लड़का – दोनों को जन्म देकर भी, किसी से कोई सुख नहीं मिल रहा है। ठीक है, वह जाने दो। लेकिन इस तरह अपमानित होते हुए, बातें सहते हुए – ऐसा जीवन भी क्या जरूरी है ?"

कनकम, बोलते बोलते, गद्गद्स्वर से अस्पष्ट शब्द कहकर रो पड़ती है। फिर केवल रोना बचता है। वेंकटराम अय्यर हाथ में अखबार खोले हुए, मौन भाव से कनकम की तरफ देख रहे हैं। उसकी दशा पर उन्हें बड़ा दुख होता है।

"ठीक, अब तुम किसलिए रो रही हो? रोने-कलपने से, दुख भोगने से क्या लाभ है? भाग्य को क्या बदलकर लिखा जा सकता है?"

कुछ समाधान देकर कनकम को आश्वासन दे रहे हैं।

"एक बार कभी अचानक इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी; तो भी मैं समझती हूं कि मेरी बेटी के समान कोई नहीं है। और मैं गर्व से सिर उठाकर चलती थी। लेकिन अब क्या से क्या हो गया है, देखिए।" छाती पर हाथ रखकर कनकम विलाप करती है।

"क्या किया जा सकता है? वह अब छोटी बच्ची थोड़े ही है? उसे समझा-बुझाकर ही ठीक किया जा सकता है। उस पर भी अपनी जिद्द नहीं छोड़ेगी तो हमें उससे हट जाना होगा; अपना मार्ग अलग बना लेना होगा।" मामा जी के कथन में दृढ़ता नहीं है। उन्हें

यह विश्वास नहीं है कि गंगा के व्यवहार को वे बदल सकते हैं। इसलिए रूखे ढंग से कुछ कह देते हैं।

"तो क्या इससे छुटकारा पाकर हमें निकल जाना होगा? मैं सारे संसार को अपना दुश्मन बनाकर इसके साथ अकेली चली आयी थी, वह क्या इसलिए ? आपने जो सहायता की है, उसके बदले में गंगा की यही कृतज्ञता है? आपके प्रति कृतज्ञता न सही, आदर-भाव तो होना चाहिए। इस बात को मनुष्य भले ही न देखे, लेकिन भगवान जरूर देखेंगे।" कोई वस न चलता देख जैसे वह शाप दे रही हो। व्यथा और दुख से भरे स्वर को तेज करके वह बोल रही है।

तब मामा बीच में टोककर कहते हैं, "सुनो, कनकम ! ऐसी बातें मत कहो। अपनी जाई हुई बेटी अगर गलती करे तो उसे पीट सकते हैं, दंड दे सकते हैं, लेकिन शाप नहीं देना चाहिए...।" उसे वे समझाते हैं।

"मैं क्या करूं? मेरी कोख तो जल रही है। मैंने न जाने कौन सा पाप किया है जो यह कुकृत्य रोज देखती रहती हूं। कह गयी कि आठ बजे तक आयेगी। आप ही देख लीजिए। वह आदमी, उसका चेहरा...जब देखो राक्षस की तरह मुंह में आग भरकर आ खड़ा होता है। उसे देखेंगे तो आप के भी तन-बदन में आग लग जायेगी।" कहते कहते आवाज धीमी कर देती है और उनके पास झुककर कान में रहस्यमय ढंग से कुछ कहती है।

"हमारी जाति का होता तो भी कोई बात नहीं होती। विवाहित हो, तो भी उसकी बीवी के पैर पकड़कर किसी प्रकार विवाह कर दें। इस आदमी को देखने पर लगता है जैसे कोई जाति-भ्रष्ट है। इस लड़की का दिमाग आखिर कहां जा रहा है? देखा है ! आप कहते थे न. ..इसकी बुद्धि स्थिर नहीं है। उस समय मुझे लगता था – क्या बात है, भाई साहब ऐसा क्यों कह रहे हैं? अब समझ में आ रहा है। इसका संतुलन बिगड़ गया है। इस लड़की को आपने भली भांति समझ लिया था। कल रात मैंने सोचा कि आप उसे और भी कड़ाई से डांट देंगे। लेकिन आपने गंगा को नहीं डांटा। अब वह आने वाली है। वह व्यक्ति भी आयेगा। आप ही इस घर के मालिक हैं। वह लड़की भी आपकी देखभाल में पली, वढ़ी और जवान हुई है। आपको उसे डांटने का पूरा अधिकार है। उस आदमी से कह दीजिए कि इस घर के दरवाज़े पर अब वह कभी न आए। इसे भी समझा दीजिए कि यह सव मर्यादाहीन कार्य है। वह आदमी शायद सोच रहा है कि इस परिवार में कोई मर्द नहीं है। अगर आप डांट फटकार देंगे तो वह स्वयं ही यहां से हट जायेगा।" कनकम उन्हें समझा रही है।

वेंकटराम अय्यर उसकी अबोधता पर हंस देते हैं।

वे थोड़ी देर आंखें बंद किए सोचते हैं, कुछ इस झुंझलाहट के साथ कि जिस मुकदमे में हार जाना निश्चित है, उसकी पैरवी करने की यह कैसी मजबूरी है ! आह भरकर सूखी हंसी हंस देते हैं, फिर आंखें खोलकर कनकम की तरफ देखते हैं। कुछ कहने के लिए मुंह खोलते

हैं। इतने में बाहर से कार की आवाज आती है। दोनों उस तरफ देखते हैं। बात बंद हो जाती है। कनकम भीतर चली जाती है।

वाकिंग से लौटते समय वे ड्राइव-इन होटल के भीतर कार मोड़ देते हैं। मैंने ही 'नहीं' कह दिया। हमारी पहली योजना तो वाकिंग के बाद ड्राइव-इन में जाकर काफी पीने की थी। लेकिन मैंने सोचा कि मंजु पहली बार घर आयी है, उसे घ ाहर से ही नहीं भेजना चाहिए। इसलिए घर पर ही सब काफी पी लेंगे। मैंने प्रोग्राम बदल डाला। इन्होंने तुरंत 'ठीक' कह दिया। मंजु को शायद मेरे घर के भीतर आकर सब कुछ देख लेने की क्यूरियोसिटी थी।

इतनी देर से मां मामा के पास खड़ी बात करती रही है, लेकिन कार को देखते ही मुंह फेरकर भीतर जा रही है। कैसी कहानियां सुनाई होंगी? घूम-फिरकर चर्चा मेरे ही बारे में हो रही होगी।

मामा अखबार तह करके हाथ में रखे हुए खड़े हो जाते हैं। और इस जेंटलमैन का स्वागत करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इनका ठिठकना देखकर मैं धीरे से सिर्फ उन्हीं को सुनाती हुई बोलती हूं – "हमारे मामा हैं। गांव से आए हैं।" फिर मंजु का हाथ पकड़कर भीतर ले जाती हूं।

मामा प्रसन्न मुद्रा में खड़े हैं। मानो इनके बारे में या मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानते हों या जैसे किसी शादी में घर के बाहर खड़े होकर अतिथियों का स्वागत कर रहे हों।

मैं मामा को इनका परिचय देती हूं।

"मामा, ये हैं मेरे फ्रेंड मिस्टर प्रभाकरन। यह इनकी बेटी मंजु है।"

मामा इन्हें प्रसन्नता के साथ नमस्कार करते हैं। "आइये, आइये !"

"क्या बेटी कालेज में पढ़ रही है?" मंजु के बारे में पूछते हैं। "बैठिए," कहकर सबको हाल में ले जाते हैं। मैं रसोईघर में जाकर मां से काफी बनाने के लिए कहती हूं। वह कुछ जवाब नहीं देती है। काफी बनाने लगती है।

मैं हाल में आ जाती हूं और मंजु को वहां से अपने कमरे में ले जाती हूं। मामा और ये 'वाकिंग' के संबंध में बात कर रहे हैं।

ये स्कूल के स्टूडेंट की तरह बड़ी विनय और श्रद्धा के साथ मामा के प्रश्नों के उत्तर दे रहे हैं।

मंजु कमरे के भीतर मेरी पुस्तकों की आलमारी की तलाशी लेती है। "आपका घर मुझे बहुत पसंद आया। ऐसा ही छोटा घर, छोटा कमरा मुझे अच्छा लगता है। आपने इसे व्यवस्थित ढंग से सजा रखा है। पहले कभी ऐसा नहीं लगा कि आप 'वुड हाउस' पढ़ती हैं।"

"क्यों?" मैं पूछती हूं।

"मैंने स्वयं सोच लिया था कि आप को 'सीरियस रीडिंग' ही पसंद है।"

मैं उसका कोई जवाब नहीं देती हूं। मंजु हाथ में एक पुस्तक लिये खड़ी खड़ी पढ़ने में तल्लीन हो जाती है।

"चाहो तो इसे ले जाओ और पढ़कर वापस कर देना," मैं कहती हूं।

"थैंक्स।" प्रसन्नता के साथ पुस्तक बंद करके रख लेती है। "मैंने नहीं सोचा था कि आपके पास इतनी पुस्तकें होंगी," कहती हुई मेरे पलंग पर आकर बैठ जाती है। तुरंत ही 'आय एम सारी' कहती हुई उठ जाती है।

"नो। नो। इट इज आल राइट।" कहकर मैं स्वयं उसे पलंग पर बिठाती हूं।

"मैं तो हर रोज तुम्हारे घर आती हूं। अब तुम भी यहां आया करो न ! हम बातें किया करेंगे।" वह फिर पुस्तक खोल लेती है, "ओ यस।" अब तक काफी तैयार हो चुकी होगी। कुछ ऐसी आवाज आ रही है, जो काफी तैयार हो जाने का संकेत दे रही है – 'काफी पाट' में चम्मच से चीनी मिलाने की आवाज है।

मैं रसोई में जाती हूं। मां ने प्यालों में काफी भर रखी है। उन प्यालों को ट्रे में सजा लेती हूं।

"मामा के लिए?"

"उन्होंने अभी अभी पी थी।"

"कोई बात नहीं। एक और प्याला दो।" उसे लेकर ट्रे में रख लेती हूं। ट्रे उठाये मैं हाल में आती हूं। मानो कोई दुल्हा मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव लेकर आया हो – ऐसी एक कल्पना क्षण भर के लिए मन में जागृत होती है। मैं अपने आप मुस्कुराती हूं।

मंजु भी कमरे से हाल में आकर बैठ जाती है। यह मां क्यों रसोईघर में ही घुसी हुई है और बाहर नहीं आ रही है? सोचती हुई मैं मंजु की बगल में सोफे पर बैठ जाती हूं और काफी पीने लगती हूं।

रसोईघर की ड्योढ़ी पर मां खड़ी है। इन लोगों का परिचय पाने की उसे इच्छा नहीं है –यह साफ है। मामा हमसे कुछ कहने वाले हैं, उसे सुनने के लिए वह वहां खड़ी है। मुझे मालूम है कि अब मामा कुछ भी नहीं पूछने वाले हैं। अब क्यों? कभी भी मामा इनसे कुछ नहीं पूछ पायेंगे – मुझे पता है। सामान्य रूप से, कोई विशेष विषय न लेकर कोई चर्चा छेड़ते हैं। मामा कुछ पूछ रहे हैं और ये कुछ जवाब दे रहे हैं।

मैं मंजु को साथ लेकर सारा घर दिखाती हूं। हम पहले दूसरी मंजिल पर जाती हैं। ऊपर छत पर से देखती हैं – आसपास के मकान दिखाई पड़ते हैं। मैं दिन में कभी यहां नहीं आती हूं। मंजु बड़ी प्रसन्न होकर खड़ी है और हैरानी से देख रही है। इस आयु में ऐसा कौतुहल होता ही है।

अचानक याद आता है, साढ़े आठ बज चुके हैं। अभी मैंने स्नान भी नहीं किया है। आज सोमवार है, दफ्तर ज़ाना है।

"क्या तुम्हें आज कालेज नहीं जाना है?" मैं पूछती हूं। तीसरे घर की छत पर कोई स्त्री बड़ियां बना रही है। वह दृश्य देखती हुई मंजु बोलती है, "दोपहर को जाना है।"

"क्यों?"

"दोपहर को टैस्ट है। अब तक कुछ भी तैयारी नहीं की है। कुछ पढ़ूंगी।" कहने के बाद जाने के लिए आतुर दिखती है।

"कल दिन भर तुमने क्या किया?" मुझे पूछने का इतना क्या अधिकार है? मैं स्वयं सोचती हूं।

वह भी बड़ी विनम्रता से कहती है —"कल शाम को आप वहां थीं न ! उसके बाद पढ़ने के लिए जा बैठी। तभी मां पिक्चर देखने के लिए निकल पड़ी। मैंने सोचा, कल पढ़ लूंगी। तब मैं भी उनके साथ हो ली। अब वाकिंग करने आ गयी। अच्छा ! अब मैं चलती हूं।" छत की सीढ़ी से भागते हुए नीचे उतरती है। मैं उसके पीछे पीछे आकर "मीट माई मदर" कहते हुए उसे रसोईघर में ले जाती हूं। यह कहीं रसोई में न घुस जाये, इस आशंका के साथ मां हड़बड़ाकर ड्योढ़ी पर आ जाती है और रास्ता रोकती हुई सी खड़ी हो जाती है। मंजु बड़े श्रद्धाभाव से मां को नमस्कार करती है। मां फीकी हंसी हंसती है।

"पिताज़ी ! चलें क्या? मुझे टैस्ट के लिए पढ़ना है।"

ये कब से शायद इसी इंतजार में बैठे हैं। जल्दी से उठते हैं।

"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" मामा यह कहकर उन्हें विदा करते हैं। मैं मां का मुंह देखती हूं। वह मामा की दशा का कुछ अनुमान नहीं लगा पा रही है शायद। इन दस मिनटों में मामा ने इन्हें पूरा पूरा स्टडी किया होगा। इसीलिए मुझसे कहा था कि इनसे मिलेंगे। शाम को या रात को इस संबंध में मुझसे अकेले में बात करेंगे। वह चाहे किसी भी समय मुझसे बात करें, वह मेरे ही काम आयेगी।

मैं इन्हें कार में बिठाकर वापस गेट की तरफ आती हूं। कार स्टार्ट करते हुए ये मुझसे कहते हैं, "तैयार रहना। मैं दस बजे आऊंगा।"

मंजु हाथ हिला रही है। गेट बंद करके सांकल लगाकर जब मैं लौटती हूं तो देखती हूं कि मामाजी जो अब तक बाहर ही खड़े थे, भीतर की ओर जा रहे हैं। मैं डरती हूं कि ये हाल में जाकर बैठ जायेंगें और मुझसे बात छेड़ देंगे। तब मैं दस बजे तक तैयार नहीं हो पाऊंगी?

देर हो रही है। स्नान की तैयारी करती हूं। मामा कहीं मुझसे बात करना शुरू न कर दें ! मैं जैसे उनसे अपने को छिपाना चाह रही हूं। बाथरूम के भीतर जाकर किवाड़ बंद कर लेती हूं। मां रसोईघर के भीतर कोई काम करती हुई जोर जोर से बड़बड़ा रही है। इधर, हाल में बैठे मामा के कानों में भी पड़े; इसलिए गला फाड़कर ऊंची आवाज में बोल रही है। मां इतनी ऊंची आवाज में कभी नहीं बोलती। कभी जब गणेश आये और इसे परेशान करे तो शायद यह इसी प्रकार बोलती होगी। जब मामा होते हैं, तब इस तरह कभी नहीं चिल्लाती।

लेकिन आज मां चिल्ला रही है। मामाजी ने इनके साथ बात करते हुए काफी पी थी, यह मां को असह्य लगा है शायद।

मां चिल्लाकर बोल रही है। मैं बदन पर पानी डाल लेती हूं और साबुन तक न लगाते हुए गौर से सुनती हूं कि अब वह क्या कह रही है।

मां चिल्लाती है, "मुझे हर महीने पचास रुपये देने को कह दीजिए। मैं अपने बेटे के पास चली जाऊंगी। मैंने उसे जन्म देने का जो अपराध किया है, उसके लिए वह मुझे 'कांजी' (मांड) पिलाकर ही सही, जीने का कोई रास्ता बना देगा। इस लड़की के लिए मैंने उससे भी विरोध मोल लिया था। अब कौन सा मुंह लेकर वहां जाऊंगी? वहां जाकर बेकार बैठी रहूं, उसकी बीवी मुझ पर व्यंग्य कसेगी। इससे कह दीजिए कि इसे मैंने जो पाला-पोसा, बड़ा किया, उसकी एवज में, मजदूरी ही सही, हर महीने पचास रुपये मेरे मुंह पर फेंक दिया करे। अगर लड़का मुझे अपने पास नहीं रहने देगा तो कहीं अकेली जाकर रह लूंगी। इन लोगों के लिए काफी तैयार करना, रसोई बनाना —यह सब करने वाली कोई मैं नौकरानी थोड़े ही हूं। न बाहर इज्जत रही है, न घर में ही। सब लोग अपनी अपनी इज्जत बचा लेते हैं। (यह संकेत मामा की ओर है।) अब मेरी इज्जत में क्या रखा है बचा लेने के लिए? हाय रे ! अपनी जीभ खींचकर प्राण छोड़ दूं तो अच्छा होगा। यह क्या किसी वेश्या का घर है? अरी ! तुम जो चाहो, करो। अब एक क्षण के लिए भी मैं इस घर में नहीं रहूंगी। हां, मैं सोचती थी, आप आयेंगे तो यह आपकी बात मानेगी — ऐसी एक क्षीण आशा सब को थी। लेकिन यहां तो ऐसे कुछ लक्षण हैं कि मुंह से शब्द नहीं निकलते। आज शाम को आप चले जायेंगे। मुझे ही तो अब सारे समय बैठे बैठे यह सारा कर्मकांड देखते रहना पड़ेगा। आप मेरे लिए कुछ न करें। मैं अपना रास्ता देख लूंगी। इन बारह वर्षों से इस लड़की ने मेरा जो अपमान किया है, वह सब झेलती रही। गलती इसने की, अब उसका प्रतिशोध भी मुझी से लेना है? 'मां' कहकर बुलाये कितने साल हो गये? क्या इन बारह वर्षों में कभी वह स्वयं मेरे पास आकर कुछ बोली है? मैं क्यों यह सब सहती रही? इसीलिए कि यह भले ढंग से रहती है। अब तो इसके भलेपन... मर्यादा...इस सब पर तो सारा मुहल्ला हंस रहा है। मेरे साथ ही इसकी जिद्द चलती है। तुम आफिसर हो तो अफसरी अपने पास रखो। पढ़ी-लिखी हो, कमा रही हो, तो क्या जो मन में आये वही कर लोगी? तुम्हारी यह कैसी जिद्द है?"

मां अब मुंह बंद नहीं करेगी। उसने झंडा उठा लिया है। मेरे प्रति मां के मन में भरपूर घृणा उत्पन्न हो गयी है। अब यह इच्छा जाग पड़ी है कि बेटे के घर जाकर रहेगी। अब इसे समझाने से कोई लाभ नहीं है। मैं इसे किसलिए समझाऊं? क्या मैंने इसका अपमान किया है? यह तो निराधार आरोप है। इससे मैंने कब प्रतिशोध लिया? मुझे यह क्यों इतना नीच समझती है? मुझमें कौन सी वेश्यावृत्ति इसने देख ली है? कौन सा मान-सम्मान बचा रह गया था, जो मिट रहा हो? मैंने इसकी प्रतिष्ठा का क्या बिगाड़ दिया? इन बारह वर्षों में हम दोनो

साथ साथ रहकर 'बोर' हो गयी हैं। कितने दिन ऐसे रह सकेंगी? मुझे एक स्त्री के रूप में यह क्यों नहीं देखती है? उधर ये मेरे भविष्य की कितनी चिंता करते हैं ! लेकिन जिसने मुझे जन्म दिया, उसे मेरे भविष्य की चिंता क्यों नहीं है? मै जब संन्यासी जीवन बिताती थी, तब इसे बड़ी तृप्ति हो रही थी। लेकिन अब कौन सा अपराध कर दिया है मैंने? मैं क्यों इन लोगों को प्रमाणित करके दिखाऊं कि कुछ नहीं हुआ है, कि मैंने कोई अपराध नहीं किया है ? मेरी समस्या तो यही है कि मुझसे कोई अपराध नहीं हुआ है। काश ! मैं वैसा अपराध कर ही देती जिसकी ये कल्पना कर रहे हैं ! वास्तव में देखा जाये तो मैं प्रभु की 'रखैल' हूं। मेरे लिए यह स्थिति उचित ही है। मैं यह नहीं कहती कि मेरी मां के लिए भी यह स्थिति उचित है। मुझे और क्या करना चाहिए था? यह मानकर कि यही मेरे भाग्य में हैं, जीवन के साथ समझौता कर लेना चाहिए। इन लोगों से कह देना चाहिए कि जो मेरे साथ नहीं रह सकता वह मुझे छोड़कर चला जाये। मेरा आचरण सचमुच भ्रष्ट हो गया तो मैंने वैसा ही कह दिया होता। हां, सचमुच घटित हुआ या नहीं हुआ – यह समस्या उनकी नहीं है। मेरा तो यही भाग्य है कि मेरा कोई संगी-साथी न हो और में अकेली ही रह जाऊं। मुझे इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए। कोप या खेद के बिना तटस्थ होकर देखा जाये तो यह निर्णय बिलकुल उचित लगेगा। मैंने अपने जीवन को बहुत उलझा लिया है, क्योंकि मैं और कुछ नहीं कर सकती थी। मैंने जानबूझकर ही यह उलझन पैदा कर ली है। इस उलझन में मुझे एक विचित्र प्रसन्नता मिलती है। इसमें औरों को फंसाकर परेशान नहीं करना चाहिए। उनकी भावनाओं का, उनके कोप का मैं आदर करती हूं। मां के प्रति मेरे मन में आदर है। इसी कारण, मुझे ऐसा लगता है कि जहां वह चाहे, उसे वहीं भेज देना उचित है।

स्नान करके बाथरूम से मैं निकल आती हूं। मां अभी भी बोले जा रही हे। मैं अपने कमरे में जाकर कपड़े वदल लेती हूं। अव साढ़े नौ बज गये हैं। बाहर निकलकर मामा को भी खाने के लिए बुलाती हूं। दोनों एक साथ आकर खाने पर बैठ जाते हैं। मां कुछ बोले विना खाना परोस देती है। खाना समाप्त होने तक वह कुछ नहीं बोलती। मामा भी मौन हैं।

खाकर जब हाथ धोने लगी हूं तो मां फिर बोलना शुरू कर देती है। मैं घूमकर उसकी ओर देखती हूं। आंखें और चेहरा तमतमा रहे हैं। मुझे भी रोना आता है। उसे पी जाती हूं। उसे 'मां' कहकर बुलाने पर क्या हो जायेगा? धुले हुए हाथों को रूमाल से पोंछती हुई मैं कुछ क्षण मां को ही देखती रहती हूं।

मेरा मन शांत है। मुझे इस पर खेद या कोप नहीं है। इतने साल तक मैंने इसे क्यों 'मां' कहकर नहीं पुकारा? क्या मैं यह सोच रही थी कि मैं इसके योग्य नहीं हूं? मैं इसे अब 'मां' कहकर पुकारूंगी। लो, कहती हूं –"मां !"

मां मेरी तरफ सिर उठाकर देखती है। उसके शरीर में रोमांच होता है, आंखें छलछलाकर बहने लगती हैं।

"मां? तुम बेकार ही क्यों रो रही हो? तुम अपनी मर्जी से जो चाहो कर सकती हो। पचास रुपये क्या, हर महीने सौ रुपये दूंगी। तुम चाहो तो अपने लड़के के पास जाकर रह सकती हो। या और कहीं जाकर रह लो। जब यहां आने को तुम्हारा मन होगा, तब आ जाना। यह तुम्हारा घर है....," मैं कहती हूं। मां मुंह ढंककर रो पड़ती है। दोनों बांहें पसारकर पूछती है, "अरी। तुम्हें क्या यह उचित लगता है? यह न्याय है?"

मैं शांति के साथ जवाब देती हूं, "अच्छा है या नहीं, जो मुझे न्याय लगता है, उसे मैं कर रही हूं?"

"उस पापी ने तुम्हें कौन सी दवा पिला डाली है?" कहकर वह चिल्ला पड़ती है।

"मां, कोई घिनौनी बात न कहना !" कहकर मैं बाहर निकल आती हूं।

बाहर कार आकर खड़ी हो जाती है। हार्न की आवाज सुनाई देती है। घड़ी देखती हूं। दस बज गये हैं।

20

एक सप्ताह बीत गया। मां गणेश के पास चली गयी है। गणेश आकर ले गया है। उस दिन घर में एक बड़ा 'सीन' खड़ा हो गया था।

गणेश मुझे मारने को आता है। मां बीच में पड़ती है और उसे हटाकर ले जाती है। मैं चुपचाप सोचती खड़ी रही कि मारने दो। इसके हाथों से क्या मैंने मार नहीं खायी है? क्या इसे मुझ पर हाथ उठाने का अधिकार नहीं है? मैं जब छोटी बच्ची थी, लहंगा और अंगिया पहने रहती थी, यह मुझे खेलने के लिए भी जाने नहीं देता था।

यह मुझसे वड़ा है न ! खेलने से मना करने के लिए कभी भी आ जाता। मैं रोती हुई 'हट जा रे' कहकर कोस देती। वह सब स्मरण करती हुई चुप खड़ी हूं।

मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि वे सब क्या बोल रहे हैं। मानो समझ में न आने वाली किसी भाषा में कोई पिक्चर चल रही हो। एकदम शोरगुल से भरा दृश्य है। उनका खेद, कोप और आक्रोश ही समझ में आ रहे हैं। मैं कुछ नहीं बोलती हूं। जो हो रहा है, होने दो...मैं चुप खड़ी रहती हूं।

मुझे न क्रोध है, न खेद। न ही रोना आता है। उनके सोचने, आवेश में आने का क्या कारण है – यह मुझे खूब मालूम है। फिर भी उस पर मन में कोई खेद नहीं है।

मैं जव दफ्तर से घर आयी तो देखा कि गणेश आया हुआ है और हाल में खड़ा है। मामा गांव जाने के लिए तैयार हैं। मेरे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं टैक्सी से आकर उतर पड़ती हूं। इसी टैक्सी से मामा को जाना है। लेकिन वे टैक्सी वापस भेज देते हैं। शायद यह सोच रहे हैं कि इस संघर्ष को ऐसे ही छोड़कर नहीं जाना चाहिए। गणेश जब से आया है शायद खड़ा ही है। चिल्लाता ही रहा है शायद। मां एक बड़ा सा गट्ठर बांध रही है। कपड़े को खींच खींचकर कस रही हैं। रो रही है। जैसे कोई गाना गा रही हो, यों रोती हुई गट्ठर बांध रही है। उसे देखकर जाने मेरे पेट के भीतर क्या होता है। मैं घर के भीतर आयी तो उस दृश्य को देखती हुई खड़ी रह गयी हूं।

तभी गणेश मेरी तरफ मुड़ जाता है। दांत किटकिटाता है। होंठ चबाता हुआ, चिल्ला चिल्लाकर कुछ कह रहा है। उसकी बोली मेरी समझ में नहीं आ रही है। मां अपना मुंह पोंछ लेती है और सिर उठाकर मेरी ओर देखती है। मुझे क्या कहना चाहिए, नहीं मालूम हो रहा है। ऐसे में कैसा व्यवहार करना उचित होगा, नहीं समझ पा रही हूं। मैं चुपचाप खड़ी हूं।

क्या मुझे अब इससे यह पूछना चाहिए कि 'मां, मुझे अकेली छोड़कर तुम कहां जा रही हो?'

क्या मुझे यह कहकर रोना चाहिए कि 'मां मुझे छोड़कर कहीं न जाओ।'

ये सब यही प्रतीक्षा कर रहे हैं कि मुझे वैसा कुछ करना चाहिए। मान लो, मैं वैसा करती हूं। क्या ये वहीं तक रुकेंगे ? उसके ऊपर शर्तें लगायेंगे। कहेंगे कि इनसे मुझे नहीं मिलना है, इनके घर मुझे नहीं जाना है, इन्हें यहां नहीं आना चाहिए। अपनी बदनामी करके जो गंदा जीवन बिता रही है, ऐसी स्त्री के साथ रहना कैसे संभव होगा?...इस प्रकार औचित्य की बात पूछने लगेंगे। इसके लिए क्या किया जाये?

उस बात को सोचकर ही मैं चुप रह गयी हूं। मां मुझे छोड़कर जा रही है तो इससे मुझे न तो कोई प्रसन्नता हो रही है और न इसमें मुझे कोई सहूलियत ही है। फिर भी, मुझे यही उचित लग रहा है कि वह मुझे छोड़कर चली जाये। इसके कारण मुझे चाहे कितने भी कष्ट हों, उन्हें सहना होगा। इसका अपमान सा करते हुए, इसकी आंखों के सामने ही मेरा इनके साथ घूमना और ऐसा बर्ताव करना, जिससे औरों को लगे कि इसमें मां की भी स्वीकृति है, उचित नहीं लगता।

इसीलिए इन लोगों की उचित-अनुचित बातों पर मैंने कान ही नहीं धरे। मां को जाने से रोका भी नहीं। चुपचाप अपने कमरे के भीतर चली जाती हूं। हाल में गणेश चिल्ला रहा है। ऐसा लगता है कि मामा जी उसे डांट रहे हैं और कुछ समझा रहे हैं।

थोड़ी देर बाद जब मैं बाहर आती हूं तो मामा कहते हैं, "गंगा! यह ऐसी बात कह रहा है, जैसे तुम मां को घर से भगा रही हो। वह अपने आप ही तो सवेरे से 'चली जाऊंगी, चली जाऊंगी' का राग अलाप रही है। तुम इसे अपने मुंह से कह दो कि यहां कुछ भी नहीं हुआ है, मां यहीं रहेगी।" यह कहकर मामा मुझे फंसाने की सोच रहे हैं।

मैं ओंठ भींचे मामा की तरफ देखती हूं। मां तो जैसे मामा की बातों पर आपत्ति कर रही हो, यों रोती-कलपती हुई गट्ठर को उठाकर बगल में दबाए हुए चल पड़ती है।

मैं मां को देखकर हंसते हुए बुलाती हूं, "मां, तुम्हारे साथ मेरा क्या कोई झगड़ा है? किसी बात पर नाराज हो? इतनी जल्दी कहां जा रही हो? यहां आ जाओ। तुमसे मुझे कुछ कहना है।"...मैं उसका हाथ पकड़ लेती हूं, और कमरे के भीतर ले जाती हूं।

उससे कुछ भी कहते नहीं बनता। जैसे कोई बच्ची हो, इस प्रकार मेरी पकड़ में बंधी हुई वह चुपचाप मेरे साथ चली आती है।

गणेश कुछ बोलता है, जैसे उसे मना कर रहा हो। उसका कुछ जवाब देती हुई बात पूरी किये बिना ही मां कमरे के भीतर चली आती है। मैं किवाड़ बंद कर लेती हूं।

किवाड़ बंद करते ही जैसे मैं और मां एक अलग दुनिया के भीतर आ गयीं। मान, मर्यादा, बदनामी, वह, यह — सब पार करके एक मां और एक बेटी के रूप में — दो स्त्रियों के रूप

में — हम कमरे में आकर खड़ी हैं, ऐसा मुझे लगता है।

मां क्या 'मां' बनकर ही पैदा हुई थी? वह भी तो एक स्त्री है। एक स्त्री की दशा, उसकी कमी, उसकी आवश्यकता — यह सब क्या मां नहीं समझ सकती? यह सब क्या बोलकर ही समझाया जा सकता है? वैसा बोलना भी क्या संभव है? फिर, मां को बेटी कुछ न कहे, तब भी वह समझ ले, वहीं मां तो मां है।

मां की पीठ के पीछे किवाड़ बंद है। बगल में गट्ठर दबाये, मेरी बात सुनकर तुरंत चले जाने के लिए उतावली सी मां खड़ी है। मेरे मन में तो इतनी बातें है कि एक दिन भर उसके सामने उड़ेलती रहूं, तो भी पूरी न हो पायें।

मां यों खड़ी है, जैसे पूछ रही हो, 'क्या कहना चाहती है री ?'

"मैं तुम्हें नहीं भगा रही हूं, मां ! लेकिन मेरा विचार है, तुम कहीं दूसरी जगह जाकर रहो, इसी में तुम्हारी प्रतिष्ठा है। मैं जो ऐसा कह रही हूं, इसका कोई गंदा मतलब नहीं लेना। मैं उस प्रकार बिगड़ जाने वाली नहीं हूं। मैं तो जानबूझकर ही ऐसी बदनामी पा रही हूं। कम से कम ऐसा यश तो मुझे चाहिए न? मुझे जन्म देने वाली तुम तो समझ सकोगी — इस विचार से कह रही हूं। मैंने निर्णय कर लिया है कि इनके साथ मेरा जीवन ऐसे ही कटेगा। लेकिन उसका अर्थ यह नहीं है कि वह पति-पत्नी का सा जीवन होगा। वैसा जीवन बिताने को न मैं योग्य हूं, न ये योग्य हैं। मेरे जीवन में इस प्रकार रहने के सिवा, दूसरे ढंग से रहना, चाहे वह तुम्हारे साथ रहना ही क्यों न हो मुझे उचित नहीं लगता। इसलिए तुम कहीं जाकर किसी पर बोझ बनकर न रहो। यह घर, मैं, मेरी कमाई...सब तुम्हारा है। तुम किसी की मदद न मांगो। तुम जब चाहो यहां आ सकती हो ! जो चाहो ले जा सकती हो। गणेश अब मुझसे प्रतिशोध लेने के आक्रोश में तुम्हें ले जाये, तो भी तुम मेरा सहारा बनकर उससे विरोध मोल लेकर जो चली आयी थीं, उस पर व्यंग्य करता हुआ ही वह बोलेगा। वह न बोले, तो भी भाभी कहेगी, तब वह भी कुछ कहेगा। भाभी उसे बोलने को मजबूर कर देगी। तुम भी सोचोगी कि वे लोग वैसा बोलें, तो उनकी कोई गलती नहीं है, क्योंकि मैं जो ऐसी हो गयी हूं, इसलिए उनका वैसा कहना उचित ही है। यह सोचकर तुम दुखी होओगी, इसीलिए कह रही हूं कि ऐसा नहीं होना चाहिए कि तुम नाराज होकर, मेरे साथ झगड़ा करके जा रही हो। मैं अपने मन के अनुसार जो रहती हूं, यह तुम्हें अच्छा नहीं लगता है और इसीलिए तुम अपने बेटे के यहां जा रही हो। इसमें रोने की क्या जरूरत है? चिल्लाने की क्या जरूरत है? लड़ाई की क्या जरूरत है? मध्यस्थता की क्या जरूरत है? तुम जब जा रही हो, खाली हाथ न जाना। वह भी बाल-बच्चों वाला है।" यह कहकर आलमारी से रुपये निकालकर उसे देती हूं। कितने हैं — गिनकर नहीं देखे। यह सारी बात सोच सोचकर उसे बताने में आधे घंटे से ज्यादा लग जाता है।

मां जैसे भ्रम में स्तब्ध है। मेरी बातें चुपचाप खड़ी हुई सुनती है। कुछ सोचकर आंसू

बहाती है।

मैं जो पैसा देती हूं, उसे लेकर रख लेती है। वह मेरी तरफ यों देख रही है, मानो पूछ रही हो कि 'क्या इतना ही कहना था, या और कुछ कहने को बाकी है?'

थोड़ा रुककर मैं फिर बोलती हूं, "मामा गांव जाने को तैयार थे, तुम्हारे कारण रुक गये हैं। उन्हें यों नहीं रुकना चाहिए। मैं अकेली खाना बनाऊंगी, दफ्तर जाऊंगी। यही मेरे लिए बड़ा काम है। अब इनकी देखभाल करना मेरे लिए संभव नहीं है। उन्हें भेजकर तब तुम जाना। तुम्हें बस, यहीं इधर 'तिरुवल्लिक्केणी' में ही तो जाना है? अगर मामा आयेंगे तो मैं तुम्हें समाचार भेजूंगी। तब तुम आओगी न?" यों पूछती हुई बड़े सहज भाव से कमरे का किवाड़ खोलकर बाहर आती हूं।

"उससे तुम्हें क्या बात करनी थी ?" कहकर गणेश उठता है। वह भी जवाब में कुछ कहकर उसे चुप कर देती है।

"भाई साहब को गांव जाना है ; उन्हें भुलाकर तुम मुझे चलने के लिए कह रहे हो। जरा ठहरो ! तुम्हें भी काफी पिलाती हूं। भाई साहब, आप खाने के लिए आइए।" मां जब इस प्रकार बुला रही है, तो उसके स्वर में एक प्रकार की दृढ़ता है जो सिर्फ मुझे मालूम हो रही है।

बंधा हुआ गट्ठर सोफे पर पड़ा है। मामा खाना खाने के लिए जाते हैं।

मामाजी अब पिंजरे में बंद शेर के जैसे दबे हुए हैं। इस मामले में उन्हें क्या करना है, उनकी समझ में नहीं आ रहा है। वह भी जब इनसे आमने-सामने मिले, तबसे मामा में कोई काम्प्लेक्स पैदा हो गया है – ऐसा मुझे लगता है। मामा समझ गये हैं कि मां को जैसे इस पर आक्रोश करने या झगड़ा करने से कोई लाभ नहीं है और वह उचित भी नहीं है। उस 'जेंटलमैन' से भेंट करने के बाद मुझसे बात करने का मामाजी को अवसर नहीं मिला। शायद उन्हें यह उचित प्रतीत हो रहा है कि मां मुझसे अलग होकर जा रही है। वरना, एक ही शब्द में वे मां को रोक सकते थे। अगर वे आग्रहपूर्वक कहें तो मां उनकी बात नहीं टाल सकती। एक प्रकार की 'अंडरस्टैंडिंग' में ही इनका 'नहीं' कहना घटित हो रहा है। कहीं मामा यह तो नहीं सोच रहे हैं कि मेरे अकेले रह जाने से उन्हें भी कुछ सुविधा हो जायेगी?

लेकिन उसी शाम मामा कहीं चले जाते हैं। जाते समय मेरे कमरे के भीतर आकर मेरे दोनों कंधों पर हाथ रखकर दबाते हुए, जैसे नमस्कार करने वाले को आशीर्वाद दे रहे हों, कहते हैं, "तुम जीत गयी हो। लेकिन खबरदार रहना। तुमसे मुझे बहुत बातें करनी हैं। अगले सप्ताह मैं आऊंगा। तब बातें करेंगे। अब मैं चलूं, होशियार रहना। तुम होशियार हो न?" कहकर गाल पर चिकोटी काटकर विदा होते हैं।

बाहर आकर मां से कहते हैं, "अगर तुम्हारे मन को शांति मिल रही हो तो गणेश के घर में जाकर कुछ दिन रहो। मैं तो बस इस मामले को यों ही देखता हूं। उससे ही क्या तुम्हारा

कोई बैर है? गणेश, मैं चलूं... ।"

मामा गणेश से ज्यादा नहीं बोलते। वह उनके विचार में मर्यादाहीन है, धृष्ट है। उसी समय, जब उसने मुझे घर से भगाया था, तब मामा जी मुझे ले जाने के लिए आये थे तो उसने मामा के प्रति आदरहीन व्यवहार किया था।

मामा चले गये। मां और गणेश भी चले गये। इस एक हफ्ते से मैं अकेली रहती हूं। मेरी विजय के फलस्वरूप आखिर यह अकेलापन ही मुझे प्राप्त हुआ है। अकेले रहना बहुत कष्टदायक है, शून्यता से भरा है। मैं तो हमेशा अपने ही भीतर अकेली रहती आयी हूं। फिर भी 'फिजिकली' उत्पन्न यह अकेलापन, प्रज्ञा में होने वाला एकांत भय उत्पन्न करता है। उस छोटे मकान में, मेरे कमरे में, अर्धरात्रि को, अंधेरे में सिर पर घूमते हुए पंखे को शून्य दृष्टि से देखती हुई यह जो लेटी हुई हूं, यह अकेलापन बड़ा दुखदायी है।

सड़क पर से, खिड़की से होकर जो रोशनी कमरे के भीतर आ रही है, उसका एक 'टुकड़ा' पंखे से लगकर घूम रहा है। उसी को देखती हुई मैं चित लेटी हूं। मेरे बगल में लंबा सा एक तकिया है। पैरों तले भी एक तकिया है। मैं बगल के तकिये पर हाथ फेरती हुई उसे एक बच्चा समझती हुई अपने आप हंस पड़ती हूं।

किसी प्रकार एक बच्चा ही सही, पाल लें तो कैसे होगा? मेरी उम्र तीस साल की हो गयी न? मां मेरे साथ ही रहती तो भी और कितने दिन तक? मां के बाद मेरा अपना कौन होगा? मैं किसके लिए कमा रही हूं? गणेश के बच्चों के लिए? गणेश के बच्चों में से किसी को गोद ले सकती हूं। गणेश सहमत नहीं होगा। मैं खुद एक बच्चा जन लूं तो कैसा हो? मैं खुद? इनके सहवास से...? छिः छिः! फिर कैसे? अगर सेक्स और बच्चे में संबंध नहीं रहता तो कितना अच्छा होता? आजकल परिवार नियोजन का बड़ी तीव्रता से जो प्रचार कर रहे हैं, वह उसी ढंग से होता है न? सिर्फ सेक्स अलग होना चाहिए, उसके परिणाम से बच्चा नहीं होना चाहिए — यही तो 'फैमिली प्लैनिंग' है? यानी सेक्स चाहिए, बच्चा नहीं चाहिए? निश्चय ही यह संभव होगा। कल्पना जितनी बड़ी क्यों न हो, आज का विज्ञान उन कल्पनाओं को यथार्थ में परिणत कर देता है। आज का युग ही ऐसा है। यह सब संभव होगा। जिन दंपति के बच्चे नहीं हैं, वे इस उपाय को अपना सकते हैं। कहते हैं, कृत्रिम उपाय से गर्भ धारण कराया जा सकता है, क्या किसी इंजेक्शन के द्वारा?...हां, वह संभव है। जीवाणुओं का स्टोर करके रख देते हैं, किसी अविवाहित कन्या को भी उन्हें इंजेक्ट कर दें तो औरों की तरह ही वह भी गर्भवती होकर समय पर बच्चा जन देती है। वैसा कुछ कर लूं तो कैसा रहेगा? मगर इस देश में कौन विश्वास करेगा?...वैसे मैं कर लूं तो भी लोग यही तो कहेंगे कि मैंने इनके सहवास से बच्चा पाया है। कहने दो। सब को बेवकूफ बनाकर ऐसा एक काम करना है। ओ ! फैंटास्टिक...!

क्या क्या अंटशंट सोच रही हूं! अकेले में इसी तरह और छह-सात घंटे पड़े रहना है।

उसके बाद दूधवाला आयेगा। दूध लेकर रख देने के बाद इनके और मंजु के आने की प्रतीक्षा करनी है। फिर टहलने जाना है। लौटकर जल्दी जल्दी रसोई करनी है। परसों एक 'कुकर' खरीद लिया है, अब रसोई बड़ी समस्या नहीं रह गयी। कुछ मिनटों में ही सब हो जाता है।

उस दिन, घर पर ताला लगाकर मैं इनके साथ टहलने के लिए निकली तो इन्होंने पूछा था, "घर में मां नहीं है क्या?"

"भाई के यहां गयी है।" मैंने जवाब दिया। कल इन्होंने पूछा था – "कोई झगड़ा तो नहीं हो गया? मां क्या नाराज होकर चली गयी है?"

"वैसा कुछ नहीं है।" मैं कह देती हूं। फिर भी ये समझ गये। आदमी मामूली नहीं हैं।

अगले इतवार को मंजु और इनको यहां आने को मैंने कह रखा है। कल इतवार था। कल भी मैं उनके यहां आ गयी थी। लेकिन कल एक अजीब बात हुई। अब तक पद्मा बाहर नहीं आती थी; कल वह अक्सर मेरी दृष्टि में पड़ती रही। लेकिन मुझसे नहीं बोली। मुझे देखकर मुस्कुरायी थी। वह भी शिष्टाचार के तौर पर। पता नहीं क्यों, वह मुझे पसंद नहीं करती है, यह बात उसके चेहरे से झलकती है। कैसे पसंद करेगी? तभी मुझे लगा कि इस प्रकार मेरा इनके घर में आकर घंटों डेरा डाले रहना उचित नहीं है। अब तो यहां कोई नहीं है। सोचा कि इन्हें और मंजु को घर ही बुला लूं तो कैसा हो? मैंने कहा, "अगले रविवार को हमारे यहां आइये। मंजु ! तुम वहां आ जाना।" मंजु को बड़ी प्रसन्नता हुई।

"खाली बुलाने से क्या होगा? भोज होगा?" ये पूछते हैं।

"भोजन के लिए किसी होटल में चले जायेंगे।" मंजु कहती है।

"क्यों? हमारे घर में ही भोजन होगा। मैं खुद सब तैयार करूंगी। मंजु, तुम मेरी मदद करोगी?" मैं पूछती हूं।

"ओ यस। आपकी सब प्रकार की सहायता मैं करूंगी। पिताजी की भाषा में 'भोज' का मतलब 'नान-वेजिटेरियन' होता है, इसलिए मैंने कहा कि किसी होटल में चलें।" मंजु ने स्पष्ट किया।

"आय कैन नाट हेल्प इट।" मैं हाथ पसार देती हूं।

"नो ! नो ! आप के यहां के भोजन में मैं क्या उन सब चीजों की अपेक्षा करूंगा? गंगा अपने हाथ से बनाकर जो भी खिलाए, वह मेरे लिए भोज ही होगा," ये कहते हैं। नींद नहीं आयी। अभी पांच दिन हैं इतवार के लिए। इतवार के भोजन में क्या क्या बनाना है, मैं अभी से सोचने लगी हूं।

21

दूध वाले के आने तक बिस्तर पर ही लेटी रहूं – इस विचार से चादर को खूब तानकर ओढ़ लिया। कभी शक होता है, अभी आधी रात का ही तो समय नहीं है ? उठकर घड़ी देखना चाहती हूं, लेकिन आलस्य है...। देखकर क्या करना है ? धीरे धीरे सवेरा होने दो।

अचानक एक विचार उठता है। बाहरी फाटक बंद करके सांकल लगा दी थी, उसी प्रकार क्या पिछवाड़े के दरवाजे को बंद किया था या नहीं? शायद सांकल लगाना भूल गयी हूं? अब जाकर देख लूं...? नहीं। जो समय बीत गया सो बीत गया। दूधवाला आवाज देगा, तब उठकर देख लूंगी। कोई चोर आ गया हो और रसोईघर के बर्तन उठाकर ले गया हो तो? ले जाने दो ! मैं अकेली इस घर में रहती हूं – यह बात मुहल्ले भर में फैली है। आज नहीं हो तो किसी दिन यहां चोर आयेगा। आकर जो भी चीज चाहे ले जाये। इस कमरे में न आये, बस मेरे लिए इतना काफी है। इस कमरे में क्यों आयेगा? चोरी करने के लिए जो आयेगा, वह तो यथासंभव घर के लोगों की आंख बचाकर ही, जो कुछ मिले उसे उठाकर ले जाने का यत्न करेगा। दरवाजा खटखटाकर थोड़े ही आयेगा?

आज क्यों चोर के संबंध में इतनी चिंता हो रही है? घर में अकेला रहने के कारण ही। अब तक तो चिंताएं नहीं थीं, वे सब उठ रही हैं। जब मां रहती थी, तब मुझे ऐसी चिंताएं नहीं होती थीं। उसके न होने पर ऐसा लगता है, जैसे सारे घर का भार मैं ही उठाए हुए हूं। बोझ महसूस होता है, लेकिन कोई भी चीज अपनी नहीं लगती। अगर थोड़ी सी हींग भी निकालनी हो तो 'शेल्फ' में रखे सभी डिब्बे खोलकर देखने पड़ते थे। अब खूब याद हो गया है कि हींग की डिबिया कौन सी है। लेकिन मेथी वाली डिबिया कौन सी है – भूल गयी। चुपचाप, हर डिबिया पर सामान का नाम लिखकर कागज की चिट चिपका देना चाहिए।

अगर कोई बड़ी उम्र वाली स्त्री रसोई करने को मिल जाये तो मैं रख लूंगी। तब मां को बुरा लगेगा। बर्दाश्त नहीं करेगी। तीसरे दिन ही स्वयं आकर यहां बैठ जाये और उस रसोइयाइन को भगा दे तो भी आश्चर्य नहीं है। किसी नौकरानी को रख लिया जाये। देखा जाये कि मां की प्रतिक्रिया क्या होगी ? यह देखने के लिए ही सही, किसी बुढ़िया को लाया जाये। मां से ही कहकर रसोई बनाने के लिए किसी बुढ़िया को नियुक्त कर दूं तो कैसा रहेगा? तिरुवल्लिक्केणी में कोई नौकरानी मिल सकेगी, मां की कोई परिचित होगी। मेरे लिए साथिन होगी, मेरा काम भी हल्का हो जायेगा। नहीं तो, मामा कभी अचानक आ बैठें और उनको मैं

रसोई बनाकर खिलाऊं, पैर दबाती रहूं...उनके साथ इस घर में अकेली रहने की बात सोचने मात्र से जाने, मेरा मन कैसा हो रहा है। लग रहा है, घर के भीतर जैसे कोई चोर आ गया है। सवेरा होते ही पहला काम यही करना है। मां से मिलकर कोई नौकरानी तय करनी है।

टहलने जाते वक्त या लौटते वक्त मां से मिलकर कह दूंगी। इनकी कार में ही जाकर क्या गणेश के घर के सामने उतरूंगी? छिः छिः, वैसा नहीं करना चाहिए। गणेश समझ लेगा कि मैं उसकी 'इंसल्ट' कर रही हूं। वह घर के बाहर खड़ा होकर अगर यह दृश्य देखेगा तो यह कहकर कि 'अरी ! क्यों यहां आकर मेरी इज्जत बिगाड़ रही है' मुझे थप्पड़ मार देगा। वाकिंग से लौटते 'पाईक्राफ्ट्स रोड' पर ही उतर जाऊंगी। उतरकर क्या मैं स्वयं गणेश के घर जाऊं? बारह वर्ष के बाद क्या उसके घर में खुद जाऊं? बहुत खूब ! उसकी मां जा सकती है। चाहे लाख बातें कह ले, तो भी यह उसकी मां है, वह इसका बेटा है। मेरा उसके साथ वैसा रिश्ता नहीं है न। वहां जाकर घर के बाहर खड़ी होकर आवाज दूंगी तो मां चली जायेगी। उसके आते ही उसे बात बताकर वापस आना है, बस इतनी ही तो बात है। पैदल नहीं जाऊंगी। 'पाईक्राफ्ट्स' रोड से एक टैक्सी कर लूंगी और उसके घर के सामने जाकर बात कर लूंगी। आगे का पोर्शन ही तो है। खिड़की से या तो भाभी दिखाई देगी, या गणेश दिख जायेगा, या नहीं तो मां या कोई बच्चा क्या नहीं दिखाई पड़ेगा?

अब कितने बजे हैं? क्या सवेरा ही नहीं होगा? रात्रि क्या इतनी लंबी होती है? हां, दिन की वेला जितनी ही। नौ बजे बिस्तर पर लेट गयी थी। पांच बजे तब आठ घंटे का समय होता है। अगर यही दिन का वक्त होता तो कितना काम हो जाता। दिन का समय वैसे ही बीत जाता, कुछ काम नहीं होता। अगर सवेरे नौ बजे से लेकर शाम के पांच बजे तक बिस्तर पर पड़ी रहूं तो उसमें कैसी बड़ी 'बोरियत' होगी ! सोये बिना लेटे रहेंगे तो चाहे वह दिन हो, चाहे रात सब बराबर है।

लगता है कि मैं कुछ सो गयी। अब भोर होने को है।

लो ! स्पर्टांग रोड पर बस जाने की आवाज आ रही है। शायद कोई ट्रक होगा। यह लो, कौआ बोल उठा। मद्रास में तो कौआ किसी भी वक्त बोल उठता है। रात्रि के नौ बजे भी कौओं को बोलते हुए मैंने सुना है। सड़क पर लोगों के आने-जाने की आहट आरंभ हो गयी है। कोई गाय को हांकता हुआ चला आ रहा है। आवाज सुनाई पड़ रही है।

"दूध लो।"...दूध वाले की आवाज दो-तीन घर के पीछे कहीं से सुनाई देती है। कहीं किसी घर के सामने पानी छिड़का जा रहा है। कड़ी धरती पर नारियल की सीकों वाले झाड़ू के रगड़ रगड़कर चलाने की आवाज सुनाई दे रही है। मैं उठकर बिस्तर पर बैठी बैठी खिड़की से बाहर देखती हूं। अभी कुछ कुछ अंधेरा है। फिर भी सवेरा हो गया है। अब कितने बजे हैं? बत्ती जलाकर देखती हूं। पौने पांच हुए हैं।

सवेरे का समय मन को उत्साह देता है। रात को मैं ठीक से नहीं सोई थी। फिर भी मन में उत्साह है। मैं कमरे से हाल में आकर वहां की बत्ती जला देती हूं। पहला काम — पिछवाड़े के दरवाजे की तरफ देखती हूं। किवाड़ बंद हैं, सांकल लगी है। फिर भी मुझे बेकार में कैसा डर लग रहा था ! मन ही मन अपने को डांट लेती हूं। फिर बाथरूम जाकर हाथ-मुंह धो लेती हूं। रात के सारे बर्तन वगैरह धोने के लिए पड़े हैं। सिर्फ दूध का बर्तन मांज लेती हूं।

यह दूधवाला आ गया। दूध लेने के लिए बाहरी दरवाजा खोल देती हूं। भोर का उजाला खूब फैल चुका है। सामने वाले मकान पर रंगोली बनायी जा रही है। मुझे भी दूध लाकर रखने के बाद रंगोली की दो लकीरें खींचनी हैं। मां इन सब कामों के लिए ही सही एक नौकरानी रख सकती थी। बेचारी! सारा काम वह अकेली करती रही। अब मुझे एक नौकरानी को ढूंढ़ना है। इस एक हफ्ते से मैं खुद सारा काम करती रही हूं। रोज रोज करने में कष्ट होगा। अगर यही काम हो तो सदा करते रह सकेंगे। मां कहती है न —'बर्तन मांजते मांजते बदन मंज गया, इमली धोते धोते जिंदगी ही धुल गयी।' सच ही है।

"क्या बड़ी मां अभी नहीं आयी है?" दूध बर्तन में भरता हुआ दूधवाला पूछता है।

"नहीं, वह अपने बेटे के यहां गयी है।" मैं जवाब देती हूं।

वह भी कुछ कुछ समझ रहा है — ऐसा लगता है। इसी मुहल्ले में कितने ही घरों में दूध देने जाता है। कितने आदमी क्या क्या कहते होंगे। यह सब जान लेता है। पड़ोसी इसे बातों में उलझाकर कुछ पूछते-कहते होंगे।

दूध लेकर लौट पड़ती हूं, तभी पेपर आ जाता है। दूध ले जाकर ढककर रख देती हूं। पेपर पढ़ने की इच्छा से हाल में आती हूं। सोफे पर बैठकर पेपर खोलती हूं।

बाहर कार की आवाज सुनाई देती है। सोचा कि ये ही आये हैं, उठकर देखा तो टैक्सी खड़ी है। हाय राम !...मामाजी आये हैं। हाथ में चमड़े का बैग लिये चले जा रहे हैं। हां, वे कह गये थे न 'अगले हफ्ते आऊंगा', लेकिन यह याद ही नहीं रहा कि वह हफ्ता इतनी जल्दी आ गया। क्या मुसीबत है ! आज मां को बुला लाना पड़ेगा।

मामा बड़े कौतूहल से भरे आ रहे हैं। "कल शाम ही चल पड़ा था। रेल ने ठीक पांच बजकर चालीस मिनट पर 'एगमोर' में लाकर उतार दिया। यह खूब है। किराया भी कम है...! अच्छी हो?" मेरा हाथ पकड़कर पूछ रहे हैं।

"अच्छा हुआ, मैंने सोचा, तुम कहीं वाकिंग के लिए चली गयी होगी और मुझे बाहर ही खड़ा रहना पड़ेगा।"

"बैठिए। अभी काफी बनाकर लाती हूं।" कहकर उनसे छूटकर रसोईघर में चली जाती हूं। बर्तन साफ करती हूं। मामा पेपर पढ़ते हुए हाल में बैठे हैं।

मुझे मालूम है, इस समय मामा का मद्रास में कोई काम नहीं है। मेरे साथ अकेले में रहने की इच्छा से ही ये दौड़े आये हैं। हां, मुझे साफ मालूम हो रहा है। मामा प्रतिदिन यह

कल्पना करते हुए कि मैं 'इनके' साथ इस एक सप्ताह में बड़े मजे में रह रही होऊंगी, आह भरते होंगे। मन नहीं मानता होगा। रोज गिनते रहे होंगे और कल शाम ही रेल पर चढ़ गये। बड़े सवेरे यहां पहुंच जायें तो यह भी देख लेंगे कि 'ये' यहीं तो नहीं रहते हैं — इस प्रकार सोचा होगा।

बर्तन साफकर कॉफी बनाती हूं और मामा के पास लाकर रख देती हूं। मामा मेरी तरफ यों देखते हैं जैसे मुझे तौल रहे हों।

"कनकम उस दिन जो चली गयी, क्या फिर तुम्हें देखने आयी थी?" पूछ रहे हैं।

"नहीं, मैं ही आज जाकर उसे देखने वाली हूं।" मैं जवाब देती हूं। उसके वाद कुछ न कहकर मामा काफी पीते हैं। मैं भी खड़ी खड़ी काफी पीती हूं। वे कुछ कहने जा रहे हैं। इसी की मैं प्रतीक्षा कर रही हूं। वह क्या कहने वाले हैं — मालूम है। 'तुम किसलिए उस घर में जाती हो? चाहे तो वह स्वयं ही आयेगी'—ऐसा ही कुछ कहने वाले हैं।

करेक्ट ! मामा वही कहने लगते हैं।

"गणेश ने तुम्हें बाहर निकाल दिया, उसके बाद से तुम उस घर में नहीं गयीं न?"

"नहीं।"

"वही यहां आया करता है न?"

"उसकी मां रहती है यहां। मां से मिलने के लिए आता है। दादी को देखने पोते भी आते हैं।" मैं कहती हूं।

"ओ ! उसी तरह तुम अब मां से मिलने वहां जा रही हो।" कुछ मजाक सा करते हुए काफी का प्याला आगे करते हैं। उसे लेते हुए मैं कहती हूं, "मैं उस घर के भीतर नहीं जाऊंगी। बाहर ही खड़ी खड़ी मां को आवाज दूंगी और बता दूंगी कि मामाजी आये हैं, घर आ जाओ।" इतना स्पष्टीकरण देकर रसोई में चली जाती हूं। लगता है, मामा उठकर पीछे पीछे आ रहे हैं। रसोईघर की ड्योढ़ी पर से बोलते हैं—"तो क्या तुम मेरे कारण ही वहां जाने वाली हो?"

"हां। उस दिन जाते समय मां कह गयी थी कि जब आप आयें तो उसे खबर दूं।"

"ओ ! मैं तुमसे अकेले में बात करने के लिए ही तो अब आया हूं।"

"उससे क्या, हम क्या अकेले में बात नहीं करते हैं? मां क्या हमेशा हमारे साथ ही बैठी रहती है? वह स्वयं आपसे बोली होगी कि क्या बात करनी है।"

मामा हंसते है।। यह हंसी किसलिए — पता नहीं। जानबूझकर झूठ-मूठ हंस रहे हैं। "तुम बड़ी चंट हो गयी हो।" कहते हुए चुटकी काटने के लिए मेरे पास आ रहे हैं। बाहर कार के हार्न की आवाज सुनाई पड़ती है "मामा, आप नहा लीजिए। 'बायलर' में पानी गर्म होने के लिए रख दिया है...ठहरिए ! दरवाजा बंद कर लीजिए ! मैं जरा बाहर होकर आती हूं।" कहकर कमरे में जाकर सिर के बाल संवार लेती हूं। चप्पल पहन लेती हूं, कमरे को खूब बंद

करके मामा को 'टाटा' करके चल पड़ती हूं।

मामा क्या जवाव देते हैं, उनके मुख का भाव कैसा है – यह मैंने गौर नहीं किया।

मां आ गयी। सवेरे जैसे कि मैंने योजना वनायी थी, 'पाईक्राफ्ट्स' रोड से एक टैक्सी करके उस घर पर गयी। कार से नहीं उतरी। सड़क पर से ही खबर देकर चली आयी। गणेश की बेटी शांता कितनी बड़ी हो गयी है ! वही मुझे देखकर दौड़ी आती है, कार के भीतर हाथ देकर 'आइए' कहकर मुझे खींचती है।

"दादी को बुलाओ।" कहती हूं। वह लड़की–"दादी। दादी। फूफी आयी है," कहकर दौड़ती है। दौड़ने के वेग में कहीं लहंगा पैर में उलझ न जाये, कहीं वह गिर न जाये – यह आशंका होती है।

जाने कौन कौन आकर खड़े खड़े मेरी तरफ देख रहे हैं। लगता है – पहले के रहने वाले कई अब और कहीं वदली होकर चले गये हैं। अजनबी चेहरे दिखाई दे रहे हैं। मां आती है। लगता है – डर गयी है कि कुछ वात हो गयी है।

"क्या है री, बात क्या है?" घबराहट से पूछती हुई कार के पास आकर खड़ी होती है।

"कोई वात नहीं है। मामा आये हैं। सवेरे किसी प्रकार संभालकर काम निपटा लूंगी और दफ्तर चली जाऊंगी। दोपहर तक तुम वहां आ जाना।" मैं कहती हूं।

मां के मुख पर गर्व का भाव। उसके विना कुछ न चलेगा। होने दो।

झुककर कान में कहती है "अभी कहे देती हूं। एक दिन या दो दिन – मेरे रहते समय उन लोगों को नहीं आना चाहिए।" शर्तें बताती है।

"ठीक।"

इसमें इस मां को कैसी तृप्ति है –मन में सोचती हूं।

मामा को थोड़ा धोखा सा हुआ। मैंने लौटते हुए 'कुकर' में रसोई का कुछ सामान रखकर चूल्हे पर चढ़ा दिया और नहाने के लिए चली गयी। नहाकर आयी और मामा को खाना परोस दिया। मामा मेरी रसोई की बड़ी तारीफ करते हैं। कहते हैं, "दफ्तर से अवकाश ले लो।"

"हाय ! हाय ! आज बहुत जरूरी काम है, दफ्तर में हाजिर होना जरूरी है।" झूठ कहकर मैं निकल पड़ती हूं।

ये ही आकर मुझे दफ्तर ले जाते हैं। उस समय मामा बाहर आकर खड़े हो जाते हैं और इन्हें देखकर विश करते हैं। ये भी बड़े अदब से कार से उतर पड़ते हैं और 'गुड मार्निंग' कहकर पूछते हैं "कब आये?" उसके बाद मामा से विदा लेकर जब मुझे कार में लिये जा रहे हैं तभी, इतने दिनों के बाद इन्हें यह पूछने की सूझी है, "हां, क्या तुम्हारे मामा ने मेरे बारे में कुछ नहीं पूछा? कोई आदमी अकसर किसलिए हमारे घर की लड़की को कार में ले जाता है – पूछते नहीं?"

मैं हंसते हुए कहती हूं, "ही नोज एवरीथिंग। आप क्या 'कोई' आदमी हैं?" इन्हें जैसे 'शाक' सा लग जाता है।

"व्हाट् डू यू मीन?"

"आइ मीन व्हाट आय से।" कहकर फिर उन्हें समझाती हूं, "जान लें तो क्या? जानकर जब वे चुप रह जाते हैं तो हमें भी वैसी नरमी दिखानी चाहिए। जब वे 'डेअर डेविल' ढंग से कुछ पूछेंगें, तब हमें भी उसी प्रकार 'हां' कहकर हिम्मत के साथ जवाब देना है। नहीं क्या?"

"वह कैसे? उनके जैसे एक बड़े आदमी के साथ..." कहते हुए ये भौंहें सिकोड़ते हैं।

"क्यों? आप भी क्या बड़े आदमी नहीं है? इसीलिए तो वे आपके साथ अदब से पेश आते हैं। वे शिष्टाचार जानते हैं। आपसे वैसी कुछ बात नहीं करेंगे — मैं आश्वासन देती हूं।"

अब मैं दफ्तर से लौट रही हूं। रसोईघर से आवाज आ रही है। मां आ गयी है।

"यह कुकर-वुकर सब क्या है? मुझे ठीक नहीं लगता।" वह बड़बड़ा रही है।

लगता है, मामा इसी इंतजार में हैं कि मैं कब आऊं। सवेरे जब मैं दफ्तर के लिए चल पड़ी, तभी कहा था — जल्दी आ जाना। मैं भी इसलिए आज इनसे न आने को कहकर टैक्सी करके घर आ गयी हूं।

आजकल मैं बस से नहीं जाती हूं। अब मैं जैसे कपड़े पहनती हूं और सिंगार करती हूं, उसके साथ बस में चलना उचित नहीं लगता।

"आओ। जल्दी आ गयी न !" कहकर मामा स्वागत करते हैं। मां ने नाश्ता बनाया है। उप्पमा की सुगंध उठती है। मां का घर में रहना मुझे प्रसन्नता दे रहा है। सुविधापूर्ण है।

मैं और मामा हाल में बैठकर नाश्ता खा रहे हैं।

फिर मामा ऊपरी मंजिल पर आने के लिए मुझे बुलाते हैं।

"आ जाओ न! ऊपर छत पर जरा खुली हवा में बैठेंगे। मुझे तुमसे कुछ बात करनी है अकेले में।" मां के कानों में भी यह बात पड़े — इस तरह सीढ़ियों पर खड़े खड़े ऊंची आवाज में बुलाते हैं।

मैं भी जाती हूं।

वहां एक बेंत की कुर्सी पड़ी है जो वर्षा में भीगकर, धूप में सूखकर सफेद और काली होकर रह गयी है। मामा उस पर बैठने लगते हैं।

"यह कुर्सी तो अच्छी है। इसे क्यों इस प्रकार खराब कर डाला है? 'पेंट' कर देंगे तो अभी दस वर्ष तक चलेगी?" कुर्सी को हिलाकर, झाड़कर देखते हैं।

फिर मेरी तरफ देखते हुए, "हाउ इज लाइफ?" कहकर आंख मारते हुए पूछते हैं।

"फाइन।" कहकर मैं हंस देती हूं।

22

मामा गांव चले गये। मां गणेश के यहां चली गयी। मैं पुनः अकेली पड़ गयी। सब लोग अभी अभी गये हैं।

रिश्ते, अपनापन, स्नेह —सब बस इतना ही। साथ में जन्मे हों, अपने ही पेट से पैदा हुए हों — सभी का बस यही हाल है। आखिर तक जो अलग नहीं किया जा सके, वह बंधन तो सिर्फ पति-पत्नी का रिश्ता ही होता है। पसंद हो, या न हो, एक-दूसरे के साथ अनुकूलता होती हो या न हो, वही एक ऐसा बंधन है जो अंत तक चिपका रहता है। तलाक देने पर भी क्या? एक संबंध को 'डाइवोर्स' करके ही दूसरा संबंध बन सकता है — इस सीमा तक मुख्य है यह संबंध! वैसा न करें तो अकेले पड़ जाते हैं। बंधुहीन अकेलापन ही तो है यह! अगर उस प्रकार का कोई रिश्ता बन जाये तो फिर 'कोई जाये तो जाने दो — मुझे क्या' — कहकर चुप रहा जा सकता है। अगर वैसा रिश्ता नहीं मिला हो तो जन्म देने वाले, साथ पैदा होने वाले — चाहे जितने भी लोग हों, लेकिन अकेलापन नहीं जाता।

यही एक संबंध ऐसा है, जिसमें तलाक दिया जा सकता है, या पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि यह संबंध अत्यंत आवश्यक है और आधारभूत है। अन्य संवंध सभी वैसे ही घटित होने वाले हैं, चाहे हम पसंद करें या न करें, वे संबंध हो जाते हैं। वे संबंध ऐसे हैं जो घटित हो जाने के कारण आवश्यक लगते हैं, परंतु यह संबंध ऐसा है कि जो आवश्यकता से घटित होता है।

इसलिए मां को, भाई को, मामा को — किसी को 'डाइवोर्स' नहीं किया जा सकता, उस प्रकार का नया संबंध भी नहीं बनाया जा सकता।

यह संबंध ऐसा नहीं है। यह वहुत ही जरूरी, बुनियादी, अन्य सभी संबंधों का आधार बना हुआ है। इसीलिए लोग इसे बनाते हैं।

मुझे, बस, यही संबंध नहीं प्राप्त हुआ। इसलिए मेरा कोई रिश्ता ही नहीं रह गया।

अब मामा नहीं आयेंगे। जैसे उस रिश्ते से 'डाइवोर्स' हो गया है। इसलिए अब मां भी नहीं आयेगी। और कोई बहाना करके बुलाना होगा...मां साथ में होगी तो अच्छा ही होगा। क्या करें?

मां बैठी रहती थी न, उसी प्रकार मैं भी बैठी हूं। घर के बाहरवाली बत्ती जला रखी है। मां को शायद घर के भीतर अकेली बंद रहना अच्छा नहीं लगता है, इसीलिए वह अकसर

बाहर चबूतरे पर आकर बैठ जाती थी। मैं अब अकेली हूं तो यह बात साफ हो रही है। जरा सड़क पर दृष्टि फेंकूंगी तो अच्छा होगा। लेकिन कठिनाई है। मैं कैसे सड़क पर आकर देख सकती हूं ? सारी गली तो मेरा तमाशा देख रही है ! इस गली के लिए शायद मैं एक कहानी बन गयी हूं। मेरी कहानी को एक बड़ा पुराण बनाकर सुना रहे हैं लोग।

हाथ में एक पुस्तक लिये मैं ये सारी बातें यों देख रही हूं, जैसे कुछ भी नहीं देख रही हूं।

यह कौन सी पुस्तक है? कुछ अच्छी नहीं लग रही है। पढ़ना शुरू कर दिया है तो क्या वैसे ही रख दिया जाये? 'अच्छी नहीं, अच्छी नहीं' गुनगुनाते हुए ही पढ़ लेना पड़ता है। क्या कहीं कुछ अच्छी नहीं होगी? — ऐसी कुछ आशा है। अरे ! ऐसा मौका ही नहीं देगा यह लेखक। ऐसा ही लग रहा है। पन्ने पर पन्ने पलट रही हूं।

एक रेडियो खरीद लेना है। ऐसी इच्छा मुझे कभी नहीं हुई। वरना रेडियो क्या कोई बड़ी चीज है ? कल ही एक खरीदकर ले आऊंगी। पड़ोस के घर से रेडियो की आवाज कानों के पर्दे फाड़ रही है। हमारे घर से भी वैसी ही फाड़ती आवाज निकलती रहे। अकेली रहती हूं तो ऐसा लगेगा न, जैसे कोई संग में रहकर बात कर रहा है। मुझे गाना भी पसंद नहीं है। गीत कैसे हैं? संगीत क्या है? मैं समझती ही नहीं।

ड्योढ़ी पर ही बैठी हूं। भीतर जाने को मन नहीं हो रहा है। भीतर शून्यता भरी है, मां जाते जाते रसोई भी बनाकर रख गयी है।

इसलिए यह काम भी नहीं रहा। वरना उसी बहाने से थोड़ा समय कट जाता। समय नहीं कट रहा है, इसीलिए बैठी हूं। चलकर मंजु से मिल आऊं तो कैसा हो? छिः ! ख्याल आते ही भागना क्या ठीक है? मैंने इनसे भी न आने को कह दिया था। मां की अज्ञानता भरी इच्छा को पूरा करने के लिए दो दिन से इन्हें यहां न आने दिया — और उसके लिए कुछ कारण बताती रही। अब आकर मां को भी भेज चुकी हूं। अकेली रह गयी हूं। क्या मेरा अपना कोई नहीं है? सब शून्यता से भरा है। किसी को कोई मतलब नहीं है। यह पुस्तक एक और बोर है। कमबख्त किताब को बंद ही कर देती हूं !

बाहर दरवाजे पर कोई खड़ा है — ऐसा लगता है...। "कौन है?"

"मैं हूं, मामी!" यह छुटकी मेरी मां की दोस्त है। आज हाथ में 'पांडी' खेल की ठीकरी नहीं दिख रही है। फाटक हाथ से पकड़े सिर्फ सिर को रोशनी में आगे बढ़ाए बोल रही है। इसे देखने में कितना आश्वासन हो रहा है। "आ जाओ," कहकर बुलाती हूं। मानो इसी की प्रतीक्षा में बैठी होऊं। उठकर जाती हूं और फाटक खोल देती हूं। मां नहीं है — यह जानकर कहीं भागकर न चली जाये, इस विचार से उसका हाथ कसकर पकड़े खींच लाती हूं। उस दिन जब यह बच्ची अपने आप बात करने के लिए मेरे पास आयी थी, तो कहीं मुझसे आकर

चिपक न जाये – यह सोचकर मैं डरती हुई हट गयी थी। अब मैं स्वयं जाकर उससे चिपक रही हूं।

"अपना नाम बताओ।"

"मीना।"

"इस वक्त कैसे आयी? क्या चाहिए? कौन सी क्लास में पढ़ती हो?" –एक सवाल पूछने पर झट उत्तर देकर भाग न जाये, इसलिए सवालों का तांता लगा देती हूं। उसकी समझ में कुछ नहीं आया शायद। यह समझती होगी कि मैं बड़ी घमंडी हूं। आज कैसे स्वयं ही इतनी बातें कर रही हूं – उस पर इसे शायद आश्चर्य हो रहा है। साथ ही अब इसे गर्व हो आया है। तार की भाषा शैली में जवाब देती है।

"सिक्स्थ स्टैंडर्ड...सेवा सदन में।"

मैं उसे खींचकर अपने बगल में बिठा लेती हूं।

"कैसे आयी? क्या बात है?"

"कुछ नहीं। आपके घर आये मेहमान सब चले गये, दादी भी चली गयी – यह मेरी चाची ने कहा। मैंने कहा, नहीं। चाची ने बाजी लगायी। मैं देख लेना चाहती थी। इसलिए आयी हूं। दादी भीतर है न?" वह भीतर की ओर झांकती है।

क्षण भर मेरे मन में क्रोध उमड़ता है। ये लोग दूसरे लोगों की निजी बातों पर बाजी तक लगाते हैं – इतनी क्या दिलचस्पी है? मैंने मां को घर से भगा दिया – ये लोग यही कह रहे होंगे।

"तुम्हारी चाची ने बाजी क्या लगायी है।" मैं पूछती हूं। वह नहीं बता रही है। मुझसे जो कुछ कह दिया है शायद वही बहुत कुछ है। ओंठ चबाते हुए, सिर झुकाए, बड़ी गंभीर मुद्रा में पैर के अंगूठे से फर्श पर लकीर बनाती हुई बैठी है। मन में होता है – इसके सिर पर तड़ाक से एक थप्पड़ लगा दूं।

"मामी ! मैं एक बात पूछती हूं, बतायेंगी?" किसी बात की भूमिका बांध रही है।

"हूं, पूछो। बताऊंगी।" मैं कुछ शिथिल पड़ जाती हूं।

"लोग कह रहे हैं कि दादी आप से नाराज होकर चली गयी है। आप में और दादी में क्या झगड़ा है? क्या दादी अब वापस यहां नहीं आयेगी?"

समझ में नहीं आया, क्या उत्तर दूं ? मन में खेद हो रहा है। शायद मेरी मां ने स्वयं किसी को अपना दुखड़ा सुनाया होगा।

"झगड़ा कैसा? क्या बकवास है? कौन कहता है? वह मेरे भाई के यहां गयी है। लौट आयेगी।" मैं संभलती हूं।

"क्या आप अकेले रहेंगी?"

वह और कुछ पूछना चाहती है। लेकिन शायद इस ख्याल से कि पूछना ठीक नहीं, चुप

बैठी है। 'बेचारी! इस पर गुस्सा क्यों करूं?' मैं सोचती हूं इसके मन के पटल पर शायद मेरे कार में जाने और कार से आकर उतरने का दृश्य घूम रहा है।

"हां। अकेले ही रहना है। परेशानी तो है ही। क्या तुम मेरे साथ आकर रहोगी?"

"यहां? हमेशाा के लिए?"

"हां।"

"हाय री ! मुझसे नहीं होगा। मेरी मां मारेगी।"

"वह नहीं मारेगी। थोड़ी देर यहां रहकर फिर तुम अपने घर लौट सकती हो। मुझे भी तो दफ्तर जाना पड़ता है। और काम करने पड़ते हैं। कल मैं एक नया रेडियो लाने वाली हूं। तुम आकर देखना, अच्छा?"

"अरे ! अरे ! अब रेडियो क्यों खरीद रही हैं? ट्रांजिस्टर खरीद लीजिए, मामी !" कितनी चतुराई से बात करती है यह लड़की !

"हां ! हां ! बात तो ठीक है, ट्रांजिस्टर ही खरीद लूंगी।" इतने में कहीं से 'मीना' — आवाज सुनाई देती है।

"अभी आयी ,चाची!" कहकर मुझसे कहती है, "कल आऊंगी, मामी ! टाटा !" लड़की भाग जाती है।

मैं फिर पुस्तक खोलकर रख लेती हूं। मन पुस्तक में नहीं लग रहा है। यह विचार करके कि अब मामा यहां नहीं आयेंगे, मन में एक प्रकार का कौतूहल उत्पन्न होता हे। मामा की दशा पर मुझे कौतूहल? — मुझे दुख भी होता है। पिछली बार जब आये थे, तब उन्होंने कहा था, 'गंगा ! तुम जीत गयी हो !' इस बार आये तो अपनी पराजय को बगैर कहे जता दिया। उसे स्वीकार करके चले गये।

कल रात दस बजे तक मैं और मामा छत पर बातें करते हुए बैठे रहे। कल ही पहली बार मैंने मामा के साथ कठोर व्यवहार किया। वही आखिरी बार भी हो गया।

हम, जाने क्या क्या बातें करते रहे। कुछ समय बातचीत थोड़ी दिलचस्प भी रही। मामा से ज्यादा रोचक ढंग से कौन बात कर सकता है ?

मैं अपनी स्थिति के बारे मैं, अब अपना जीवन किस प्रकार व्यवस्थित करूंगी, इस संबंध में मैंने क्या निर्णय किया है आदि बातों की चर्चा उनसे कर रही थी। लेकिन वे, कुछ समय तक गंभीर चर्चा करते हुए रहे, फिर अचानक बड़ी हल्की — निम्नस्तरीय बातों पर उतर आये। इनके बारे में और इनसे मेरे संबंध के बारे में बहुत ही अटपटे ढंग से जैसे आंकड़े इकट्ठे कर रहे हों — इस तरह कुछ पूछने लगे। न जाने क्यों, मेरे तन-बदन में आग लग गयी।

वे उसी कुर्सी पर बैठे थे। मैं नीचे फर्श पर दीवार से पीठ टिकाकर, घुटनों को बांहों से बांधे, बैठी उनके प्रश्नों के उत्तर दे रही थी। उनका पैर बार बार मेरी जांघ से आ लगता

है। मैं थोड़ा सरककर हट जाती हूं। जो बात चल रही है उसमें यह एक बाधा सी उत्पन्न होती है। ऐसा एक नीच कार्य करते हुए वे किस प्रकार उसी समय में एक ऊंचे विषय पर चर्चा कर रहे हैं? अचानक क्रोधावेश में मैं दांत किटकिटाकर निस्तब्ध रह जाती हूं। वे क्या बोल रहे हैं — मैं नहीं समझ पा रही हूं। आजकल मेरी ऐसी दशा हो गयी है कि अगर किसी विषय पर मन न लगे तो उसके बारे में क्या बोला जा रहा है, मेरी समझ में नहीं आता है।

मामा कुछ कहते कहते पैर के अंगूठे और दूसरी उंगली से मेरी जांघ में चिकोटी काट देते हैं। मैं अपना नियंत्रण खो बैठती हूं। उस अंधेरे में यह भूलकर कि ये मेरे मामा हैं, 'ब्लैक गार्ड' कहती हुई में झट उठ जाती हूं। मानो मेरी बात उनके कानों में न पड़ी हो, यों मामा हंस देते हैं। लेकिन मैं यह कह देने पर मन ही मन व्यथित होती हूं। तुरंत वहां से चले जाना ठीक नहीं लगेगा — यह सोचकर मैं वहां दीवार के किनारे खड़ी होकर अगली गली की ओर देखती रह जाती हूं।

मामा का स्वभाव मुझे मालूम है, फिर भी मुझे उनके प्रति क्रोध नहीं दिखाना चाहिए था। मामा के व्यक्तित्व में ऐसी एक बलहीनता भी सम्मिलित है। बातें करते समय मैं जो सरक गयी थी, बस उतना ही पर्याप्त था। मैं सोचती हूं, मुझे अपने मुंह से 'ब्लैक गार्ड' शब्द नहीं कहने चाहिए थे। मेरी जुबान भी कुछ वढ़ चली है—मैं अपने आपको डांट लेती हूं। यह चाहे जैसा भी गलत काम हो, मामा सिर्फ 'यही' नहीं हैं; उन्होंने जो मेरी सहायता की है, उनकी जो हैसियत है, उनकी जो आयु है, उनका जो मेरे प्रति वास्तविक अनुराग है —इन सबको विचार करते हुए यह सोचकर कि इनकी ऐसी टेढ़ी बुद्धि क्यों है —मैं व्याकुल होती हूं। इनकी उम्र क्या है, मेरी उम्र क्या है? इनकी चंचलता इस सीमा तक क्यों बढ़ गयी है? अभी क्यों बढ़ा रहे है? क्या ये आशा करते हैं कि मैं इनके वश में आ जाऊंगी? नहीं तो, इसी स्थिति में रहने में इन्हें आनंद है। कम से कम मुझे तो चाहिए कि इस बात का अंत कर दूं। स्पष्ट शब्दों में इन्हें समझना तो चाहिए था, इस प्रकार विचार करती हुई मैं आसमान को देखती खड़ी हूं। इतने में मामा पीछे से आये और..

अब मुझे इन्हें कोसने को मन नहीं होता। रोना आता है। मुझे उन्हें कुछ नहीं कहना है, यह सोचकर दांत दबाये उनका हाथ हटा देती हूं और उनके सम्मुख मुड़ जाती हूं। उनका मुंह देखती हुई, मानो कुछ भी घटित नहीं हुआ हो — धीरे से बोलती हूं, "मामा। मुझे छुए बिना ही बोलिए।" वे पेड़ के समान खड़े हैं।

फिर धीरे बोल उठते हैं, "क्यों? मैं तुम्हें नहीं छू सकता हूं?" ऐसा पूछना उन्हें न्यायसंगत लगता है, उसका मैं क्या उत्तर दे सकती हूं? बोलते हुए फिर छूने को होते हैं। उन्हें देखना ही मुझे घृणाजनक लगता है। ऐसा विचार आता है कि इन्होंने जो मेरी सहायता की है, जो पैसा खर्च किया है, अपने घर में रखकर जो भोजन दिया है —इन सब को जैसे-तैसे वापस लौटा सकूं तो अच्छा होगा।

मेरा हाथ पकड़कर भिखारी के समान कुछ मांग रहे हैं...मेरा क्रोध बढ़ जाता है। प्रभु के बारे में कुछ कह देते हैं। कोई गंदी बात कह देते हैं....मुझे उसे दुबारा याद करना भी संभव नहीं हो रहा है। इनके साथ अपनी तुलना करके कुछ कहते हैं। मैं कठोर स्वर में बोलती हूं, "मुंह बंद कर लीजिए। आप उनके पैर की धूल के बराबर भी नहीं हैं।" मेरा आवेश बढ़ जाता है। मैं उस समय न जाने क्या कह गयी? "अब आपका गौरव नहीं बचेगा। आपने मेरी कितनी ही सहायता की है, कितना ही पैसा खर्च किया है, इसके लिए क्या आप मेरे साथ चाहे कुछ भी कर सकते हैं? अपने उस उपकार के एवज में यदि आप मुझसे यही चाहते हों तो उस सबका दुगुना हिसाब लगाकर लौटा ले जाइए। अब इस घर की तरफ आप न आइए। आपकी सहायता के लिए बहुत धन्यवाद। नाउ यू कैन गेट आउट !"

मैं सीढ़ियों से उतर रही हूं। मेरे पीछे एक आवाज सुनाई दे रही है। वह शिथिल है, "गंगा, जरा बात सुनकर जाओ !" मैं उनके सामने जाकर खड़ी हो जाती हूं। वे भी सिर झुकाए खड़े हैं। कुछ नहीं बोलते।

"मुझे बूढ़ा मानकर ही तो तुम मुझसे नफरत करती हो?" — उनके यह पूछने पर मुझे हंसी आती है। कई विषयों में ये बड़े मेधावी हैं। लेकिन इस मामले में ये कितने अबोध हैं? इन पर मुझे दया आती है। अब स्पष्ट हो रहा है कि इनका स्वर जो शिथिल हुआ, वह यही सोचकर कि वे स्वयं बूढ़े हो गये हैं, उम्र बढ़ गयी है। इस पर हंसने के अतिरिक्त मैं क्या करूं?

मैं बूढ़ा नहीं हूं — यह प्रमाणित करने के लिए ये आतुर हैं। ये बूढ़े नहीं — इसके प्रमाणित होने से मुझे क्या लेना? वे कहते हैं, "अरी लड़की! तुम हुक्म चला रही हो कि मुझे तुम्हें नहीं छूना है ! तुम्हें मारने-पीटने का भी मुझे अधिकार है —जानती हो?" वे मजाक में ही कह देते हैं। फिर भी उसमें कुछ सत्य है। मुझे लगता है कि ये मुझे पीटे देंगे। अंबुजम मामी के शरीर में जो धारियां निशान बनकर पड़ी हैं, वे स्मरण आ रही हैं।

"मुझे मालूम है, आप मारते हैं। आप मुझे पीटिये। लेकिन छुइये मत।" आंखें बंद किये उनके सामने तनकर खड़ी हो जाती हूं। वे मुझे पीटने जा रहे हैं। अपना बेल्ट खोल रहे हैं। बेल्ट मेरे शरीर पर टकराने वाला है, मैं उसे झट हाथ से पकड़ लेती हूं। मन में होता है कि इसे छीनकर उल्टे उन्हीं को चार रसीद करूं। अब बेल्ट मेरे हाथ में है।

"दस बजे रहे हैं। भोजन करने नहीं आयेंगे?" पूछती हुई मां छत पर आ जाती है।

हमेशा की तरह कल मैंने उनके साथ बैठकर खाना नहीं खाया। उनसे बोली भी नहीं। उनका मुंह तक नहीं देखा। मैं अपने कमरे से उनका बिस्तर उठाकर बाहर फेंक देती हूं। वे स्वयं बिस्तर झाड़कर, बिछाकर लेट जाते हैं।

अब थोड़ी देर पहले गांव के लिए चल पड़े तभी हम दोनों आमने-सामने हुए। "अब मैं नहीं आऊंगा," जैसे वे मुझसे कह रहे थे। मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। मेरे मन को अपने

आप पता चल रहा है, अब ये यहां नहीं आने वाले।

अगर आ भी जायें तो मैं अपने ऊपर इनका हाथ पड़ने नहीं दूंगी। पैर दबाना, दूसरी सेवा करना, सब–अब नहीं होगा।

मैंने मां से कह रखा है कि वह रसोई के लिए और घरेलू काम के लिए दो नौकरानियां तय कर दे। किसी काम पर आयेंगे तो वे इस घर में ठहर सकेंगे और खा सकेंगे। नौकरानियों से काम ले सकेंगे।

बस, उतना ही।

लेकिन मामा को मैं जानती हूं। वे वैसे नहीं रह सकते। वे कहेंगे, 'यह एक शूद्र की रखैल हो गयी है, मैं अब उसके यहां जाऊंगा तो मेरी इज्जत नहीं रहेगी।'

लेकिन मां सोचती होगी – मामा हमेशा की तरह ही आया करेंगे, जाया करेंगे। कई दिन गुजरने के बाद अगर मां उनसे पूछेगी 'क्यों नहीं आये?' तब वे ऐसा ही जवाब देंगे। मां को वह जवाब बहुत उचित मालूम होगा।

नौ बज रहे हैं। भूख नहीं लग रही है। फिर भी भोजन तो करना ही है। बाहर वाली बत्ती बुझाकर किवाड़ बंद करके भीतर आती हूं।

खाना थाली में रखकर बैठ जाती हूं। अचानक शक होता है। बाहरी किवाड़ पर सांकल चढ़ा दी है या नहीं ?

हाथ झाड़कर उठ जाती हूं।

23

जो लोग मेरे पीछे पीछे चल रहे थे वे धड़ाधड़ मुझसे आगे निकल रहे हैं। मैं बाहर आ जाती हूं, ये मुझे देख लेते हैं। कार का दरवाजा खोल देते हैं। कार में चढ़कर इनकी बगल में बैठ जाती हूं। मेरी घबराहट कुछ शांत होती है। मैं अपनी घबराहट दूसरों पर प्रकट नहीं होने देती हूं। फिर भी मुझे तो मालूम है। बैग से रूमाल निकालकर मुंह पर फेर लेती हूं। ये कहते हैं, "ऐसा लग रहा है जैसे कई दिन से मैंने तुम्हें नहीं देखा। आज भी मैंने डरते डरते फोन उठाया कि कहीं तुम यह न कह दो कि आप न आयें। अच्छा हुआ कि तुमने मुझे आने को कहा।" इस पर ये बच्चे के समान खुश हो रहे हैं। ये मुझे देखकर कितने खुश होते हैं ! क्या ये मेरी ही इतनी प्रतीक्षा करते रहते हैं?

मैं कहती हूं, "हां, मुझे भी लगता है कि जैसे आप से मिले बहुत दिन हो गये। आज मैं स्वयं आपको फोन करनेवाली थी। आपने ही कर लिया। आपका कंठस्वर फोन पर सुनते समय मुझे कैसी प्रसन्नता हुई।" यह कहते हुए मेरा कंठ गद्‌गद् हो जाता है।

अचानक विचार आता है – यह सब क्या है? हमारी बातचीत जैसे दो प्रेमियों की बातचीत के समान ही तो है। इसका नाम शायद 'लव' है। इसे स्वीकार करने में कैसी लज्जा? इनके स्वास्थ्य के बारे में, मनःस्थिति के बारे में मैं कितनी दिलचस्पी से सोचती रहती हूं। ये भी मेरे बारे में कितनी आत्मीयता के साथ सोचते, व्यवहार करते हैं। ये कौन हैं? मैं कौन हूं? यह बंधुत्व कैसे उत्पन्न हुआ? कई लोगों का संबंध तो पहले बहुत ऊंचाई से शुरू होता है – कविता के समान मोहक होकर प्रेम का रूप धारण करता है, अंत में 'सेक्स' बनकर समाप्त हो जाता है। हमारा संबंध तो आरंभ में ही बहुत निम्न कोटि का था। पशुता और उन्माद से भरा और किसी दुर्घटना के समान 'सेक्स' नामक विपदा में फंसा हुआ। आरंभ तो ऐसा ही था; लेकिन अब उत्तरदायित्वपूर्ण, प्रतिष्ठायुक्त मित्रता और स्नेह बनकर फिर प्रेम के रूप में समाप्त होगा क्या?

"क्या सोचा जा रहा है?" माउंट रोड पर कार चलाते हुए ये पूछते हैं।

"कुछ नहीं," कहकर मैं सिर उठाकर देखती हूं। सामने किसी रेडियो का विज्ञापन वाला बोर्ड दिखाई पड़ता है। दोपहर को रेडियो खरीदने के लिए पैसा पास में रख लिया था। मैंने इन्हें फान करने की जो सोची थी, वह इसी बारे में था। लेकिन रेडियो की बात बिलकुल दिमाग से ही उतर गयी। वह बच्ची शाम को आकर पूछेगी...मामी जी, बताइये, आपका ट्रांजिस्टर

कहां है? बड़ी चंट है वह !

"एक मिनट...मुझे एक ट्रांजिस्टर खरीदना है। किसी अच्छी सी रेडियो की दुकान से ले लेंगे। जरा कार रोक दें। मुझे इन सबके बारे में कुछ भी पता नहीं है।" मैं कहती हूं।

"मुझे क्या मालूम है ! मंजु को इन सब चीजों का पता है। पद्मा के पास तो कोई सात तरह के ट्रांजिस्टर होंगे। शायद हमारी कंपनी द्वारा रेडियो की भी एजेंसी ली गयी है – मेरा ऐसा विचार है। अभी चाहिए क्या? कल एक अच्छा सा ट्रांजिस्टर चुनकर मैं खुद भेज दूंगा।" ये कहते हैं।

"नहीं, आज, अभी चाहिए। घर में अकेले रहने में एकदम बोर हो जाती हूं।"

"क्यों? तुम्हारी मां नहीं आयीं?"

"नहीं। आयी थी, फिर चली भी गयी।"

ये कार घुमा देते हैं। एक रेडियो वाली दुकान के सामने ले जाकर रोकते हैं। दोनों कार से उतरकर दुकान में जाते हैं। सभी लोग हमारी तरफ देखते हैं। क्या हम दोनों का साथ साथ दिखना उपयुक्त लगता है? कुछ लोग तो ऐसे देख रहे हैं जैसे दंपति को आशीर्वाद दे रहे हों।

जब कोई महिला एक पुरुष के संग बाहर निकलती है तो निश्चय ही उसे एक प्रकार का आदर मिलता है। लोग उस महिला को गलत निगाह से नहीं देखते। वह भी इस पुरुष पर निर्भर है। ये बहुत ही 'मैनली' लगते हैं। कुछ कुछ कठोर भी लगते हैं। कुछ कठोरता अपेक्षित भी है। लेकिन ये तो सचमुच ही कठोर हैं। हम पैदल चल रहे हैं। एक व्यक्ति सामने आ जाता है। ये उसकी तरफ देखते हैं। शांत भाव से ही देखते हैं। वह आदमी वैसे ही खड़ा रह जाता है। जब मैं आगे बढ़ती हूं तो वह आदमी कुछ और हटकर अदब के साथ रास्ता छोड़ता है। अगर मैं ऐसी परिस्थिति में अकेली आ जाऊं तो लोग मेरे साथ टक्कर मारते हुए निकल जायेंगे। मेरी तरफ गर्दन मोड़कर देखेंगे। दो व्यक्ति साथ हों तो मेरे बारे में आपस में कोई 'फिकरा' कसेंगे। बगैर किसी कारण के ही विकट हंसी हंसेंगे। अब कोई वैसा नहीं कर रहा है।

रेडियो वाली दुकान में हम लोगों का बड़ा सत्कार होता है। ये सीधे दुकान के मालिक के एयरकंडीशंड कमरे में ही ले जाते हैं। वह मालिक उठकर हम लोगों का स्वागत करते हैं। हम लोगों को काफी पिलाते हैं। वह व्यक्ति इनके साथ खड़े रहकर ही बात करते हैं। ये कितने प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्ति हैं, ऐसी परिस्थिति में देखने पर ही इस बात का पता चलता है। मुझे लगता है, एक ट्रांजिस्टर के लिए मैं इन्हें इस दुकान में जो खींच लायी, शायद यह गलत है...

थोड़ी ही देर में मेज पर कतारों में तरह तरह के ट्रांजिस्टर्स लाकर रख दिये जाते हैं। हर एक से अलग अलग केंद्रों की अलग अलग आवाजें आने लगती हैं।

आखिर दुकान के मालिक स्वयं एक ट्रांजिस्टर उठाकर दिखाते हैं, "यह जापानी है... ।"

"कैसा लग रहा है?" ये मुझसे पूछते हैं। मैं गौर से देखती हूं कि उसे कैसे चलाना है। मैं कोई जवाब नहीं देती।

वह दुकान-मालिक जोर देकर इसी को लेने की सलाह देते हैं।

"ओ.के.। पैक कर दीजिए।" ये कहते हैं। मैं इनके कानों में कहती हूं—"इसका क्या दाम होगा?"

ये किसलिए इस प्रकार हंसते हैं ? हंसते हुए कहते हैं, अंग्रेजी में, "मुझे याद ही नहीं रहा कि इस प्रकार के सवाल भी किये जाते हैं। एक और बात जानती हो? इसके लिए हमें पैसा नहीं देना होगा, क्योंकि यह हमारे दफ्तर द्वारा ही सप्लाई किया गया है। जब हम लोगों का हिसाब ये चुकता करेंगे, तब इस रेडियो की रक़म काट लेंगे।"

मैं भी अंग्रेजी में कहती हूं, "यह मैं अपने लिए खरीद रही हूं..."

"नो। मैं तुम्हें यह उपहार दे रहा हूं। मैंने अब तक तुम्हें कोई उपहार नहीं दिया है। प्लीज...तुम्हें मेरा यह अनुरोध नहीं ठुकराना चाहिए।"

क्या कहूं, मेरी समझ में नहीं आता। अच्छा हुआ। उस कमरे में हम दोनों को छोड़कर और कोई नहीं था। "ठीक, जो भी हो, इनसे तो पूछ ही लीजिए कि इसका क्या दाम होगा....?" "वह अभी इसका बिल ले आयेगा...।" ये अभी कह ही रहे हैं कि दुकान के मालिक हाथ में कागज उठाए आते हैं। मेरा नाम, पता आदि लिखते हैं।

कह रहे हैं कि दो दिन में लाइसेंस आ जायेगा। मैं बिल देखती हूं। अरे माई लार्ड! आठ सौ बीस रुपये ! यह तो बहुत ज्यादा है।

ट्रांजिस्टर खरीद लिया गया है। मैं समय रहते घर आ जाती हूं। रसोई बनानी है। इनके घर मैं जो अकसर जाती हूं, वह ठीक नहीं लगता। उस दिन पद्मा का व्यवहार भी उतना अच्छा नहीं था।

जब ये मुझे कार से मेरे घर तक छोड़ने आये तो मैं इनसे कहती हूं, "आप भीतर आइए न !"

मैं इन्हें काफ़ी बनाकर पिलाती हूं। सवेरे का दूध ही है। शाम का दूध नहीं ले पाती। शाम को दूध लेना बंद कर दिया है। ये कहते हैं, "काफी बढ़िया है।"

ये ट्रांजिस्टर का बटन घुमाकर उसे चलाते हैं। "क्या तुम्हें कर्नाटक संगीत पसंद है?" ये मुझसे पूछते हैं। "मेरा और संगीत का दूर का भी संबंध नहीं है। अकेले रहते हुए कोई आवाज सुननी है, इसलिए सोचा कि चलो, रेडियो की आवाज ही सही। इसीलिए ट्रांजिस्टर खरीदने की सोची। मगर रेडियो पर क्या इतना खर्च करना चाहिए? दुकान में कुछ नहीं कह सकी।

वह उचित नहीं होगा – यही सोचकर मैं उस वक्त चुप रह गयी थी। आप इसे अपने घर ले जाइये। मुझे दो-तीन सौ का मामूली सा रेडियो लेकर उपहार में दे दीजिए, वही काफी है।" कहती हूं। मेरी बात इन्हें पसंद नहीं आ रही है, काफी पीते हुए इसी ढंग से मेरी तरफ देखते हैं।

"क्या मैंने कोई गलत बात कह दी है?"

"हां, प्रेम से जो प्रेजेंट किया जाता है, उसे किसी भी कारण से नहीं मना करना चाहिए।" ये कहते हैं।

"आय एम सारी।" मैं क्षमा मांग लेती हूं।

"थैंक्यू वेरी मच। मुझे खुशी है..." मैं पुनः कहती हूं।

ये तुरंत बात बदल देते हैं, "मुझे कर्नाटक म्यूजिक पसंद है। जाज पसंद है। हिंदुस्तानी संगीत पसंद है। लेकिन सिनेमा के गीत पसंद नहीं हैं। पद्मा वही सुनती रहती है।"

''मंजु को देखे दो-तीन दिन हो गये हैं।'' मैं अनायास कह देती हूं। ये भी मेरी हां में हां मिला देते हैं। "क्यों, आप भी मंजु से नहीं मिले क्या?"

"हां, दो-तीन दिन से मैं जब घर जाता हूं तब वह सो चुकी होती है। वाकिंग पर न जाने के कारण सवेरे भी नहीं देख पाया।"

"कल से सवेरे वाकिंग पर चलेंगे," मैं कहती हूं। बात ही बात में पूछ लेती हूं, "अब आपका क्या प्रोग्राम है?"

ये हंसते हैं, "क्या इस प्रश्न का मैं उत्तर दूं?"...आंख मारते हैं।

"हूं...कहिए।" मैं भी अपनी 'पकड़' नहीं छोड़ती हूं।

"मैं एक 'गर्ल फ्रेंड' से मिलने जा रहा हूं।" कहकर सिर खुजलाते हुए विवरण देते है। "वैसी गर्लफ्रेंड नहीं है। इन दि रियल सेंस...चाहे 'गर्ल्स हों, चाहे 'मैन'....मेरी तो एक मात्र मित्र, फिलासफर, गाइड सब कुछ तुम्हीं हो। इसलिए किसी औरत को 'फ्रेंड' कहना मुझे उचित नहीं लगता। वैसे ही...सम सार्ट आफ...क्या कहना चाहिए...?"

"मैं समझ रही हूं। कुछ मत कहिये।" मैं हंसती हूं। जैसे लज्जित हो रहे हों, यों सिर झुकाकर ये पूछते हैं, "तुम्हें मुझसे सच सच बात करनी चाहिए। तुम्हारी मां तुमसे झगड़ा करके ही घर छोड़कर गयी हैं? वह भी मेरे मामले को लेकर, है न?" ये 'ब्लंट' ढंग से पूछते हैं।

"यस," एक शब्द में उत्तर देकर उनका चेहरा गौर से देखती हूं। ये भी मुझे देखते हैं। ये क्या सोच रहे हैं, पता नहीं लगा रहा।

"गंगा...!"

"यस।"

ये अंग्रेजी में ही बोलते हैं, "हम दोनों की स्थिति को, हमारे स्नेह को 'म्यूचुअल अफेक्शन' कहकर कोई नहीं समझ पायेगा। जब तक तुम किसी से विवाह नहीं कर लोगी

तब तक कोई तुम पर विश्वास नहीं करेगा।" उनकी आंखों में चमक आ जाती है।

"मुझे उसकी क्या परवाह है?" बड़े हर्ष से उसका समाधान करते हुए आगे कहती हूं, "कोई कुछ भी समझ ले – उस बात की हमें क्या परवाह? हमारे इस स्नेह को मैं पवित्र मानती हूं। इसी में मैं प्रसन्न हूं। यही जीवन मुझे अच्छा लगता है।"...जब मैं यह कह रही हूं तभी मीना आ जाती है।

ट्रांजिस्टर में कोई सिनेमा का गीत धीमी आवाज में आ रहा है।

"आ जाओ, मीना !" कहकर मैं बुलाती हूं। वह इन्हें देखकर ठिठक जाती है।

"यह मीना है...हमारे पड़ोस के घर में...पड़ोस के घर में ही न?" पूछती हूं।

"नहीं, तीसरे घर में," मीना कहती है।

"तीसरे घर की बच्ची है। मेरी मां की 'फ्रेंड' है। इसी ने ट्रांजिस्टर खरीदने की सलाह दी थी। कैसा है? तुम्हें अच्छा लगता है?" मीना से पूछती हूं।

शायद वह वैसी ही स्तब्ध हो गयी है। "बहुत अच्छा है, मामी ! 'सारे वर्ल्ड के स्टेशंस' आयेंगे। यह तो बड़ा कीमती होगा?" कहकर वह हाथ में उठा लेती है। "मद्रास पर अब सिनेमा के गीत आयेंगे," कहकर वह 'ट्यून' करती है।

ये उठते हैं। यह कहकर चल पड़ते हैं कि सवेरे मंजु के साथ आयेंगे।

सवेरे 'हार्न' की आवाज आती है तो खिड़की से देखती हूं। अकेले ये ही आये हैं, मंजु दिखाई नहीं पड़ती।

मैं घर पर ताला लगाकर कार में जा बैठती हूं। मैंने पूछा नहीं कि मंजु क्यों नहीं आयी। मेरे मन को कुछ कुछ स्पष्ट हो रहा है कि ये खुद कहेंगे। मैं कहने के लिए इन्हें परेशान नहीं करूंगी। मैं चुप हूं। ये भी कुछ दुखी से, परेशान से लगते हैं।

दोनों मौन हैं। लेकिन ये मन ही मन खिन्न हैं...ऐसा लगता है न? इनका मुंह देखती हूं। कितने बेचारे लगते हैं !

"व्हाट इज दि मैटर?" मैं पूछती हूं। इनके ओंठ किसी बच्चे की तरह कांप जाते हैं।

"छिः छिः, यह क्या !" मैं पहली बार इन्हें छूती हूं और समझाने की चेष्टा करती हूं। ये तो रो रहे हैं।

"प्लीज ! क्या हुआ? बोलिए न ! अरे ! कोई देख लेगा।" मैं रूमाल आगे बढ़ाती हूं। ये उसे लेकर मुंह पोंछ लेते हैं। आंखें और नाक लाल हो गयी हैं। खंखारकर गला साफ करते हैं और एक सिगरेट जला लेते हैं। संभल जाते हैं और मेरी तरफ देखकर हंसते हुए कहते हैं, "आय एम सारी।"

"क्या हुआ?"

"मैंने कल ही वताया था न कि हमारे स्नेह को कोई नहीं समझ पायेगा। विश्वास नहीं

करेग। मंजु स्वयं... ।" यह कहते हुए इनका स्वर रुंध जाता है। "मंजु तक विश्वास नहीं करती है। वाकिंग चलने के लिए बुलाया तो 'नहीं' कह दिया। मैंने पूछा 'क्यों' तो क्या अंटसंट कहने लगी। हाऊ रिडिक्यूलस !" कहकर विलाप करते हैं। इन्हें देखने पर मुझे दया आती है। विश्वास नहीं होता कि ये बच्चे के समान हैं।

मैं कहती हूं, "मंजु का दोष नहीं है। कारण स्पष्ट है। आप चिंता न करें, मैं उससे बात करूंगी, उसे समझा दूंगी। वह बहुत अच्छी लड़की है। किसी के कुछ कहने पर उसे धक्का लगा है। मैं उससे बात करूंगी।" मैं दिलासा देती हूं।

ये गांधी की प्रतिमा के पास कार रोक देते हैं। उस लंगड़े भिखारी को भीख देते हैं। तीन दिन का हिसाब एक साथ पूरा कर देते हैं।

फिर हम दोनों पैदल चलने लगते हैं। मंजु के बिना दोनों का चलना, जाने कैसा लगता है !

24

मंजु को यहां आये अंधा घंटा हो गया। लगता है कि यह अपनी मां की आंख बचाकर यहां आयी है।

आज सवेरे जब मैंने मंजु को फोन किया, तब ये मेरे साथ थे। मैंने कहा कि आफिस जाते ही मैं मंजु को फोन करूंगी। यह जानने के लिए कि मैं और मंजु क्या बात करते हैं, ये साथ हो लिये। ये मेरे आफिस में आकर ऊपर-नीचे, चारों तरफ दृष्टि दौड़ाते हुए खड़े रहे। मेरे आफिस में ये आज पहली बार आये हैं। दस ही बजे हैं। अभी लोग एक एक करके आ रहे हैं।

"प्लीज कम इन।" यह कहकर मैं इन्हें भीतर ले आयी। मेरी मेज के सामने पड़ी दो कुर्सियों में से एक को खींचकर कहा—"बैठिए।" कितने ही विजिटर आकर इस कुर्सी पर बैठ जाते हैं और मुझ से वात करते हैं। अब इसी कुर्सी पर एकमात्र मेरे लिए आकर बैठने वाले आगंतुक ये ही हैं। मेरी इतने वर्ष की सेवा में इस कार्यालय में मेरी खोज में कोई नहीं आया।

रंगसामी गिलास में पानी भरकर रखता है और एक प्लास्टिक के ढक्कन से ढक देता है। मैं उससे काफी के दो प्याले लाने को कह देती हूं। फिर मैं इनके घर फोन करती हूं।

अच्छा हुआ। मंजु ने ही फोन उठाया।

''मैं गंगा बोल रही हूं।'' मैंने ज्यों ही कहा, उसे कुछ क्षण कुछ बोलने को नहीं सूझा। इसका उत्तर सुनने के लिए मैं भी मौन रही। उसने मेरे प्रति 'विश' भी नहीं किया। मेरी समझ में आ गया कि यह बहुत व्याकुल है। आवाज बदली हुई थी।

उसने कहा, "पिताजी नहीं हैं।"

"पिताजी यहां है। मैं तुमसे वात करना चाहती हूं। इसीलिए फोन कर रही हूं। मैं तुमसे मिलना चाहती हूं।" फिर आगे कहा, "...अब तुम लोगों के घर की जो स्थिति है उसमें मेरा वहां आना उचित नहीं लगता। इसलिए तुम्हें मैं अपने यहां आने को कह रही हूं। आज तो शनिवार है न ! दोपहर को मेरे घर आ जाना। तुम्हारे पिताजी नहीं रहेंगे। मैं तुमसे अकेले में कुछ कहना चाहती हूं।" मैंने बड़े अधिकार के साथ कह दिया।

वह चुप रही। मैंने, अपने स्वर में स्थित अधिकार-भाव की व्याख्या सी करते हुए उससे प्रश्न किया, ''क्या हम दोनों मित्र नहीं है?"

उसकी ध्वनि ऐसी थी जैसी कक्षा के भीतर खड़ी हुई बोल रही हो, "हैं।"

"दो अच्छी दोस्तों में परस्पर किसी प्रकार का मनमुटाव न हो, तो भी किसी मजबूरी से अलग हो रही हों तो कम से कम उन्हें 'गुड बाई' कह लेना चाहिए न...?" मैंने अंग्रेजी में पूछा। बेचारी ! शायद उसे रोना आ गया।

"आय एम सारी..." उसने कुछ कहना शुरू किया। लेकिन उसका स्वर रुंध गया। इस लड़की को मैं क्यों तंग कर रही हूं...मुझे खेद हुआ।

"मंजु...टेक इट इजी। तुमसे मुझे बहुत बातें कहनी हैं। इसलिए मैं तुमसे मिलना चाहती हूं। अब समय आ गया है कि सब बातें स्पष्ट करूं... ।" मैं जब बोल ही रही थी तो यह कहते हुए कि "मैं दो बजे घर आऊंगी" उसने झट रिसीवर रख दिया। मेरी नजरों में पद्मा का चेहरा घूम गया।

"क्या है? क्या कह रही है?" बड़ी जिज्ञासा के साथ इन्होंने पूछा।

"वह मेरे यहां आयेगी।" मैंने कहा। "तुम मंजु से क्या कहने वाली हो ?" इन्होंने पूछा। "बातचीत हो जाने के बाद बताऊंगी।" मैंने कहा। इनके चेहरे का रंग बदल गया। शायद उस घटना को जो बारह वर्ष पहले उस शाम को घटी थी, याद कर रहे हैं। शायद उन्हें आशंका हो रही है कि मैं उस घटना के बारे में इनकी लड़की से कहूंगी। क्या इनकी करतूतें इनके घरवाले नहीं जानते ? लेकिन अब इनकी आशंका का कारण यह नहीं है कि मंजु को इनके गुणों का पता चल जायेगा। परंतु केवल यही है कि हम दोनों की मित्रता का क्या रूप है, यह मंजु को स्पष्ट हो जायेगा।

रंगसामी काफी ले आता है। दफ्तर में काफी पीने की मेरी आदत नहीं है। इसलिए मैंने अपने लिए कोई फ्लास्क, जग या यह जो प्लास्टिक का ढक्कन रखकर मग ला रहा है—ऐसा कुछ भी नहीं खरीद रखा है। बेचारा रंगसामी ! किसी से मग उधार ले जाकर काफी ला रहा है। उधार क्यों लेगा? रंगसामी तो कहीं भी जाकर कोई भी चीज अधिकारपूर्वक उठा ला सकता है। रंगसामी मुझे और इन्हें गिलासों में काफी भरकर देता है। मैं पूछती हूं, "रंगसामी ! ये गिलास, कॉफी मग वगैरा, यह सब किसकी सप्लाई है?"

"हमारे कार्यालय की श्रीमती मैनुएल जी की ही है। नया है जी? कल ही खरीदा है। आपके पास भी एक मग होना चाहिए। तीन रुपये लगते हैं।" वह बड़ बड़ बोलने लगा।

"ठीक ! ठीक ! क्लिअर दि प्लेस," मैंने उसे हटाया।

दफ्तर काम करने लगा है। हाल भर में एक नजर दौड़ाती हूं। लगभग सभी आ चुके हैं। अपनी अपनी सीट पर हैं। श्रीमती मैनुएल मुझे देखकर एक मुस्कुराहट से 'विश' करती हैं। मैं भी जवाब में विश करती हूं। सभी का ध्यान इधर मेरी ही तरफ है। लड़कियां एक-दूसरे को देख लेती हैं। मुझे अपने मन में बड़ा गौरव महसूस हो रहा है।

मैं काफी पीकर इनसे कहती हूं – "दोपहर को आप मत आइए। मैं स्वयं घर चली जाऊंगी। आप शाम को आइये। मंजु के साथ क्या बातचीत हुई...बताऊंगी।"

"ओ.के... ।" कहकर ये उठते हैं।

"मैं आपको बाहर तक छोड़ आती हूं।" कहकर मैं भी साथ हो लेती हूं। पहले लिफ्ट तक ही जाने का मेरा विचार था। लेकिन अब मैं भी लिफ्ट में उनके साथ चली जाती हूं। नीचे आकर इनकी कार तक मैं साथ जाती हूं। इन्हें कार में बिठाकर कहती हूं—"मंजु अब बच्ची नहीं है। वह अंटशंट बातें सुनती रहे – इससे तो यही बेहतर है कि वह सच बात जान ले। मुझे इस मित्रता पर लाज नहीं आती है। वी शुड नो थिंग्स।" कार के दरवाजे पर रखी इनकी कुहनी को धीरे से थपथपाकर आश्वासन देती हूं – "शाम को आकर मिलिए।" जैसे कोई मां बच्चे को स्कूल भेज रही हो, यों मैं इन्हें भेज देती हूं। कार के चले जाने तक खड़ी रहती हूं। उसके बाद भी थोड़ी देर वहीं खड़ी रहती हूं। लोग क्या समझेंगे? कुछ भी समझें। मुझे क्या परवाह है !

मैं एक बजे दफ्तर का काम खत्मकर तुरंत ही एक टैक्सी करके सीधी घर आ गयी। मेरे आने के पांच मिनट बाद ही मंजु भी आ गयी। जैसे पहले पहल किसी अजनबी के घर पर गयी हो, यों ड्योढ़ी पर ही खड़ी रहती है।

मैं हमेशा की तरह बड़ी आत्मीयता के साथ हाथ पकड़कर उसे भीतर ले आती हूं और बिठाती हूं। मैं भी सामने बैठ जाती हूं।

"मैं भी आजकल तुम्हारे यहां नहीं आ पाती हूं।" कहकर मैं उसका चेहरा देखती हूं। धीरे से सिर हिलाकर धरती की ओर देख रही हूं। मैंने सोचा कि यह पूछेगी 'आप क्यों नहीं आती हैं?' लेकिन नहीं पूछती है। शायद यह पूछने की अपेक्षा कि मैं इनके घर क्यों नहीं गयी – यही सोचना उचित समझ रही है कि मैं इनके यहां क्यों जाया करती थी?

"कुछ खाओगी?" मैं पूछती हूं।

"अभी तो खाया है।"

"मैंने तो सवेरे खाया था। भूख लग रही है," कहकर मैं भीतर चली जाती हूं। एक प्लास्टिक की तश्तरी में बिस्कुट भरकर दोनों के बीच में लाकर रख देती हूं। एक बिस्कुट मैं उठाकर खाने लगती हूं।

इसे आये अब आधा घंटा हो गया है। यह एक बिस्कुट उठा लेती है। कहां से शुरू करना है, कैसे शुरू करना है—मुझे कुछ सूझता नहीं। अकस्मात् 'अग्निप्रवेश' शीर्षक वाली कहानी याद आती है, अच्छा हुआ।

"तुम्हारा टहलने के लिए नहीं आना, मेरा तुम्हारे घर नहीं आना, हमारा न मिलना...इनका कोई कारण ही नहीं है – ऐसा तुम समझती हो?"

धरती से नजर ऊपर उठाकर, सिर थोड़ा टेढ़ा करे, भौंहें ऊपर किये, मेरी तरफ देखती है। बाप रे ! कितनी बड़ी बड़ी आंखें हैं ! इसकी आंखें देखने पर यह बच्ची जैसी लगती है।

नहीं तो, यह मेरे ही समान एक औरत है। कैसा ऊंचा कद है ! मेरे जितना ही शरीर है। मेरी तरह ही साड़ी पहने हुए है। मेरे समान ही जूड़ा भी बांध ले तो तब हम दोनों में कोई अंतर नहीं रह जायेगा? लेकिन इन आंखों को देखने से ही लगता है कि यह बच्ची है।

मैंने अभी एक के बाद एक अनेक प्रश्न पूछे थे—इसका वाकिंग पर न आना, मेरा इनके यहां न जाना, हमारा मुलाकात न करना, अब मिलना ; इन सबका निश्चय ही कोई कारण है—यही इसकी इस दृष्टि का अर्थ है?

क्या इसका भी कोई 'बाय फ्रेंड' होगा? आजकल की लड़कियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसकी यह आंखें और यह रूप देखकर क्या चुप रह जायेंगे ये लोग? चारों तरफ मंडरायेंगे न ! मेरी इतनी उम्र हो गयी...मुझे ही घेरने को होते हैं। लेकिन यह मेरे समान नहीं हैं, इसकी जैसी उम्र में तो मैं बड़ी ही अबोध थी। लेकिन यह वैसी नहीं है। मैं खुद इससे पूछूं तो क्या होगा? मैं भी इसकी एक फ्रेंड हूं न? यहीं से क्यों न बात छेड़ूं ?

"तुम अठारह साल की हो गयी हो न?" मैं इसकी उम्र के बारे में पूछती हूं।

"अठारहवां चल रहा है।" जवाब देती है।

"तो तुमने 'स्वीट सैवेंटीन' पूरा कर लिया है।" कहकर मैं आंख दबाती हूं। लेकिन इसी समय मन में अपनी 'बिटर सेवेंटीन' वाली बात आकर कसकती है।

"मैं भी कभी सत्रह साल की लड़की थी," मैं कहती हूं। मैं किसलिए यह कह रही हूं, क्या इसे समझ में नहीं आ रहा है? शायद सोच रही है कि मैं बकवास कर रही हूं।

मैं आगे कुछ इस प्रकार अंग्रेजी में बोलती हूं जैसे खुद अपने ही मन से कह रही हूं। उसका चेहरा न देखकर कहीं छत की ओर नजर दौड़ाए हुए...फिर भी इसी को लक्ष्य करके मैं बोल रही हूं। कभी मेरी पढ़ी हुई अंग्रेजी कविता, जो अब इसके लिए पाठ्यांश है, का एक एक शब्द करके पढ़ते हुए मैंने इसे समझाया है। उसी प्रकार अब बोल रही हूं। मैं जब पढ़ाती रहती तब यह लड़की हाथ में रखी पुस्तक को और मुझे बारी बारी से देखते हुए बैठी रहती। उसी प्रकार अब मेरी तरफ देख रही है। "मैं भी सत्रह साल की आयु में रही हूं। लेकिन मेरा सत्रहवां वर्ष 'मीठा' नहीं था। मैंने उसी वर्ष जीवन की कड़ुवाहट को प्राप्त किया। तुम्हारे एक अच्छे पिता जी हैं। ये कितने ही बुरे व्यक्ति क्यों न हों, बुरे पति क्यों न हों, जहां तक तुम्हारा संबंध है, ये एक अच्छे पिता हैं। तुम उनके लिए एक अमूल्य पुत्री हो, यू आर हिज मोस्ट प्रैशस चाइल्ड!" मैं शायद इसे दो-तीन बार कह गयी हूं। मुझे खुद पता नहीं कि मैं बात करते करते कब उठ गयी। दुबारा बैठ जाती हूं।

"जब मैं दुनिया को समझने लगी, तब मेरे पिता नहीं रहे। मैं किसी को प्रिय भी नहीं थी। मेरी उस समय तुम्हारी जितनी आयु रही होगी। तुम्हारे पास जो और चीजें हैं, वे मेरे पास नहीं थीं। मैं किसलिए ये बातें कह रही हूं, जानती हो? अच्छी दोस्त बनकर रहना हो तो एक-दूसरे को भली भांति समझ लेना चाहिए। तुम्हारे बारे में मुझे कुछ नयी बातें जाननी हैं—ऐसा

मुझे नहीं प्रतीत होता। क्यों, ऐसी ही बात है न? लेकिन मेरे बारे में कई नयी-पुरानी बातें तुम्हें जाननी होंगी। उन्हें न बताकर तुम्हारे साथ मित्रता का संबंध मानना मैं उचित नहीं मानती हूं..."

मैं इसका चेहरा देखती हूं। ओ ! ये आंखें ! अब उनमें कुछ नया सा समझने का भाव है।

"अब सोचने पर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। सत्रह वर्ष की उम्र में मैं वैसी अबोध क्यों रही? ऐसी अबोधता के बारे में किसी कहानी में पढ़ो तो भी तुम्हें विश्वास नहीं आयेगा। वैसी एक कहानी लिखना ही, तुम्हें लगता है, आजकल की कालेज छात्राओं की सामर्थ्य को नकारना है। यू आर राइट ! सामर्थ्यशाली होना, दुनिया को समझना—यह क्या कालेज में पढ़ने मात्र से आ जायेगा? यह तो उस परिस्थिति पर निर्भर है जिसमें कोई व्यक्ति पलता है। पालने वालों पर भी निर्भर है। वैसे देखा जाये तो पद्मा जैसी एक स्त्री तुम्हारी मां है—यह भाग्य की बात है। तुमने तो मेरी मां को देखा ही न? रसोईघर को छोड़कर और कुछ नहीं जानती। क्या तुम्हें वह कहानी याद है?" झट उसके चेहरे की ओर देखती हूं।

"कौन सी कहानी? यू मीन...आर.के.वी. की कहानी—'अग्निप्रवेश' !"

"यस। वही मेरी भी कहानी है।" मैं उसका चेहरा न देखकर दूसरी ओर मुंह किये बोलती हूं।

"संक्षेप में कह दूं तो आर.के.वी. द्वारा लिखित 'अग्निप्रवेश' मेरी अपनी कहानी का प्रतिरूप है। वही कालेज, वही बस स्टैंड, वही कार, वही लड़की, वही पुरुष। सब कुछ...सभी... लेकिन कहानी का अंत...उस कहानी को जो अंत है, वही एकदम बदला हुआ है। उस कहानी जैसी मां मेरी 'मां' नहीं है। कहानी में जैसी लड़की है, वैसी आजकल नहीं मिलेगी। कैसे कहा जाये? मैंने जैसा जीवन जाना है, मुझसे संबद्ध जो जीवन है, उसमें सब बदला हुआ है। उस कहानी की लड़की मैं ही हूं। उस कहानी के पुरुष तुम्हारे पिताजी हैं...।" कहकर मैं घूम पड़ती हूं। मंजु मेरी तरफ टकटकी लगाए बैठी है।

"यह सब बारह वर्ष पहले घटित हुआ। उसके बाद तो मेरे जीवन की ही समाप्ति सी हो गयी। मेरा ऐसा कहना, आजकल की कालेज की लड़कियों को...तुम्हें निरर्थक लगेगा। 'बाय फ्रेंड्स' रख लेना, 'डेटिंग' कर लेना, 'प्री-मैरिटल सैक्सुअल रिलेशंस' बना लेना—व्यवहार में भले ही न हों, तो भी विचार के स्तर पर यह सब जिस आधुनिक युग में न्यायसंगत हो गया है, वैसे युग में तुम रहती हो। तुम्हें और तुम्हारे जैसे ही वातावरण में रहने वालों को यह पागलपन प्रतीत होगा कि कोई इस बात पर अपने जीवन को समाप्त कर लेता है।

"इस पागलपन के भी साक्ष्य हैं; और इस संसार में और भी कई प्रकार के पागलपन हैं। ऐसे ही एक पागलपन की मैं बलि हो गयी हूं।

"और हां ! यह सब एक ऐसी पुरानी कहानी है, जिसे सुधारा नहीं जा सकता। और

वह ऐसी मंजिल पर आ चुकी है जहां से लौटना संभव नहीं है। कहानी पुरानी भले ही हो, फिर भी उससे नयी नयी बातें उत्पन्न हो रही है। मैं तुम्हारे सामने अपने किसी अपराध की स्वीकृति नहीं कर रही हूं। मगर मुझे कुछ बातों का स्पष्टीकरण कर देना चाहिए। यह नहीं समझना कि मैं तुम्हारी सहानुभूति या क्षमा के लिए यह सब बता रही हूं। किसी भी और व्यक्ति के संबंध में मैंने विशेष चिंता नहीं की है, न स्पष्टीकरण देने का यत्न किया है। पता नहीं क्यों, तुम्हीं को मैं अपनी सही स्थिति की जानकारी देना चाहती हूं। इसका कारण मुझे मालूम नहीं है। लेकिन इतना मालूम हो रहा है कि इससे कुछ भला होगा। जैसा कि लोग समझते होंगे – मैं तुम्हारे पिता की प्रेयसी नहीं हूं। मैंने जानबूझकर वैसी बदनामी कमा ली है। ऐसे संबंध में नहीं, किंतु ऐसी बदनामी से मैं प्रसन्नता पाती हूं। लेकिन कभी कभी मुझे लगता है...हम दोनों एक-दूसरे को स्नेह करते हैं। लेकिन उसका नाम...जैसा कि आप लोग कहते है 'प्रेम' नहीं है। यह कुछ और है। जैसा कि और लोग समझ रहे हैं, वैसा संबंध हम दोनों में पैदा नहीं हो सकता है। कभी एक बार वैसा जो हो गया, वही एक दुर्घटना थी। यह तुम्हें मालूम होना चाहिए। तुम्हारी मां को तुम्हारे पिता की धर्मपत्नी कहलाने का जितना अधिकार है, उतना अधिकार मुझे तुम्हारे पिता की 'प्रिय नायिका' कहलाने का है। जहां तक मेरा संबंध है, मैं मात्र ऐसा नाम पाना चाहती हूं। और लोग चाहे जैसा भी समझ लें। लेकिन कम से कम तुम इस संबंध को दोषपूर्ण न समझ लो, यही मेरी इच्छा है। मेरी इस इच्छा का कारण क्या है – मुझे पता नहीं है। कदाचित् तुम्हारे पिता तुम पर जो प्यार और आदर-भाव रखे हुए हैं, वही उस इच्छा का कारण हो सकता है। तुम मुझसे मिलती हो, या नहीं मिलती हो—यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। हो सकता है, तुम्हारी मां ने तुम्हें मुझसे मिलने से मना किया हो। एक प्रकार से वह ठीक भी है। लेकिन अगर तुम स्वयं ही मुझसे मिलने से नफरत करने लगी हो और इसलिए मिलना नहीं चाहती तो वह ठीक नहीं है। तुम छोटी बच्ची नहीं हो। मैं विश्वास करती हूं कि मेरी बातें तुम समझ रही होगी। जहां तक तुम्हारा और तुम्हारे परिवार का संबंध है, मैं हमेशा ही एक हितैषी हूं। बस, मुझे तुमसे इतना ही कहना था। अगर तुम लोग मुझे अपने परिवार की एक दोस्त मानोगी तो मैं खुश होऊंगी। नहीं मानो तो भी उसके लिए मैं दुखी नहीं होऊंगी। तुम्हारे पिता अपने आचरण के कारण पहले से बदनाम हो चुके हैं। अव मेरी दोस्ती के कारण ही उनकी वदनामी बढ़ जाये – ऐसी कोई वात नहीं है। इस दोस्ती से मैं ही बदनाम होऊंगी। मैं भी वही चाहती हूं। लेकिन मेरे और तुम लोगों के बीच का स्नेह संबंध उस कारण से बिगड़ न जाये। यही बताने के लिए मैंने तुम्हें बुलाया है। ठीक ! एक कप काफी पियोगी न?" मैं उठ जाती हूं।

मुझे देखकर यह सहानुभूति के साथ हंसती है। "उस रविवार को जो आप भोज देने वाली थीं उस दिन मैंने 'डिसअपांइट' कर दिया। उसके बारे में मुझे आपसे वहुत कुछ कहना है। मैंने कहा था कि उस दिन रसोई बनाने में मैं आपकी मदद करूंगी। कम से कम काफी

बनाने में मैं आपकी सहायता करूंगी..." यों अंग्रेजी में बड़े सहज भाव से बोलती हुई यह रसोईघर में आ जाती है।

हम दोनों में अब एक नये ढंग की आत्मीयता उत्पन्न हुई है। मैं इसकी साड़ी को देखकर आश्चर्य करती हूं। मैं आज पहली बार इसे साड़ी पहने हुए देख रही हूं। इस पर भी मैं टिप्पणी करती हूं। मंजु कहती है, "इसके पीछे एक कहानी है।"

25

आज मंजु को देखते ही मन में आया कि इसके इस 'वेश परिवर्तन' के बारे में कुछ कहूं। लेकिन यह सोचकर कि गंभीर मूड में बात करने के लिए जब आयी है तो साड़ी के बारे में, जेवर के बारे में कुछ कहा जाये तो वातावरण बिगड़ जायेगा, मैंने उस संबंध में कुछ नहीं कहा।

साधारणतया मंजु हमेशा सलवार और कमीज ही पहनती है। उसी में कोई पचास तरह के सूट उसके पास हैं। कैनवास जैसे कपड़े जिस पर रंगदार चौखटे लगे हैं, गाढ़े रंग के कपड़े जिन पर 'डिजाइन' है, गेरुए रंग के जैसे संन्यासी पहनते हैं, चमेली जैसे सफेद रंग पर जरी की धारी वाले, एकदम चिकने 'प्लेन कलर' के, पीठ पर और छाती पर 'एम्ब्राइडरी' का काम किये हुए जैसा कि हाथी पर लटकते कपड़े पर होता है, गले पर लच्छा रखकर सिले हुए, छोटी घंटियों वाले आदि तरह तरह के कपड़ों के सूट वह पहना करती है।

मंजु को वह सब पोशाकें अच्छी लगती हैं। कभी कभी ऊपर एक चादर ओढ़ लेती है। चुन्नी या चादर के बिना भी मंजु बहुत भव्य लगती है। कभी एक 'फ्राक' मात्र पहनकर खड़ी रहती है। उस समय वह छोटी सी बच्ची लगती है।

अब देखो तो सही, जैसे कोई 'मम्मी' हो, यों साड़ी पहने आ गयी है। मुझे लगा, मानो यह मुझे जताना चाहती है कि 'मैं भी एक स्त्री हूं, मुझसे आप गंभीरता से बात कर सकती हैं।' यह गंभीर विषय ही है। मुझे तो सारी बातें बताती हैं। कोई दुराव-छिपाव नहीं रखती। कितनी होशियारी से, समझदारी से गंभीर उलझन को सुलझाती हुई हंसती हंसती बोल रही है।

काफी तैयार करते करते ही मैं मंजु की बातें सुन रही हूं। यह कह रही है कि इसकी मां ने इसे अब आगे सलवार, कमीज, फ्राक आदि पहनने से मना कर दिया है। मां ने कह दिया, "अगर तुम साड़ी पहनकर कार में जाओगी, कार में ही आओगी, तभी कालेज जा सकती हो। नहीं तो नहीं जा सकतीं। पहले तो उसने यही कहा था कि कल से तुम कालेज न जाना।" मंजु इन सारी घटनाओं को बिना किसी लंबी भूमिका के सहज ढंग से कहती जा रही है। मैं सब समझ रही हूं।

अलाप किये जाने पर क्या यह कहने की जरूरत पड़ती है कि 'यह संगीत है'? मैं उसके चेहरे की ओर नहीं देख रही हूं, ताकि मेरी कोई प्रतिक्रिया इसे पता न लगे। चुपचाप उसकी बातें सुन रही हूं। मन में आश्चर्य हो रहा है। यह लड़की कितनी होशियार है।

मंजु कहती है, "मिस गंगा, आप ही बताइए। मेरी कितनी ही दोस्त हैं...गर्ल्स...अब उसी प्रकार एक 'बाय फ्रेंड' भी हो तो उसमें क्या बुराई है? ही वाज जस्ट ए फ्रेंड। बस उतना ही। मां पूछती है कि क्या प्रेम-वेम हो गया है? 'टांग तोड़ दूंगी' कहकर 'ब्रूट' की तरह चिल्लाती है। मेरी तो एकदम बेइज्जती हो गयी। उसी के सामने मुझे पीटने के लिए दौड़ी आयी मां। पहले तो मुझे बड़ा दुख हुआ। दो दिन तक मैंने खाना नहीं खाया; पड़ी रोती रही। उसके बाद ही सोचा कि यह मां बेचारी क्या समझ सकेगी? उसकी बुद्धि बस इतनी ही है।" मंजु संभल गयी, "आजकल मैं उस लड़के से नहीं मिलती हूं। उससे भी मैंने साफ कह दिया है।"

यह क्या 'वह लड़का' 'वह लड़का' कह रही है ! "हाउ डिड यू मीट हिम?" मैं पूछती हूं। मैंने अंग्रेजी में पूछा इसलिए 'हिम' कह दिया जिसका अर्थ 'उसको' और 'उनको'— दोनों होता है। उसके बारे में आदर या अनादरपूर्वक बोलने का प्रश्न इससे सुलझ गया। मैं अपनी ओर से उस लड़के को आदर न दूं तो भी यह जब सुनेगी तो इसे मेरी इस बात में आदर दिखाई देगा ही !

मंजु कुछ सकुचा रही है। क्यों लजा रही है? कह रही है कि जब यह कार में जाती है तो वह स्कूटर पर आता। दोनों गाड़ियां साथ साथ चलतीं। कार के बिलकुल 'साइड' में ही वह अपना स्कूटर चलाता हुआ आता। इतना काफी नहीं है क्या? फिर दोनों की मुलाकात हो गयी। दोस्ती हो गयी, बस ! दोस्ती ऐसे ही तो होती है।

मैं कुछ टिप्पणी किये बिना सुना रही हूं। मंजु आगे सुना रही है, "उसके बाद एक दिन कालेज में हमारी कार नहीं आयी।" मैंने नहीं पूछा कि कार क्यों नहीं आयी? इसने घर पर जानबूझकर कह दिया होगा कि कालेज कार न भेजी जाये। या नहीं तो कार जब तक कालेज पहुंचे उससे पहले ही यह कालेज से चल दी होगी। यह मेरा अनुमान है। इन विवरणों के बारे में ज्यादा क्या तहकीकात करना ?

मंजु कह रही है कि...यह बस स्टैंड पर आकर खड़ी रही। बड़ी देर तक बस नहीं आयी। उसके बाद दो-तीन लड़कियां इकट्ठी हो 'ड्राइव-इन' होटल तक गयीं, आइसक्रीम खाने या काफी पीने के लिए। जब ये लोग होटल में गयीं तो वह लड़का भी अपने मित्रों के साथ एक पेड़ के नीचे बैठा आइसक्रीम खा रहा था। उनमें से एक लड़का इसकी सहेलियों में से एक का 'बाय फ्रेंड' था। उस लड़के ने उसकी सहेली का 'हाय' कहकर 'अभिनंदन' किया। इसकी सहेली ने भी जवाब में 'हाय' कहकर खुशी प्रकट की। तब उस स्कूटर वाले लड़के ने इसे देखकर इसकी सहेली के 'बाय फ्रेंड' के कान में कुछ कहा, तब दोनों हंसे। मंजु ने जान लिया कि वे लोग इसी के बारे में कुछ कह रहे हैं। तब इसने सहेली से कहा कि मैं उस 'स्कूटर वाले' को जानती हूं। फिर सबने एक-दूसरे का परिचय प्राप्त किया। आइसक्रीम बांटी गयी। चुटकुले सुनाये गये। 'मौटनी शो' का कार्यक्रम बना। बस, यहीं से सिलसिला चल पड़ा। वह लड़का कभी कभी अपने स्कूटर पर इसे ड्राप कर जाता था और 'सी यू टुमारो' कहकर चला

जाता था।

मंजु अंत में अपनी कहानी का उपसंहार करती हुई कहती है —"नथिंग हैंपेंड। व्हाट इज रांग?" कितने सहज ढंग से बताती है। मुझे यह सब कुछ गलत नहीं लगता। ये लड़कियां मेरे समान अबोध नहीं हैं। इन्हें व्यवहार की शैली मालूम है। अपने को बचा लेना भी मालूम है। इन्हें किसी पुरुष से कोई डर नहीं है। ये लड़कियां हमेशा झुंड में रहती हैं। ऐसी घटनाओं को ये लोग 'एंज्वाय' करती हैं। मुझे इसमें कोई त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती है। अगर मैं भी अपने कालेज के दिनों में इसी तरह रही होती, तो उस दिन इनकी कार में चढ़ते ही इनके उद्देश्यों को समझ लेती और 'आय एम सारी', 'लीव मी' कहकर अपने को छुड़ा लेती। फिर कार से उतरकर उन्हें 'टाटा' कहकर चली गयी होती।

उन दिनों मेरी ऐसी स्थिति थी कि किसी भी पुरुष को देखते ही शर्म से सिकुड़ जाती। किसी पुरुष को देखने पर स्त्री को क्यों लजाना चाहिए? मैं जिसे 'शर्म' कहती हूं, उसे पुरुष 'प्रेम' समझता है। शर्म ही प्रेम का लक्षण हो जाता है। इस लाज से मुग्ध होकर ही वह एडवांटेज ले लेता है, बेजा फायदा उठाता है। आगे बढ़ जाता है। यह सब क्यों होता है? बड़ी-बूढ़ी लड़कियों को बार बार यह कहकर कि 'पुरुष को सिर उठाकर नहीं देखना चाहिए', 'उससे बोलना नहीं चाहिए', 'उसके साथ किसी प्रकार का संपर्क नहीं रखना चाहिए', उनके मन में बचपन से ही एक भावना पैदा कर देती है। परिणाम यह होता है कि अडोलोसेंट पीरियड में लड़कियों को पुरुष का स्मरण करने मात्र से उसकी आकृति में एक प्रकार का 'थ्रिल' होने लगता है।

अगर यह थ्रिल किसी लड़की को हर किसी पुरुष की निकटता से होता हो तो, मेरे विचार में, वह लड़की 'अनैतिक' कही जा सकती है।

मामाजी के मन में मेरे बारे में जो इतनी निम्न भावना उत्पन्न हुई, इसका कारण यही था कि उन दिनों मुझे किसी भी पुरुष की निकटता में ऐसी पुलक महसूस होती होगी। वे ऐसा ही समझते थे।

अब मैं उस स्थिति को पार कर चुकी हूं। वैसी मानसिक पुलक मुझे किसी भी पुरुष की निकटता से नहीं होती है। अब किसी भी पुरुष को देखकर मुझे डर या संकोच का अनुभव नहीं होता है। अब भी, कुछ दिन पहले मुझे एक भय था कि मुझे कोई रेप न कर दे। वैसा डर अब नहीं है। उस दिन मैं मामा की बेल्ट उनके हाथ से छीनकर अपने हाथ में लिये खड़ी रही। उसी समय वह भय मुझे छोड़कर भाग गया। अब मुझे कोई डर नहीं है। पुरुषों के प्रति उत्पन्न होने वाली मानसिक पुलक भी नहीं है। अब वास्तव में मुझमें मानसिक परिपक्वता आ गयी है।

यह कैसी विचित्र स्थिति है ! यह लड़की जब अपनी कहानी सुना रही है तब मैं भी इसके समानांतर अपने बारे में भी सोचती जा रही हूं। ऐसा नहीं है कि इसकी कोई बात मैंने अनसुनी कर दी हो। इसकी सारी बातें सुनती जा रही हूं।

"यह मित्रता कितने दिन तक चलती रही? फिर क्या हुआ...?" मैंने पूछा ! मैंने अभी इस संबंध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है। मेरा मन अभी इस बारे में संज्ञाहीन सा है।

हम दोनों सोफे पर आकर बैठ गयीं। मंजु सुना रही है, "कोई पांच-छह बार ही मेरी उस लड़के से मुलाकात हुई। जब कभी ऐसी मुलाकात हुई, हम दोनों मिलकर 'मेटिनी शो' देखने गये। एक दिन उसके स्कूटर पर आकर मैं घर पर उतरी तो मां ने देख लिया। मैं उस लड़के को घर के भीतर ले आयी और मां से 'यह मेरा बाय फ्रेंड' कहकर परिचय करा दिया। तुरंत ही मां को गुस्सा आ गया। उस लड़के की उपस्थिति में ही चिल्लाने लगी, 'तुम्हें पढ़ने के लिए बाहर भेजते हैं कि 'बाय फ्रेंड' बनाने के लिए ?' ...फिर उस लड़के को 'जाओ यहां से' कहकर निकाल बाहर किया।" बेचारी बच्ची ! यह कहते कहते जैसे अब भी रो पड़ेगी। उस वक्त इसके मन में कैसा अपमान अनुभव किया होगा, मैं कल्पना कर सकती हूं।

इसकी मां ने इसकी सलवार, कमीज वगैरह उठाकर फेंक दीं। साथ ही, आदेश दिया कि अब आगे से साड़ी ही पहननी है। और कभी घर से बाहर नहीं निकलना है। उसने उसके कालेज की पढ़ाई बंद करवा देने की भी धमकी दी।

इसी संदर्भ में पद्मा ने कहा था, "क्या तुम समझ रही हो...जिस प्रकार तुम्हारे बाप को मनमाने घूमने को मैंने छोड़ रखा है, उसी प्रकार अपने बच्चों को भी छोड़ दूंगी? 'फ्रेंड' कहकर तुम्हारे बाप के संग घूमती है वह गंगा, क्या वैसी बनना चाहती हो? जब से वह यहां आने लगी है, तभी से तुम बिगड़ गयी हो। अब आगे से उस गंगा को घर में नहीं आने दूंगी, तुम भी उसके घर कभी नहीं जाओगी। मेरी अनुमति के बिना टहलने-वहलने भी नहीं जाना है।"

बेचारी ! दो-तीन दिन रोती, जिद्द करती रही, लेकिन अंत में अपनी मां की सभी शर्तें स्वीकार करके केवल कालेज जाने की अनुमति प्राप्त कर ली है।

इसकी मां ने मेरे बारे में कहा था – 'फ्रेंड कहती हुई इनके साथ घूमती रहती हूं' —लेकिन स्वयं मंजु के मन में मेरे प्रति कभी गलत धारणा उत्पन्न नहीं हुई। फिर भी यह विचार जरूर आया कि मां झूठ क्यों कहेगी? फिर भी सोचा कि जब अपने बारे में मां ने गलत धारणा बनाकर इतना ऊधम मचाया है तो गंगा के बारे में सच्ची बात क्या कहती होगी ! फिर भी मां से डरकर इसने निर्णय कर लिया था कि मेरे साथ वाकिंग पर नहीं जायेगी और मुझसे नहीं मिलेगी। मेरे बारे में इसने इनसे कुछ भी गलत बात नहीं कही। हां, अपने पिता से इतना जरूर कह दिया कि 'अगर गंगा आपकी फ्रेंड है तो अपने तक ही रखिए, मुझे क्या है?' इस बात के लिए अब 'फील' कर रही है? ''फिर भी मां को यह सब नहीं समझाया जा सकता'' – मंजु अपना खेद प्रकट कर रही है।

मैं इसे समझाती हूं, "तुम्हें अपनी मां की नजरों में अच्छा बनना चाहिए। उनके स्नेह को सुरक्षित रख लेना बहुत जरूरी है।"

मैं किसी प्रकार यह सब भांप गयी थी और अपने आप ही मैंने इनके यहां आना-जाना

बंद कर दिया था। अपनी इस विवकेशीलता पर मैं अपने ही को बधाई दे लेती हूं।

"तुम उस लड़के से प्यार करती हो? क्या नाम है?" कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह लड़की किसी को अपना दिल दे बैठी हो। लेकिन अपनी मां को जो वचन दिया उससे डरती हुई गुप्त रूप में तड़प रही हो? व्याकुलता के साथ मैंने यह प्रश्न किया।

"यू मीन सामजी?" कहकर हंसती है। ''उसका नाम है श्री सामिनादत। सब उसे 'सामजी' कहकर पुकारते हैं। बहुत भला है। इसी प्रकार हर एक का कोई न कोई मजेदार नाम है। मेरा क्या नाम है, जानती हैं ? 'मानच'। एक लड़की का नाम है, 'मिस कृणवेणी'। उसे पुकारते हैं, 'च्चिक्की'...''

अंटशंट बातें करती जा रही है, लेकिन मेरे प्रश्न का जवाब नहीं दे रही है। दूसरी बार जोर देना उतना उचित नहीं मालूम हुआ। एक बार जो पूछ लिया, वही बहुत है। इसकी उम्र क्या है? मेरी उम्र क्या है? फिर भी जो पूछ लिया, सो पूछ लिया। जब यही कुछ टालमटोल कर रही है तो मुझे भी बात वैसी ही छोड़ देनी चाहिए। यह तो इसका निजी मामला है !

मंजु अपने ढंग से वात करती रही ; अपनें फ्रेंड्स के बारे में, उनके जोक्स के बारे में बात करते करते मौन हो गयी है। मेरी तरफ देख रही है। कुछ गंभीर होकर देख रही है। फिर हल्की मुस्कुराहट के साथ कहती है – पूरी हंसी नहीं है। थोड़ी हंसी है। थोड़ी व्यथा है। जिस स्पष्टता से, बिना किसी उलझन में इसे पढ़ाती रही, उसी स्पष्टता से अंग्रेजी में बोलती है, "मिस गंगा ! यू आस्क्ड मी समथिंग अबाउट लव। मेरी मां ने तमिल भाषा में ही बड़े गुस्से से पूछा था। आप अंग्रेजी में सहानुभूति के साथ पूछ रही हैं। मैं मां से नहीं कह पायी। आपसे कह रही हूं। क्या आप यह सोचती हैं कि पुरुष और स्त्री के मध्य, आप यह जो 'लव' कह रही हैं इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार की फ्रेंडशिप नहीं हो सकती? क्या आप सोचती हैं कि दोनों अच्छे मित्र नहीं रह सकते? आई लाइक सामजी। आई डोंट नो वेदर इट इज लव (मैं सामजी को पसंद करती हूं, यह नहीं जानती कि यह 'प्रेम' है या नहीं।)। हम फ्रेंड्स हैं, बस इतना ही। 'बाय फ्रेंड्स' का अर्थ है वे लड़के जो दोस्त हैं। 'गर्ल फ्रेंड्स' का अर्थ है वे लड़कियां जो दोस्त हैं । बस इतना ही तो। इससे अधिक और कोई अर्थ नहीं है। जैसा आप कह रही हैं, उस प्रकार किसी व्यक्ति को प्रेमी के रूप में चुनने लायक उम्र या परिपक्वता अभी मेरे पास नहीं है – और न ही ऐसी आवश्यकता है। हम तो बच्चे हैं। बच्चों की तरह खेलते हैं। इस उम्र में बड़ों जैसा स्वातंत्र्य, बच्चों को प्राप्त होने वाली रियायत और साथ ही, एकांत भी समान रूप से प्राप्त हो सके तो हम लोगों का जीवन स्वस्थ रहेगा..."

ओह ! यह कितना अच्छा बोलती है ! मन में आया कि इसे ऐसे ही उठाकर गले लगा लूं। मेरी आंखें क्यों इस प्रकार छलछला रही हैं ? मैं रोती नहीं हूं। मन में ठंडक महसूस हो रही है।

"सामजी अच्छा व्यक्ति है। हर समय मजाक में बोलता है। हम सब हंसते हैं। हम सभी

मित्र एक-दूसरे को चाहते हैं। एक-दूसरे के बारे में गलत या गंदे विचार नहीं रखते। हमें ऐसी आशंका भी रहती है कि कोई हमारे बारे में उल्टा न समझ बैठे। हम एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव रखते हैं। उचित शिष्टाचार बनाये रखते हैं। वीं आर फ्रेंक। एट दी सेम टाइम वि हैव रिजर्वेशंस। मैं एक पुरुष को पुरुष के रूप में देखती हूं। मुझमें अपने 'गर्ल' होने का कोई कांप्लेक्स नहीं है। उसके गुणों को देखकर, उसकी क्षमता को देखकर उससे स्नेह भाव रखती हूं। यह जानकर कि वह अशिष्ट व्यवहार नहीं करेगा, उसके साथ व्यवहार करती हूं। अगर वह गलत व्यवहार करे तो हम उसे सुधार देंगी। ऐसे व्यवहार की परिस्थितियां पाकर कई तो विगड़ भी जाती हैं। वैसे लोग तो उन परिस्थितियों के बिना भी बिगड़ जायेंगे। उदाहरण के लिए आप हैं – आप ही थोड़ी देर पहले कह रही थीं कि आपने अपनी टीन एज में क्या अनुभव प्राप्त किया। उसका कारण क्या आपका 'वाय फ्रेंड' था? अगर मेरे पिता आपके 'बाय फ्रेंड' होते तो वैसा कभी नहीं होता। क्या मैं ठीक कह रही हूं? वे अब तो आपके 'बाय फ्रेंड' ही हैं। अब आप यह अंतर देखती हैं न? मैं मित्रता को इस रूप में देखती हूं, इसीलिए आपके और मेरे पिताजी के संबंध के बारे में मैं कुछ गलत विचार नहीं रखती हूं। लेकिन इन बातों को लोग नहीं समझेंगे। मुझे अपने दोस्त की अपेक्षा मां ही अधिक प्रमुख है। इस फ्रेंडशिप के बारे में समझाना हो तो भी उसके लिए उनकी इच्छा के अनुसार चलकर फिर उनसे बात करनी पड़ेगी। तभी मां को मेरी वातों पर विश्वास होगा।" यह आह भरती है, ओंठों से 'च्' की ध्वनि होती है। आंखें छलछला आती हैं। गालों और ओंठों पर रुलाई कांप रही है। उठकर मुंह मोड़ खड़ी हो जाती है और आंखें पोंछ लेती है। मेरे दिल में कुछ अटक सा जाता है। मैं दुख को निगल जाती हूं।

फिर मुंह मेरी ओर करके हंसते हुए खंखारकर गला साफ करते हुए बोलती है – "अगले दिन उन सब फ्रेंड्स को बुलाकर मैंने 'ड्राइव-इन' होटल में पार्टी दी। मां से अनुमति लेकर ही वैसा किया था। मुझे साड़ी पहने देखकर सब को आश्चर्य हुआ। सब लोगों के सामने मैंने सामजी से क्षमा मांगी। मां की ओर से 'क्षमा' मांगी ; उस दिन मां ने जो वैसा व्यवहार कर दिया था उसके लिए। उसके बाद मैंने अपने परिवार के बारे में, मां की अपने परिवार में जो भूमिका है, और मेरे पिताजी की जो स्थिति है – इसके बारे में लोगों को बताया। मैंने यह भी वताया कि 'मुझे अपनी मां की आज्ञा के अधीन रहने की क्यों आवश्यकता है। मेरे लिए पढ़ाई अधिक मुख्य है ; पढ़ाई में जो प्रसन्नता है, वह और किसी वस्तु में नहीं मिलेगी। यह सत्य है। मैं किसी के लिए भी पढ़ाई का त्याग नहीं कर सकती हूं। हम तो हमेशा की तरह फ्रेंड्स रहेंगे। लेकिन फ्रेंडशिप का मतलब आइसक्रीम खाना, मेटिनी शो देखना, एक्सचेंज आफ जोक्स नहीं है। मित्रता वास्तव में एक-दूसरे को समझने में है। मैं विश्वास करती हूं कि आप मुझे समझेंगे। मैं दुबारा पुष्टि कर रही हूं – हम दोस्त हैं।' मेरी बातें सुनकर सामजी रो पड़ा। उस दिन हम सबने मौन रूप से आईसक्रीम खायी। आजकल मिलने पर विश कर लेते हैं, बस।"

मंजु अपनी घड़ी में समय देख रही है। मैं मंजु की सूरत में समय की गति देख रही हूं।

"मंजु, आई रियली एडमायर यू," कहकर मैं उसे गले लगा लेती हूं। मैं सोचती हूं कि मैंने इसे केवल कालेज की पुस्तकें पढ़ायी थीं। इसने तो मुझे जीवन का एक अच्छा-खासा पाठ पढ़ा दिया।

"अव पांच वज रहे हैं। मैंने मां से कह रखा है कि आपसे मिलकर पांच बजे तक घर वापस आऊंगी।" जब यह कह रही है, तब मेरा मन गुप्त रूप से लज्जित हो रहा है।

26

उसी दिन शाम, जब ये आये तो मैंने सारी बातें बता दीं। केवल मंजु के 'बाय फ्रेंड' को मंजु की मां द्वारा अपमानित किये जाने को कुछ अस्पष्ट ढंग से सूचित किया। उस दिन शाम को जो आये रात के नौ बजे तक यहीं रहे। मैं ही सब बातें विस्तार से समझाती रही और विलंब कर दिया। नौ बजे के ऊपर इनसे रहा नहीं जा रहा था। माथे पर हाथ फेर रहे थे। बांहें उठाकर जंभाई लें रहे थे। सिगरेट जला जलाकर बुझा रहे थे।

मैं समझ गयी। लगता है, 'पिपासा शांति' का वक्त हो गया है। उसके मिलने तक ये खाना नहीं खायेंगे। यह जानते हुए भी मैंने वैसे ही कहा, ''यहीं खा लीजिए न ! खाना तो बेशक सिंपल ही बना है।''

"ओह !" उन्हें जैसे धक्का लगा हो, इस तरह उठ खड़े हुए। "नो। मुझे अभी भूख नहीं है। इसके अलावा पहले से मालूम होता तो मैं अपना सामान साथ ले आता। मुझे क्षमा करना। कल आऊंगा...तुम्हें भी देर हो रही है।" कहकर उठे और चले गये।

मैं हंसते हुए इन्हें विदा करके लौट आयी। फिर अकेले रहते समय सोचने लगी। ये मेरी सारी बातें 'हूं' 'हां' कहकर सुनते ही रहे, लेकिन जवाब में कुछ नहीं कहा।

क्या समझा होगा? मेरे और इनके बीच जो संबंध है, उसकी बुनियाद का पता मंजु को लग गया है – क्या इससे अपमान का अनुभव कर रहे हैं? तब तो शायद अपनी बेटी को देखने में ही अब लज्जा महसूस करेंगे? ये बातें मंजु को मैंने बता दीं – इसलिए मुझ पर नाराज होंगे? मंजु की इतनी उम्र हो गयी कि उसका 'बाय फ्रेंड' भी है – इस पर आश्चर्य कर रहे होंगे? पद्मा का मंजु के प्रति जैसा कटु व्यवहार हुआ था उससे दुखी हो गये होंगे?

इन्होंने अपना कोई भाव व्यक्त नहीं किया था। अपने बारे में, इनके मेरे साथ इस संबंध के बारे में मंजु गलत नहीं समझ रही है, इस तथ्य से ये शायद इतने प्रसन्न हो गये कि मेरी और बातों पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया।

पूरी रात मैं यही बातें सोचती रही। लेकिन अगले दिन सवेरे जब ये आये तो इनसे कोई प्रश्न नहीं किया। किसलिए पूछती? मैं खुद क्यों पूछूं? मुझे जो कहना था वह मैंने कह दिया। अब उसके बारे में ये क्या सोच रहे हैं – यह जानकर मुझे क्या करना है? अगर ये मुझसे कुछ कहना चाहते हैं तो स्वयं ही कहें। मैं चुप रह गयी। इन्होंने भी मुझसे कुछ नहीं कहा।

इन चार-पांच दिनों से हमने कोई खास बात नहीं की। हममें ऐसी कोई बातचीत नहीं हुई जिसे याद रखा जा सके। सवेरे छह-साढ़े छह बजे तक आ जाते हैं। फिर हम टहलने निकल जाते हैं। वापस आने के बाद दफ्तर जाते वक्त मेरे घर आकर मुझे कार में ले जाते हैं। इधर, दो दिन से शाम के वक्त नहीं आ रहे हैं। मैं टैक्सी से घर आ रही हूं। इन्हें शायद कोई काम होगा। लेकिन इन चार दिनों से ये कुछ बदल से गये हैं। किसी बात को बड़ी गंभीरता से सोच रहे हैं। 'क्या बात है?' — पूछने पर कहते हैं 'कुछ नहीं।' फिर अचानक पहले के जैसे मौन हो जाते हैं। ये तो हमेशा कुछ न कुछ बात करने वालों में से हैं। अब क्यों ऐसे शब्दहीन हो गये हैं? जो समय बीत गया, वह बीत गया,अब इतने दिनों के बाद क्यों ये एक नया आदमी बनना चाहते हैं? इन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए...

चार दिन के बाद आज ही शाम के समय मेरे कार्यालय पर कार लेकर आये।

जब ये कार चला रहे हैं तब मैं कनखियों से इन्हीं को देख रही हूं।

आजकल ये कितनी ही बातों में बदल गये हैं। लेकिन दाढ़ी इस प्रकार क्यों बढ़ा रखी हैं? तीन-चार दिन से शायद दाढ़ी नहीं बनायी है। रोज वाकिंग जाने के कारण कुछ दुबले हो गये हैं। तोंद घट गयी है...

लेकिन आज चेहरा मुरझाया हुआ नजर आ रहा है। शायद ठीक तरह से खाना नहीं खाया होगा। किसी बात से खिन्न होकर बगैर खाये रहे गये हैं क्या? चाहे कोई भी बात हो, उपवास भला क्यों करें?

"दोपहर को आप ने क्या खाया?" मेरा प्रश्न शायद उनके कान में नहीं पड़ा। मेरे प्रश्न पर ध्यान दिये बिना ही, कुछ समझ लेने का बहाना करते हुए सिर हिला देते हैं। मुझे साफ मालूम हो रहा है कि मेरा प्रश्न इनकी समझ में नहीं आया। इसलिए दुबारा, जैसे नये सिरे से पूछती हूं, "दोपहर को शायद आपने कुछ नहीं खाया?"

"हां! चेहरे से ही तुम्हें दिख जाता है? और क्या क्या दिख रहा है...बताओ तो!" किसी साधारण भाव से हंसकर कह रहे हैं।

"आप कुछ अस्वस्थ से लग रहे हैं। तीन-चार दिन से ही देख रही हूं, आप कुछ अनमने से हैं। दो दिन से शाम के वक्त आप नहीं आये। मैंने सोचा, आप व्यस्त होंगे। लेकिन सवेरे के समय भी आप चुप रहने लगे हैं। किसी बात की चिंता है क्या? इस पर उपवास। क्या बात है आखिर?"

ये कुछ जवाब नहीं देते। एक सिगरेट जला लेते हैं। "मैं कभी नहीं खाता तो इसकी चिंता करती हुई मेरी एक आया पूछा करती थी, 'खाना क्यों नहीं खाया?' तुम दूसरी हो जो वैसा सवाल कर रही हो।" यह कहते हुए ये सिगरेट पीने लगते हैं।

फिर अपने आप कहने लगते हैं, "इस बात पर उन लोगों का कोई दोष नहीं कहा जा सकता। अगर मैं घर में नहीं खाता हूं तो वे समझ लेते हैं कि मैंने घर से बाहर कहीं खा लिया

होगा। मैं नियमित रूप से घर में खाता कहां हूं?" ये अपने आप बोल रहे हैं। सुनकर मुझे बड़ा कष्ट होता है।

"आपको कौन सी मानसिक पीड़ा है? बताइए। बात चाहे कुछ भी हो, लेकिन बिना खाए क्यों रहते हैं?" मैं समझाती हूं।

"मैंने कहा कि घर में नहीं खाता हूं। खाये बिना नहीं रह रहा हूं।"

"आज मेरे साथ खाना खाइये।"

"......"

"अगर आपको कोई नान-वेजिटेरियन चीज चाहिए तो बाहर से खरीद ले आयेंगे। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

बड़े आश्चर्य के साथ मेरी ओर देखते हैं।

"तुम जानती हो..." कुछ कहने को होते हैं। लेकिन मुंह से बात नहीं निकल पा रही है। कुछ रुककर फिर बोल उठते हैं, "देखो ! मैं खुद आज तुम्हारे साथ तुम्हारे घर पर खाने के विचार से आया हूं। उस दिन तुमने खाने को कहा था। लेकिन मैं बगैर खाये चला गया था ! लेकिन आज, मैं अपना 'मिनीबार' भी साथ ले आया हूं। मैं दो दिन से कुछ अनमना सा हूं न? उस दिन, मैं घर गया और पद्मा के साथ झगड़ा कर बैठा। अब उससे मेरा मन उचट गया है।"

"ओ, ऐसी बात है ! आयम सॉरी',' मैं कहती हूं। मैंने सारी बातें इन्हें बतायी थीं। बड़ी सावधानी के साथ ही बतायी थीं। फिर भी परिवार में मन-मुटाव उत्पन्न हो गया है। "शायद मैंने गलती की है," मैंने कहा।

"नहीं, नहीं, इसमें तुम्हारी क्या गलती है? पद्मा समझ रही है कि वह एक बड़ी डिक्टेटर है।" गुस्सा आ जाता है तो ये अंग्रेजी में बोलने लगते हैं। धड़ाधड़ बोलते जाते हैं – "समझ रही है कि उसके सामने सभी को दबकर रहना चाहिए। वह एकदम जंगली है। मंजु के कपड़े उठाकर फेंक दिये और उसे साड़ी पहना दी, जैसे वह कोई दादी हो गयी है। मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने कहा 'स्टाप दिस नानसेंस'। तुम बगैर जरूरत के सबके मामले में दखल दे रही हो। मंजु मेरी भी बेटी होती है। वह अपनी मर्जी के अनुसार रहेगी, अगर तुम्हें पसंद नहीं है तो तुम यहां से चली जाओ। यह मेरा घर है। वह तो एकदम जानवर है। मैं कुछ भी कहूं, उसकी समझ में नहीं आता।" ये कहते जाते हैं।

"मंजु जितनी समझदारी भी आपमें नहीं है। अगर मुझे यह पता होता कि इसके लिए आप वहां जाकर झगड़ा करेंगे तो मैं आपसे कुछ कहती ही नहीं। पद्मा को एक माता के रूप में अगर आपने समझ लिया होता तो इस पर आप इतना गुस्सा नहीं रखते। आजकल की लड़कियों का जो बर्ताव है, उसे देखते हुए किस मां को डर या आशंका नहीं होगी?" मैं समझाती हूं।

"तो, पद्मा जो कर रही है, वह बिलकुल ठीक है – ऐसा ही है न?" मुझ पर भी गुस्सा

करते हैं। मैं हंस देती हूं। ये मुझ पर गुस्सा करें तो मुझे अच्छा लग रहा है।

"ठीक ! गलती क्या है – इसका कोई महत्व नहीं है। कोई मां अपनी बेटी को अनुशासन में रखती है तो वह ठीक नहीं है ? क्या मंजु ने आपसे कहा था कि मां उसे तंग करती है? मुझसे कहते वक्त भी मंजु ने यही कहा था कि 'मां की बस इतनी ही समझ है।' कितनी शालीनता के साथ उसने बात की थी !" मैं समझाती हूं।

"किसी मां का अपने बेटी को कंट्रोल में रखना तो ठीक है। लेकिन कोई पति पत्नी को डांटे तो क्या वह अन्याय है? उस मर्द को क्या इतना भी हक नहीं है? मैं तो सिर्फ एक खिलौना ही हूं न ! अधिकार तो केवल पद्मा का ही है !" ये कहते हैं।

पद्मा के पास जाकर ये टकराये हैं। उसके पास इनकी कुछ चली नहीं, हार गये हैं, ऐसा लगता है। अब और इन्हें छेड़ना ठीक नहीं – इस विचार से मैं चुप रह जाती हूं।

"क्या काफी पी लें?" ये पूछते हैं।

"घर जाकर ही काफी पी लेंगे। तब कपड़े बदलकर 'ड्राइव-इन' होटल में जायेंगे।" मैं कहती हूं। अगर मैं ऐसी कोई बात कह दूं तो ये बड़े खुश हो जाते हैं।

"हम बाहर ही क्यों न खाना खा लें?" ये पूछते हैं।

"नहीं, खाना मैं घर पर ही बना लूंगी। आपके लिए जो 'नान-वेजिटेरियन डिश' चाहिए, सिर्फ उसे बाहर से खरीद ले आयेंगे...ठीक है?" मैं जानबूझकर बड़ा उत्साह दिखाकर बोल रही हूं।

ये अब तक जिस 'मूड' में थे, उससे छूटकर छोटे बच्चे के जैसे बड़े उत्साह के साथ कहते हैं, "ओके।"

घर पहुंचकर ये हाल में बैठ जाते हैं। मैं काफी बनाने के लिए रसोईघर के भीतर चली जाती हूं। मैं अभी अपने कमरे के भीतर नहीं गयी। हैंडबैग सोफे पर रखकर जल्दी जल्दी काफी तैयार करने लगती हूं। बेचारे ! दोपहर को भी इन्होंने कुछ नहीं खाया होगा।

"बिस्कुट लेंगे?" मैं पूछती हूं।

"नो, थैंक्स।" कहते हैं।

'बिस्कुट लेंगे' यह भी कोई पूछने की बात थी? एक तश्तरी में बिस्कुट और गिलास में पानी लाकर रख देती हूं। "खाइये...आपको देखने पर लगता है चार दिन से कुछ खाया ही नहीं। किसलिए स्वास्थ्य को बिगाड़ लेते हैं?"

ये एक विस्कुट लेकर खाने लगते हैं। हंसते हुए कहते है, "तुम्हें मेरे प्रति स्नेह है, इसीलिए हर बात को बढ़ा-चढ़ाकर देख रही हो। मैं ठीक हूं। मैं वक्त पर ही खाना खा रहा हूं।"

"झूठ" कहकर मैं रसोईघर में जाती हूं और काफी बनाती हूं। आज की कुकिंग बड़ी आसान हो गयी है। दूध गरम करके उसमें दो चम्मच पाऊडर मिला दो तो काफी तैयार। मां तो काफी के बीज लाकर भूनती भूनती थक जाती। उसके बाद मशीन में डालकर पीस देती,

फिलटर में गरम पानी डालकर...हाय री माई ! एक कप काफी पीने के लिए इतना परिश्रम? मां की उस काफी की बराबरी यह नहीं करती, यह सही है। लेकिन आजकल के भागाभागी वाले जीवन के लिए यही ठीक है।

इन्हें काफी देकर मैं मुंह धो लेने के लिए जाती हूं। घर में एक पुरुष का साथ होना मन को अच्छा लग रहा है।

आज क्या ये 'पीकर' यहीं रह जायेंगे? रह जायें तो क्या है? मुझे इनसे कोई डर नहीं है। आज यहीं रहने को कहूं तो कैसे? बदनामी हो ही गयी है। अब संकोच किस बात का? ये रात को यहां ठहरेंगे तो कहां सोएंगे? मामा का बिस्तर याद आता है। यहीं ... छिः! वह सोचने पर मन को घिनौना लगता है। ये उस बिस्तर पर नहीं सोयेंगे। मैं अपने बेड पर ही इन्हें सोने को कहूंगी। मैं हाल में एक चटाई बिछाकर सो जाऊंगी।

देखा जायेगा। रात का भोजन हो जाने के बाद ये स्वयं क्या कहते हैं —देखें। अगर घर चलने लगेंगे तो मैं नहीं रोकूंगी। इनके कार्यक्रम में बाधा डालने का मुझे अधिकार नहीं है।

मैंने कपड़े बदल लिये और कमरे से बाहर आती हूं।

"तुम बहुत अच्छी लग रही हो।"

"थैंक यू। चलें क्या?"

हम दोनों घर से बाहर आ जाते हैं। घर पर ताला लगाकर कार में बैठ जाते हैं। इतने में गली में रहने वाले लगभग सभी लोग निकल आते हैं और हमारी तरफ देखने लगते हैं।

मैं मंजु के बारे में इनसे कहती हूं। इन्हें समझना चाहिए वह जितनी समझदार है और कितनी जिम्मेदारी से काम करती है। मंजु के लिए ये पद्मा से लड़ाई न करें, इसकी कोई जरूरत ही नहीं है — इतना ये समझ लें। इसीलिए मैं बड़ी देर से बोल रही हूं। मैं जो भी कहती हूं, उस सबके उत्तर में ये सिर हिला देते हैं। मैं जब हंसती हूं, तब हंसते हैं। लेकिन थोड़ी देर बाद ही इनके चेहरे पर एक प्रकार का अंधेरा सा छा जाता है। समुद्र के किनारे, रोज की जगह पर ही, कार रोक देते हैं। आईसक्रीम वाला आता है। मैं सोच रही थी कि ये स्वयं उसे बुलाकर आईसक्रीम खरीदेंगे। कहीं दूर नजर गड़ाये, फूंकते हुए आईसक्रीम वाले की आवाज को भी अनसुनी करके चिंता में डूबे हुए हैं।

"आईसक्रीम खरीद लें क्या?" मैं पूछती हूं।

"ओ यस ! ...यहां लाओ भाई...दो कप पिस्ते वाली, दो कप वेनीला।" बड़े कौतूहल के साथ खरीदते हैं। यह कौतूहल झूठा है, यह अभिनय मात्र है — मेरा मन जानता है।

मैं भी इनके साथ मिलकर आज बड़ी खुशी से आईसक्रीम खा रही हूं। मेरी खुशी भी झूठी है, अभिनय मात्र है। ये मेरे लिए अभिनय कर रहे हैं, मैं इनके लिए अभिनय कर रही

हूं। इनके भीतर कोई घाव हो गया है, जो भर नहीं रहा है। वह घाव दुख रहा है, मेरे मन को मालूम हो रहा है। किस प्रकार पूछूं? पूछने पर भी क्या ये मुझसे कहेंगे? अगर कहने वाले होते तो मेरे न पूछने पर भी कह देते। उसे भुला देने के इरादे से, मुझसे थोड़ी देर बात करने के लिए ये आये हैं। मैं क्यों उस बात की याद दिलाकर इन्हें बेचैन करूं? लेकिन मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। ये क्यों ऐसे हैं? मैंने इन्हें इस तरह कभी नहीं देखा...कहीं इनकी तबीयत तो खराब नहीं...?

मैं मन ही मन सोचती हूं। लेकिन मुंह खोलकर कुछ नहीं कहती।

आईसक्रीम खा ली है। मैं देख रही हूं कि ये खाली कप को किस तरह से फेंकते हैं? वैसे ये उसे गेंद बनाकर दूसरे हाथ से बैट की तरह मारकर दूर फेंकते हैं।

लेकिन आज वैसे नहीं फेंका। बड़ी सहजता से, बाकी सबकी तरह उस कप को ये नीचे डाल रहे हैं। यह इनकी मनःस्थिति का संकेत दे रहा है।

"आर यू नाट वेल?" मैं पूछती हूं। ये कुछ नहीं कहते। मेरी तरफ देखकर हंसते हैं। व्यथा-भरी हंसी है। वह हंसी मेरे मन को असह्य पीड़ा देती है।

अचानक कहते हैं, "लाइफ इज नाट वर्थ लिविंग।"

"आपका क्या मतलब है?"

"मैं मर जाना चाहता हूं।"

सुनकर मेरा शरीर कांप जाता है। "क्या हुआ? मुझे बताइये...प्लीज !" मैं इन्हें छूती हूं।

"आय एम सारी।" ये मेरा हाथ हटाते हैं। "थोड़ी देर अलग रहना चाहता हूं।" कहते हुए ये कार से उतरकर थोड़ी दूर बालू पर जाकर खड़े हो जाते हैं और समुद्र की तरफ देखते हैं। मुझे इनके ये सब काम अजीब लग रहे हैं। इन्हें इस प्रकार नहीं बदल जाना चाहिए। क्या ये हमेशा की तरह, बच्चे के समान ही हंसते-खेलते कौतूहलमय ढंग से नहीं रह सकेंगे? मेरा हृदय कांपने लगता है। मुझे अब क्या करना चाहिए – समझ में नहीं आ रहा। मैं चुपचाप बैठी हूं।

इनके सिर के बाल हवा में बिखरकर उड़ रहे हैं। सिगरेट की चिंगारी को उड़ाता हुआ धुआं फैल रहा है। मैं कार में ही बैठी बैठी बड़ी देर तक इनकी पीठ की तरफ ही देखती रहती हूं। कब तक इसी तरह बैठी रहूंगी ? उतरकर मैं भी इनके पास जाकर खड़ी हो जाती हूं।

इन्हें मालूम होता है कि मैं पास में आकर खड़ी हो गयी हूं। मेरी ओर घूमे बिना ही कहते हैं, "अब घर चलें। मैं पीना चाहता हूं।"

27

मुझे पता नहीं, इनके मन में कितनी वेदना हो रही है। इन्हें गुस्से और दुख में मैंने देखा है। लेकिन आज की इनकी स्थिति कुछ भिन्न है। पहले मैंने ऐसा कभी नहीं देखा है। शायद इन्होंने स्वयं ऐसा पहले कभी अनुभव नहीं किया हो। एक अपूर्व व्यथा है। मुझसे मुक्त कंठ से कुछ कह नहीं पा रहे हैं। मन ही मन घुट रहे हैं। मैं इनकी इस स्थिति में किस प्रकार मदद कर सकती हूं ...?

कार में आकर बैठ जाते हैं। एक और सिगरेट निकालकर जलाते हैं। मुझे देखकर हंसते हुए कहते हैं, "आय एम सारी टू स्पाइल यूअर ईविनिंग लाइक दिस।"

"यह सब क्या फार्मेलिटी है? जब आप कष्ट में हैं, तब मैं आपके साथ हूं – यह देख मुझे आश्वस्ति हो रही है। लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि मैं किस तरह आपका दुख दूर कर सकूं। मैंने यह नहीं जाना है कि किसी का साथ देने का क्या ढंग है? मैंने कभी किसी पुरुष का साथ नहीं दिया है।" मैं जाने क्या क्या कह रही हूं!

"चिंता न करो। मैं ठीक हो जाऊंगा।" कहकर मुझे आश्वस्त करते हैं और सीटी बजाने लगते हैं। सहज रूप में रहने का यत्न कर रहे हैं।

"कोई पिक्चर देखने चलें?" मैं पूछती हूं।

"कौन सी पिक्चर?"

"कोई भी, जो आपको पसंद हो। कोई अंग्रेजी फिल्म देखें। आपको थोड़ा 'डाइवर्जन' मिलेगा।"

"नहीं, मुझसे थियेटर में बैठा नहीं जाता। अगर तुम जाना चाहती हो तो बताओ। चलेंगे। लेकिन, इस वक्त मेरी पीने की बड़ी इच्छा है।"

अरे हां, ये तो पीने की बात कहकर ही तो आये थे। मैं वह भूलकर पिक्चर, ड्रामा और पता नहीं क्या क्या बकवास कर रही हूं? इन्हें समझाकर किसी प्रकार इनका मूड बदलना है। इस आतुरता में शायद मैं भी उलझ सी गयी हूं।

कार घर की तरफ चल देती है।

"जरा ठहरिए। माउंट रोड की तरफ जाकर आपके लिए कोई नानवेज चीजें ले लें।" मैं याद दिलाती हूं।

"कोई बात नहीं। मुझसे कुछ खाया नहीं जायेगा।" ये कहते हैं।

"नहीं। आपको खूब खाना चाहिए। खाली पेट पीकर बिना खाये नहीं रहना चाहिए। अभी बहुत टाइम है। कार को घुमा दीजिए।" मैंने जोर देकर कहा तो मेरी बात मानकर कार को घुमा देते हैं।

उस मुस्लिम होटल के सामने कतार में कारें खड़ी हैं। दो कारों के बीच में अपनी कार को ले जाकर खड़ी कर देते हैं। अब तक मैं इन्हीं की तरफ देख रही थी। इनकी दृष्टि तो रोड पर अटकी है। इधर-उधर नहीं हिली। लेकिन चेहरे पर वही अंधेरा है। वेटर आकर सलाम करता है।

उससे कोई नाम बताकर एक प्लेट मांगते हैं। उसके बाद 'इडियाप्पम' मांगते हैं। मेरी तरफ घूमकर कहते हैं, "अब इसके बाद जाकर तुम क्या रसोई बनाओगी? तुम भी 'इडियाप्पम' ले लो। यह वेजिटेरियन डिश है। सेवइयों से बनी है। एक दर्जन जल्दी से ले आओ।" कहकर उसे दौड़ाते हैं।

"घर में दूध है न?"

"हां।"

"इडियाप्पम' के ऊपर दूध और चीनी डालकर खाया जाये तो अच्छा रहेगा। हमारी मंजु है न...डेढ़ दर्जन खा जाती है...।" यह कहकर मंजु को याद कर लेते हैं। चेहरे पर वही अंधेरा। आंखें छलछला आती हैं।

मैं मन में ठान लेती हूं कि अब मैं स्वयं इनसे कुछ नहीं पूछूंगी। मुझे लगता है कि ये मुझसे अपने मन की व्यथा बता देंगे। वरना ये किसलिए इतनी व्यथा में मुझसे मिलने को आते? वह भी यह सोचकर कि आज मेरे साथ भोजन करना है, अपने पीने की सामग्री भी साथ लेते आये हैं। अपनी मनोव्यथा मुझसे कहकर आश्वासन पाने के लिए ही तो आये हैं? मैं चुप रहूंगी। तो ये स्वयं ही खुल जायेंगे। इसी विचार से मैं कार में नजर बाहर गड़ाये बैठी हूं।

कार में बैठे बैठे हाथ में प्लेट लिये कुछ लोग खा रहे हैं। और वह स्त्री ! जाने क्या चीज है, हाय रे ! वह तो हड्डी है ! हड्डी को चूस चूसकर...! उसके भीतर से कोई चीज निकलती होगी? चूसकर बाहर फेंकने लगी है। उसी के इंतजार में दो-तीन कुत्ते खड़े हैं। एक-दूसरे पर झपटते हुए गुर्राते और भौंकते हैं। उधर हाथ में लाठी लिये घूमता हुआ चौकीदार उन कुत्तों को भगा देता है।

सात-आठ वेटर्स सफेद वर्दी पहने हुए हाथ में ट्रे लिये उन्हें कपड़े या कागज से ढककर जाने क्या क्या चीजें लेकर इधर-उधर चक्की की तरह घूमते फिर रहे हैं। रेडियो पर सिनेमा का गीत बज रहा है। सामने वाली पान की दुकान पर एक थाली में पान के बीड़े सुंदर ढंग से बना-सजाकर रखे हैं। वहां लोग मुंह चलाते हुए खड़े हैं। सिगरेट का धुआं फैल रहा है।

ये क्या कर रहे हैं... ? कार के भीतर घूमकर देखती हूं। स्टीयरिंग पर माथा टेके, झुके बैठे हैं।

"सो गये हैं क्या?" मैं इनके कंधे को छूती हूं।

"नहीं।" सीधे बैठ जाते हैं।

मैं आजकल इन्हें कितनी सहजता से छूकर बात करती हूं, यह सोचकर मुझे स्वयं आश्चर्य होता है। इन्हें छूते समय मुझे ऐसा लगता है कि मैं किसी पराये पुरुष को छू रही हूं।

लेकिन इन्होंने स्वयं कभी मुझे इस प्रकार नहीं छुआ है — इसे अभी स्मरण कर देख रही हूं। इन्होंने अपना हाथ मुझ पर कभी नहीं रखा। क्या इन्हें उसमें कोई अपराध की भावना महसूस होती है? नहीं। क्या सभी लोग छू छूकर ही बात करते हैं?

अगर स्त्री पुरुष को छू ले तो वह उतना बुरा नहीं प्रतीत होता। लेकिन पुरुष स्त्री को छू लेता है तो वह विचित्र बात हो जाती है। यह भी कैसा न्याय है? लोग इसे क्यों बुरा मानते हैं?

इन्हें छोड़कर और किसी को मैंने इस प्रकार स्वच्छंदतापूर्वक नहीं छुआ है। इसलिए ये भी मुझे छूकर बात करें तो उसमें कोई बुराई नहीं होगी — ऐसा लगता है।

यह वेटर इनके आर्डर की सभी चीजें लाकर दे रहा है। इतनी जल्दी !

मैंने बिल देखा। नौ रुपये और कुछ पैसे। ग्यारह रुपये उठाकर उसके हाथ में रखते हैं और उसकी दी हुई सब चीजें पीछे वाली सीट पर रखकर चल पड़ते हैं। उस डिब्बे में न जाने पानी जैसा क्या है?

"यह बह न जाये, मैं हाथ में पकड़ लेती हूं।" मैं कहती हूं।

"...नहीं। बहेगा नहीं। वैसे बह जाये तो भी कल सीट को पोंछ देंगे।"

"मैं यह नहीं कह रही हूं कि आपकी कार की सीट खराब हो जायेगी। मैं तो इसलिए कह रही हूं कि आपके खाने के लिए नहीं रह जायेगा।" मैं व्याख्या करती हूं।

घर पर आकर कार को किनारे खड़ी कर देते है। कंपाउंड के भीतर कार नहीं जा सकती। इसीलिए सड़क पर ही घर के दरवाजे से सटाकर खड़ी कर देते हैं। मैं घर का दरवाजा खोलती हूं। ये दोनों हाथों में सारी चीजें भरकर उठा लेते हैं।

"लाइये, मैं ले चलती हूं।" मैं कहती हूं। ये नहीं दे रहे है। "यह जो ऊपर है, तुम्हारे लिए है, इसी को उठा लो। बाकी सब तुम्हें नहीं छूना चाहिए।" अब मेरी समझ में आ रहा है।

"इसमें क्या है? आदत न होने के कारण मैं नहीं खाती हूं, बस। देखने या छूने में आपत्ति हो — ऐसी कोई बात नहीं है। ऐसा होता तो क्या मैं ऊपर रखी चीज को खा सकती हूं?"

बात चलाती हूं। ये इसी प्रकार कुछ हल्के ढंग की बातचीत करें तो मुझे अच्छा लगता है। सारी चीजें छोटी मेज पर रख देते हैं और फिर कार से छोटे सूटकेस जैसा एक काला बक्सा ले आते हैं।

ओह ! यही शायद इनका वह 'मिमी बार' है।

इन्होंने बक्सा खोला। भीतर वेलवेट की लाइनिंग चमक जाती है। दो बड़े सुंदर गिलास। फिर एक बोतल। कोई व्हिस्की है। हरे रंग की बोतल है, जिस पर काले और सफेद रंग के दो पिल्ले अंकित हैं – ब्लैक एंड व्हाइट।

उसे निकालकर मेज पर रखते हैं। चेहरे पर एक असाधारण चमक आ जाती है।

"तुम भी साथ दो न?"

हाय री ! इनकी कैसी हिम्मत ! मुझे भी इसमें शरीक होने को कह रहे हैं !

"क्यों? मुझे भी अपने जैसा बना देना चाहते हैं क्या?" मैं पूछती हूं।

''कभी नहीं ! तुम कभी मेरे जैसी नहीं होगी। हो ही नहीं सकतीं। मैं तो 'गुड फार नथिंग' हूं। ठीक है ! छोड़ो उस बात को। मेरी एक मदद कर दो। एक लोटे में पानी, पीने वाला पानी, ला दो।"

तभी मुझे याद आता है। इन्हें इनके घर में पीते हुए देखा है – सोडा मिलाकर पीते हैं। भूल गयी।

"जरा ठहरिये...बगल में एक दुकान है। मैं जाकर आपके लिए सोडा ले आती हूं।" मैं उठ जाती हूं।

"प्लीज...गंगा...नो। सोडा नहीं चाहिए। पानी काफी है। यदा-कदा पानी मिलाकर भी पी जा सकती है। प्लीज...डोंट बादर...बैठ जाओ।" उठकर मेरा रास्ता रोकते हैं।

मुझे दुख होता है कि मैंने इनके साथ ठीक ढंग से सुलूक नहीं किया।

ये अंग्रेजी में जैसे गुनगुना रहे हैं, "एक शराबी आदमी के लिए तुम जाकर सोडा लाओगी? वह भी इस वक्त?"

"क्या कह रहे हैं?"

ये मेरी ओर देखते हैं। ओंठ और आंखें लाल हैं, माथे पर बल पड़ रहे हैं। "प्लीज... अपने स्नेह और आत्मीयता से मुझे और मत सताओ, मैं इसके योग्य नहीं हूं..."

"पीने के पहले ही क्यों बहकने लगे हैं?" मजाक में कहती हुई मैं रसोईघर में आ गयी, पानी ले जाने के लिए।

स्टील का लोटा, यही एक है जो थोड़ा बड़ा है। इससे कुछ छोटा एक बर्तन खरीदना चाहिए। वह सुविधाजनक होगा। एक और लोटे में दूध रखा है। मैं बेवकूफ हूं। इन्होंने लोटा कहा तो क्या लोटे में ही पानी ले जाना है? यह वाटर जग तो है।

जग में पानी ले जाती हूं।

"आई प्रेफर नीट।" कहते हुए गिलास में दो उंगली भर डालकर वैसे ही पी जाते हैं जैसे चरणोदक पी रहे हों।

तेज गंध आ रही है। मैं उस बोतल को उठाकर सूंघती हूं। ओह ! कितनी तेज गंध है ! नाक जल उठी है। एकदम स्पिरिट ! यह पी जाये तो फिर लीवर किस काम का रह

जायेगा? "कुछ खाने के लिए रखूं?"

"डोंट इमेजिन थिंग्स। मुझे कुछ नहीं हुआ है। वैसे ही बातचीत करते रहेंगे। इसीलिए पानी मांगा।...आई वांट टू गो वैरी स्लो।" एक सिगरेट जला लेते हैं।

मैं इनकी ओर देखती हूं। "क्या आप मुझे पीने की सलाह देंगे?"

क्षण भर मेरे मुंह की तरफ देखते हैं। "मेरे जैसा तुम्हें नहीं बन जाना चाहिए। हां, कभी वैसे ही, जरा सा टेस्ट करने में दोष नहीं है।''

"वैसे ही से तो शुरू होता है?"

"तुम ठीक कह रही हो। वैसे से भी शुरू हो सकता है। बैटर यू डोंट टच दिस।" कहकर बोतल को अपनी तरफ खींचकर रख लेते हैं।

"आज मैं भी पीने वाली हूं।" मैं कहती हूं।

"नो, प्लीज...।" ये मना करते हैं। इनकी मना करने की हड़बड़ाहट देखकर मैं हंस पड़ती हूं।

"वैसे ही मजाक में कह रही हूं।" मैं इन्हें आश्वस्त करती हूं।

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहते हैं। मैं जाने क्या क्या सोच रही हूं। मन में कुछ भय उत्पन्न हो गया है। अचानक लगता है, मैं इन्हें खो दूंगी। 'वैसे इन्हें खों दूं तो क्या उसके वाद क्या मैं पीने लगूंगी? शायद इनकी याद में पिऊंगी?' मैं मन में अनेक कल्पनाएं करती हूं।

ये अंग्रेजी में कहते हैं, "मैं जीवन से ऊब गया हूं। अब इस जीवन में कुछ नहीं रह गया है। सब शून्य है। जम सा गया है। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। कभी कभी ऐसा लगता है कि मैं पागल हो जाऊंगा। बल्कि लगता है कि पागल हो गया हूं। अभी थोड़ा सा रिलेक्स्ड हूं। प्रश्न है — मैं किसलिए जीऊं? पूछा जा सकता है, अब तक किसलिए जीता रहा हूं? मैं खुद ही पूछता हूं अब तक शायद अपनी ही खुशी के लिए जिंदा रहा। अब वह खुशी भी खत्म हो गयी। अब आगे मुझे किसी चीज में खुशी नहीं है। लाइफ हैज लास्ट इट्स चार्म। अब तो सब रुटीन है...बोर....स्टेग्नेशन...।"

इनके माथे से पसीना टपक पड़ता है।

मैं भीतर जाकर एक रूमाल ले आती हूं। उसे लेकर पास में रख लेते हैं। फिर मैं स्वयं उठकर इनका माथा पोंछ देती हूं।

"थैंक्यू।" कहकर रूमाल अपने हाथ में लेकर माथा पोंछ लेते हैं।

"मैं जीवन से कितना ऊब गया हूं, इसके लिए एक घटना बताता हूं—सुनो !" कहकर गिलास उठाकर पीने लगते हैं।

"परसों दोपहर रेडियोग्राम में एक रिकार्ड डाला। उसकी स्पीड थर्टी-थ्री थी, लेकिन उसे सेवंटी-एट में बदलकर रखा। तभी सुनने में मजा आया। नहीं तो डल लगता था। नार्मल लाइफ बहुत डल हो गयी है।

"इतना ही नहीं, गंगा ! सच कहता हूं – अगर तुम न होतीं तो मैं अब तक आत्महत्या करके मर गया होता। यह जीना किसलिए?...इज्जत नहीं रही, मान-प्रतिष्ठा गयी...मेरा अपना कौन है? तुम एक पागल हो...मुझसे लगी रो रही हो...ओह गंगा ! गंगा...!" कहकर हंस पड़ते हैं।

इनकी बातें चाहे कैसी भी हों, फिर भी उन बातों के द्वारा इनका मन, और उस मन की व्यथा को जान लेने की इच्छा से चुपचाप इनकी बातें सुनती हुई बैठी हूं।

28

अब ये बहुत ही गंभीर मूड में हैं। बहुत दुखी हैं। ऐसा लग रहा है, मन की सब बातों का मेरे सामने ढेर लगा देंगे। लेकिन ऐसी दशा में, इन्हें देखते हुए मजाक करने को मन हो रहा है। लेकिन इस वक्त अगर मैं हंस दी तो वह बड़ा अन्याय होगा – इसी विचार से जीभ को दांतों से दबाए बैठी हूं।

ये, इनके बैठे रहने की यह स्थिति...सोफे पर पालथी मारकर क्यों बैठे हैं? वह भी पैंट पहने हुए...? घर पर होते तो लुंगी पहने रहते...ढीला सा एक कुर्ता पहने रहते, जो शायद सिल्क का है। बरामदे में पड़ी क़ुशन या बेंतवाली कुर्सी पर इसी ढंग से पालथी मारकर बैठकर ही पीते रहते। अरे बाप रे ! एकदम दरबारी दृश्य उपस्थित हो जाता है। तिपाई उठाकर लाने के लिए एक नौकर, सोडा ले आने के लिए दूसरा नौकर, किसी भी काम के लिए बुलाने पर झट हाजिर हो सके उसके लिए एक और नौकर एक किनारे इंतजार करते हुए खड़ा रहता है। एक नौकर इनके पीते वक्त खाने के लिए गरम गरम भुनी हुई चीजें प्लेटों में लाकर रखता रहता है। वह सब छोड़कर ये यहां आकर बैठे हैं – ड्रेस बदलने के लिए एक कपड़ा तक नहीं है। इसी पैंट में ! किसलिए इतनी चुस्ट पैंट पहनते हैं? क्या इससे तकलीफ नहीं होती होगी? मेरा दम घुट रहा है। लोटे में पानी मांग रहे हैं – लोटे में? अच्छा हुआ। एक ही जग था। जैसे धरती पर बैठकर पी रहे हों, या सोफे पर बैठकर...सारी चीजें सोफे पर फैलाकर रखे हुए हैं...। मुझे इनको इस दशा में देखने में बड़ा कौतूहल हो रहा है !

अब ये यह चौथा गिलास भर रहे हैं। सिगरेट जलाकर माचिस की जलती हुई तीली की तरफ वैसे ही देखते हुए बैठे हैं। वह तीली जब तक पूरी नहीं जल गयी तब तक देखते रहते हैं। कहीं हाथ न जल जाये – मुझे डर लगता है। शायद जल गया है। हाथ जल जाने के बाद ही उसे एशट्रे में डाल देते हैं। फिर उंगली को मुंह में रख लेते हैं।

"क्या उंगली जल गयी है?" मैं पूछती हूं। यह प्रश्न जवाब देने योग्य नहीं है, यों मुझे देखकर पुचकार कर हंसते हैं। चेहरे पर वही अंधेरा फिर छा जाता है।

"देयर इज नो परपज इन लिविंग," कहकर मेरी तरफ देखते हैं। 'मुझे तो ऐसा विचार कई वर्ष पहले ही आया था', मैं मन ही मन कह लेती हूं। मेरा विचार है कि 'हम क्यों जिंदा हैं?' अगर यह प्रश्न किया जाये तो कई लोगों को कोई उत्तर नहीं सूझेगा। ये तो आज ही नये ढंग से यह प्रश्न कर रहे हैं। अगर मैं उसका जवाब देने लगूंगी तो यह रेलगाड़ी पटरी बदल

लेगी। इसलिए यह सोचकर कि ये ही बोलें, मैं गंभीर होकर इनको देखती रहती हूं।

"जीवन का कोई लक्ष्य होना चाहिए। कोई भी लक्ष्य हो ! अगर वह न रहे तो आदमी और जानवर में क्या फर्क रह जाता है? वह पूरा होता है या नहीं – यह और बात है। आखिर देखा जाये तो किसे प्राप्त करने से क्या मिल जाता है? लेकिन किसी चीज को हम अपना लक्ष्य बना लेते हैं वह प्राप्त हो जाये तो क्या वहीं समाप्ति है? मगर उस बात का महत्व नहीं है। मुख्य विषय है – लक्ष्य तक हम पहुंच पाये या नहीं ? सामने कोई लक्ष्य होना चाहिए। गधे के सामने गाजर लटका दी गयी थी – वह कहानी तुम्हें मालूम है ना?" ये हंसते हैं।

मुझे वह कहानी मालूम है। फिर भी इस विचार से कि ये और कुछ देर खुशी से बात करते रहें, मैं कहती हूं, "नहीं मालूम, सुनाइये ! सुनाइए ना प्लीज – वह क्या कहांनी है?"

"मंजु के साथ रह रहकर तुम भी मेरे लिए एक और मंजु हो गयी हो। वह भी ऐसा ही करती है। कोई मुख्य बात कहे तो उसे छोड़ देगी, गाजर-कैरट कहकर कोई गौण उदाहरण दें तो उसे पकड़कर जान खाने लगेगी।"

"प्लीज, प्लीज...सुनाइये ना। मैंने वह कहानी नहीं सुन रखी... ।"

"क्या यह जानती हो कि गाजर दिखाने पर गधा दौड़ा हुआ आता है ?"

"किसलिए?"

"ले जाकर सब्जी बनाकर खाने के लिए।" ये मजाक करते हैं। मैं सोचती हूं – यह 'किसलिए' नहीं पूछना चाहिए था।

"कोई नर्सरी क्लास का गीत है। अब वह याद नहीं आ रहा। उसका जो चित्र छपा था, वह अब तक आंखों के सामने है। एक लड़का एक गधे की पीठ पर बैठा है। और एक लंबी लाठी के सिरे पर गाजरों का एक गुच्छा लटकाकर गधे के मुंह के सामने करके लाठी का दूसरा सिरा हाथ में पकड़े रहता है। वह गधा गाजर चबाने के लिए फटाफट चलता है। हर जगह वैसी ही स्थिति है। गधे के लिए जैसे गाजर है, आदमी के लिए वैसे लक्ष्य है। दौड़ते रहो, बस ! आदमी गधा है। लक्ष्य गाजर है। दौड़ना ही जीवन है। मेरे लिए वैसा कुछ भी नहीं है। मैं बहुत सोचता हूं। मैं किसलिए जीवित हूं ? एक छात्र के रूप में मैं बुद्धू था, एक व्यापारी के रूप में मैं नाकाम हूं; पति के रूप में मैं नालायक हूं, पिता के रूप में मैं अयोग्य हूं। मैं कितना नीच हूं – अगर यह जान लोगी तो तुम भी मुझसे कह दोगी – 'उठकर बाहर निकल जा'। अगर तुम वैसा नहीं कहोगी तो वह तुम्हारी उदारता होगी, लेकिन उसका यह मतलब नहीं है कि मुझमें कोई योग्यता या बड़प्पन है।"

ये अंग्रेजी में बोल रहे हैं। मैं यह कल्पना करके कि ये इसे तमिल में कहते तो कैसे कहते – इन बातों को सोच रही हूं।

कुछ कहने को होते हैं। लेकिन उसे छोड़कर बार बार और कोई बात कहने लगते हैं। अब उन्होंने जो कुछ कहा, उसमें ऐसा कोई अंश नहीं है जिसे इन्होंने मुझसे पहले नहीं कहा

हो। मुझसे ऐसी कोई बात जिसे अब तक नहीं कहा है, कहना शुरू करते हैं, लेकिन फिर पहले बताई बातों को दुहराने लगते हैं। ये सब इनके अपने बारे में दृढ़ बने हुए विचार हैं। इन्हें ये नहीं बदलेंगे; बदल ही नहीं पायेंगे। अपने प्रति आप ही दया की भावना उत्पन्न करके उसमें एक प्रकार का सुख पाते हैं। इन्हें एक व्यक्ति मानकर इन्हें डांटने वाला कोई नहीं रहा, इसीलिए ये स्वयं को अपने आप डांट लेते हैं।

मन में आता है कि पूछूं, 'ठीक, अब इस सारी बात को कहने के लिए कौन सा नया कारण आ गया है?' लेकिन नहीं पूछा। मुझे भूख लग रही है। साढ़े दस बज गये हैं। ऐसा लगता है कि इनके भोजन में अभी एक घंटे का समय है।

"कुछ खा लें?" मैं पूछती हूं।

"वह पोटली उठाओ।" एक पैकेट की ओर इशारा करते हैं। मैं उसे उठाकर देती हूं।

"प्लेट चाहिए?" पूछती हूं। सिर हिलाते हैं। मैं प्लेट लाकर देती हूं। वैसे ही, दो बिस्कुट मैं भी उटा लेती हूं। फिर देखती हूं, ये तो पैकेट खोले बैठे हैं। यह क्या है? कोई चीज हाथ और पैर फैलाकर पड़ी है? क्या यह बकरी का बच्चा है? देखने में ही जाने कैसे लग रहा है। गोल गोल दो टमाटर के टुकड़े, एक टुकड़ा नींबू, दो हरी मिर्चें। ये इसे कैसे खायेंगे – देखने की इच्छा होती है।

"यह क्या मटन है?" पूछती हूं। फिर क्या 'बकरी का बच्चा' कहकर पूछ सकती थी? बकरे के मांस को ही तो मटन कहते हैं न?

ये उसे उठाकर हाथ में पकड़े व्याख्या करते हैं कि उसे 'चिकन' कहते हैं। हां, मुर्गा ही है। पूरा है। बड़े मजे के साथ उसके लिए सिर पर नींबू का टुकड़ा निचोड़कर एक टांग पकड़कर चीरते हैं, फिर उठाकर चबाने लगते हैं।

अब जो भर रहे हैं, वह छठा गिलास है। इसी तरह खाते-पीते रहेंगे क्या? ये नैपकिन मांगते हैं। मैं एक रूमाल ला देती हूं।

अचानक बोलना शुरू करते हैं, "हमारी भेंट होने के बाद, ज्यादा से ज्यादा मैं कोई दस बार ही क्लब गया हूंगा। मैं स्वयं सोच रहा था कि किसी प्रकार क्लब जाने की आदत से छुटकारा पाना चाहिए। लेकिन हर बार सोचते हुए भी, शाम होते ही वहां जाकर हाजिर हो जाता था। किसी दिन यह सोचकर निकलता कि आज नहीं खेलना है, वैसे ही हो आऊंगा। लेकिन बाद में खेलने बैठ जाता। मंजु, पद्मा को मेरी जो आदत पसंद नहीं है, वह यही है। मेरी दूसरी आदतों की उन्हें उतनी चिंता नहीं है। इसमें पैसा चला जाता है न ! जुआ खेलने वालों के घरों में परिवार के सब लोग अपने आदमी को ही हारता हुआ देखते हैं। बड़ा तमाशा है न? सब लोग हारते ही रहें, ऐसा कौन सा खेल हुआ होगा? इसमें मजे की बात यह है कि हर आदमी जुआ खेलने के लिए घर से जो पैसा ले जाता है, वही उनकी नजर में आता है। जो पैसा जीत लेता है, वह उनकी नजर में नहीं आता, क्योंकि वह घर तक पहुंचता भी नहीं। इसलिए यही कहते

हैं कि 'चाहे तुम जीतो या हारो, जुआ खेलने के लिए घर से जो पैसा बाहर ले जाया जाता है, वह वापस घर नहीं पहुंचता है।' इसीलिए औरतों को अपने जुआरी मर्दों पर इतना गुस्सा आता है। वहां आने वालों को पैसे की चिंता नहीं होती। क्या वे पैसा कमाने के लिए खेलते हैं? वह एक मनोरंजन है; लोगों का साथ देने के लिए होता है वह सब। हमारा जो क्लब है उसका सदस्य बनना वैसा आसान नहीं है। सभी लखपति हैं। वे जब खेलने को बुलाते हैं तो 'न' कैसा कहा जा सकता है? उस पर मजे की बात यह है कि इन सभी धनी लोगों में कोई न कोई मानसिक ग्रंथि है। मैं भी उन्हीं में से हूं। पहले मैं सोचता था कि ऐसी मानसिक ग्रंथि केवल मुझी में है। लेकिन सभी धनिक व्यक्ति ऐसे ही होते हैं। उन्हें मालूम है कि उनके पास जो धन है उससे उनकी कोई घनिष्ठता नहीं है। अगर वह धन न होता तो उनमें से अधिकतर जूठे पत्तल उठाने लायक भी नहीं होते। मैंने स्वयं देखा है। कितने ही समझदार, सामर्थ्यशाली, शक्तिवान, सज्जन व्यक्ति धन न होने के कारण साधारण मनुष्य ही रह गये हैं। उनकी समझदारी, सामर्थ्य, सब अपने बच्चे और बीवी के लिए दाल-रोटी जुटाने में ही खत्म हो जाती हैं। लेकिन यदि इन धनवान लोगों के पास धन न हो तो क्या उसी प्रकार ये लोग कमा सकते हैं? इसमें शक है। हमारे क्लब में आने वाले सब 'जेंटलमैन' कहलाते हैं।

''वे सब कितने जेंटल हैं, इसे रात को साढ़े दस बजे यहां आकर देखना चाहिए। इसीलिए क्लब जाने में मुझे कोई खुशी नहीं होती है। वह एक आदत भर है। जो आदत बन जाती है, उससे सुख की अनुभूति नहीं होती। 'किसी न किसी दिन क्या पता इससे कोई खुशी मिल जाये', ऐसे भ्रम के कारण लोग बार बार वही काम करते रहते हैं। करते करते वही आदत बन जाती है। उसके बाद खुशी कहां? उसके बाद तो वह आदत हो गयी — इसलिए करते हैं। गधे के सामने गाजर लटकाने वाली कहानी ही है।"

बात करते करते खाते हैं। खाते हुए पीते हैं। पूरी थाली में हड्डियां और कांटे से हैं। मुझे साफ मालूम हो रहा है कि ये अभी भी उस बात को, जिसे कहने आये थे, बिना कहे निगले जा रहे हैं।

"सो...हमारी भेंट हो जाने के बाद, लगभग क्लब जाना मैंने बंद ही कर दिया। कभी-कभार बस चेहरा दिखाकर वापिस आ जाता हूं। चार-पांच दिन से हम नहीं मिल पाये न? ऐसे ही दिनों में क्लब हो आता हूं। तुम जानती ही हो, मुझे मंजु ही पैसा देती है। फिर मंजु को पैसे वापस कर देता हूं। फिर दुबारा मांग लेता हूं। उस दिन पैसे काफी नहीं थे...मंजु से मैंने मांगे। उसके पास भी कम पड़ गये। पद्मा की अलमारी से ले आने की सोचकर मैंने कहा कि किसी प्रकार उसी दिन वापस लाकर रख दूंगा। पहले भी दो-तीन बार उस प्रकार मंजु ने किया है। उस दिन तो उसने बहुत मना किया। लेकिन बाद में उसने मुझे पैसे ला दिये। इसलिए मैं क्लब में दौड़ा गया। पांच हजार ले गया। खेलने में धड़ाधड़ पैसा खर्च होता गया। उस दिन बड़ा बैड लक था। जीतने वाले पत्ते भी मेरे पास आकर हार रहे थे। गिलास पास रखे, सवेरा

होने तक खेलते रहते। बीच में उठकर नहीं जा सकते थे। पैसा तो गलता जा रहा था। मंजु की याद करने पर पेट में ऐंठन सी होने लगती थी। मैंने क्या कर डाला...शेम...व्हाट ए शेम !"

इतना कहते हुए सिर झटककर गिलास उठाकर पीने लगते हैं। लगभग आधी बोतल खत्म कर डाली है। और भी पियेंगे क्या? इतनी सारी पी जायेंगे? इतनी पीना ठीक होगा? मैं कैसे इन्हें बस करने को कहूं? "जग में पानी है?" यह बहाना करके पूछती हूं, "पानी काफी है? थोड़ा और चाहिए क्या? लाऊं?"

"नहीं...काफी है। आज ज्यादा पी गया। यही सीमा है। तुम्हें भूख लगी होगी। अब खाना खायेंगे। दूध और चीनी डालकर खाने पर 'इडियाप्पम' अच्छा रहेगा। हमारी मंजु तो एक दर्जन खा जाये।" पहले जो कहा था, उसी को दुहराते हुए कह रहे हैं। पहले क्या कहा था, वह अब इन्हें याद नहीं है – यह साफ है।

रसोईघर में जाकर दूध गर्म करके ले आती हूं।

ये कहते हैं, "अंग्रेजी में एक कथन है – कोई अंग्रेज, अपने 'क्लब' में ताश खेलते समय बेईमानी करता हुआ पकड़ा जाये तो जैसा बेचैन हो जाता है, वैसा।"

मैंने यह कथन नहीं सुना था। लेकिन अब इनसे सुनने के बाद, मुझे महसूस हो रहा है कि कितना अपमानजनक कार्य है ! इन्होंने कहीं वैसा कुछ तो नहीं कर डाला? यह सोचकर मेरे मन को बड़ी तकलीफ होती है, इन्हें गले से लगाकर रोने को मन होता है। थोड़ी देर पहले जब इनकी उंगली जल गयी तो मैंने घबराकर जिस तरह पूछा था, उसी प्रकार पूछती हूं – "आपने भी कुछ वैसा तो नहीं कर दिया क्लब में?"

उस वक्त जैसे पुचकार दिया था, उसी ढंग से अब भी मेरी तरफ देख रहे हैं – आंखें छलछला आती हैं। बच्चे की तरह सिर हिला देते हैं।

29

प्रभु उस दिन रात के एक बजे तक मेरे यहां रहे, फिर देर रात गये असमय ही निकलकर अपने घर चले गये। मैंने बहुत कहा, "यहीं रुक जाइये। सवेरे चले जाइयेगा। इसमें कोई हर्ज नहीं है।" लेकिन ये कुछ भी सुनते तब न। चल दिये। बोतल, गिलास, लीकर केस, सब वैसे ही सोफे पर छोड़कर चले गये। मैं क्या कर सकती थी? "सावधानी से देखकर जाइयेगा !" कहकर विदा किया और भीतर आ गयी। फिर सब चीजें उठाकर करीने से रख दीं।

पत्तल, कागज, चबाने के बाद थूकी हुई चीज — सब उठाकर बाहर फेंक दिया। मुझे रात भर नींद नहीं आयी। ये कैसे बच्चे जैसे हैं ! ये स्वयं ही कहते हैं न कि ये स्पाइल्ड चाइल्ड ऐसे हैं। छिः ! कितनी जिल्लत ! कितने दीन ! आत्महत्या कर लेने की सूझी है। इन्हें ऐसा सूझना कितना स्वाभाविक है — मुझे स्पष्ट हो रहा है। फिर भी अपने इस मनोभाव को मैंने बाहर प्रकट नहीं किया। बस, यों ही कहा कि किसी भी समय में ऐसा न कर दें। इन्हें रोते हुए देखकर दया आती है। पेट ऐंठने लगता है...मेरा दुर्भाग्य !

अगर पैसा जाता है तो जाये। कितना पैसा खर्च हो जाता है? इसके लिए जुए में पत्ता बदलकर धोखा क्यों करना? ये स्वयं ही बार बार कहते हैं, 'मेरी बुद्धि उस प्रकार क्यों हो गयी ?' इन्हें यह सोचकर ग्लानि होती है। शराब के नशे में बुद्धि भ्रष्ट हो गयी होगी। ऐसा ही लगता है। वरना ये पैसे के मामले में छोटापन नहीं करते। बाथरूम जाने का बहाना करके पुराने 'पैकेट' में से पत्ते निकालकर लाये और खेल में जीत गये। लेकिन बाद में रहस्य खुल गया। हाय ! कैसे अपमानित हुए होंगे ! कह रहे हैं कि किसी ने कुछ नहीं कहा। उनमें से एक व्यक्ति ने यह कहकर कि 'तुमने बहुत पी है, अब घर जाओ', इन्हें घसीट कर कार में बिठाकर विदा कर दिया।

ये वहीं रो पड़े थे। 'आय एम सारी...आय डिड नाट मीन इट...पार्डन मी'...यों न जाने क्या क्या कहकर विलाप किया !

उनमें से एक ने पूछा, "कितने दिन से यों 'फाउल प्ले' करके हमें धोखा देते रहे हो?"

"यही, अभी पहली बार है।" इस बात का उन्हें कैसे विश्वास दिलाया जा सकता था?

ये चिल्लाते रहे, "मित्रो ! विश्वास करो मेरी बात पर ! मैं एक अच्छे प्रतिष्ठित घराने

में पैदा हुआ हूं। नशे में इस प्रकार कर बैठा।" कहकर क्षमा मांगी।

जब इन्होंने कहा कि ये एक प्रतिष्ठित परिवार में पैदा हुए हैं, एक आदमी जोर से हंस पड़ा था।

इन्होंने कहा, "इस गलती के लिए जितना भी चाहो दंड दो, मैं भोगने को तैयार हूं।" क्लब के सारे चपरासी आकर तमाशा देख रहे थे।

"अब इस क्लब की तरफ कभी न आना। तुम्हारी सदस्यता रद्द कर दी जायेगी। ...अब आगे यह आदमी यहां आये तो इसे भीतर मत आने दो।" यह आदेश का स्वर, इनके कार में बैठ जाने के बाद, इनके कानों में पड़ा।

उसी रात इन्होंने मन में ठान लिया कि आत्महत्या करके मर जाना चाहिए। योजना यह थी कि नींद की गोलियों की एक शीशी ले लें और एक बोतल व्हिस्की। दो पिल्स और एक पेग के हिसाब से पीते जायेंगे। नींद है या नशा है – यह जाने बिना ही प्राण छोड़ देंगे। लेकिन हिम्मत न पड़ी। अव जीवित रहना भी अपमानजनक लग रहा है। वाहर मुंह दिखाने पर ऐसा लगता है मानो सब इन्हें देखकर ठहाका मारकर हंस रहे हैं।

रात के एक बजे तक इसी बात को वार बार दुहराते रहे।

"सब भले के लिए ही है। अव आगे से आप उस क्लब की तरफ न जायें। अभी कुछ नुकसान नहीं हुआ है। वे लोग कुछ दिन बाद समझ जायेंगे कि आपने नशे में आकर ही वैसा कर डाला। इसके लिए मन को दुखी नहीं करना चाहिए। क्या आपको वे लोग नहीं जानते? फिर भी, वैसे काम के लिए जैसा व्यवहार करना चाहिए था, वैसा ही उन लोगों ने किया है। वह भी ठीक ही था न? एक प्रकार से, आपको क्लब में आने से जो मना किया है, वह स्वयं में एक अच्छी बात हो गयी है। ऐसा आप मान लीजिए। नहीं तो वहां जाकर आप धर्म-संकट में पड़े रहते। कोई कुछ व्यंग्य में कह देता...सब भले के लिए ही हुआ – ऐसा मान लीजिए।" मैं आश्वासन देती हूं।

अगर मैं दो शब्द आश्वासन के कह देती हूं तो वे आश्वस्त हो जाते हैं। मुझ पर इन्हें कितना विश्वास है !

अब एक सप्ताह से प्रतिदिन शाम को यहां आ जाते हैं। नौ-दस बजे तक रुककर फिर चले जाते हैं। ऐसा लगता है कि अब और कोई संपर्क-सूत्र नहीं रह गये हैं। जिंदगी में भी कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी है। पीना ही अब इनके जीवन का सहारा हो गया है। वात करने के लिए मैं हूं। उस दिन से आज तक इन्होंने दाढ़ी नहीं बनायी है। कैसी विरक्ति है? मैंने भी दो-तीन वार कहा। हर बार कोई न कोई बहाना बनाकर टालते रहे।

"क्यों, यह भी तो अच्छा ही लगता है? अठारहवीं शताब्दी में पूरे यूरोप में दाढ़ी रखना

फैशन था। वही फैशन आजक़ल फिर सारे संसार में लौटकर आ रहा है। यह 'बाबाजी वाली' दाढ़ी नहीं है। और दस दिन बाद करीने से 'ट्रिम' कर लूंगा तो खूब जमेगी।" भाषण दे डालते हैं।

सवेरे वाकिंग से लौटते हुए आज भी मैंने कहा, "यह दाढ़ी नहीं चलेगी...जाने कैसे लग रहे हैं...काट लीजिये अब।"

आंख मारकर कहने लगे, "आजकल मेरी इस दाढ़ी के कारण किसी को कोई परेशानी नहीं होने वाली है। मैं किसलिए दाढ़ी काटूं?"

ये मजाक में आंख मारकर ही कह रहे हैं। लेकिन मुझे पता कि इनमें एक नया परिवर्तन आ गया है।

ये पहले कार में बोतल साथ लिये रात के दस बजे के बाद कहीं दौड़े जाते थे ! लगता है – आजकल उस प्रकार की 'गर्ल फ्रेंड्स' के संपर्क समाप्त हो गये हैं। अब बिलकुल नहीं जाते हैं। मैं तो देख ही रही हूं। रोज यहां आ जाते है।

दस-ग्यारह बजे तक सीधे घर चले जाते हैं। सवेरे वाकिंग...फिर दफ्तर...उसके बाद यहीं पर...। यह बड़ा परिवर्तन है न? यह परिवर्तन ठीक है। लेकिन इसके लिए विरक्ति की क्या आवश्यकता है? दाढ़ी और बाल बढ़ा लेने की क्या जरूरत है?

अभी पहले वाले प्रसन्न व्यक्ति नहीं बन सके हैं। रहने दो !

गली में कार आकर रुकती है। शाम को मुझे घर पर छोड़कर चले जाते हैं और कपड़े बदलकर आते हैं। हाथ में वही बक्सा है। मैं उसे ले जाकर भीतर रख देती हूं। हाल में आकर ये बैठ जाते हैं और सिगरेट जलाते हैं।

"गंगा.....मैंने एक बात जान ली है...'हाऊ टू डील विद इट?' यही पता नहीं लगता।" बड़ी गंभीरता से कोई बात शुरू करते है। दाढ़ी खुजलाते हैं।

"क्या बात है? बताइये।" मैं बैठ जाती हूं।

मेरे हाथ में जो पुस्तक है, उसे मांगते हुए ये हाथ बढ़ाते हैं। पुस्तक दे देती हूं। शीर्षक है – ब्रदर्स आफ कारमोजाव।

जैसे ताश की गड्डी को हाथ में पकड़कर 'फर' करके पत्ते फड़फड़ा रहे हों, उसी तरह पुस्तक के पन्ने पलटते हैं। बीच में कहीं खोलकर पढ़ने लगते हैं। किसी बात को बड़ी रुचि के साथ देख रहे हैं।

"वेल सेड ! गंगा ! यहां आओ... यह पैराग्राफ पढ़ो जरा... ।" कहकर पन्ने पर दिखाते हैं।

मैं पढ़ती हूं : "A man will fall with some beauty with a woman's body, or even with a part of a woman's body. A sensualist can

understand that, and he will abandon his own children for her, sell his own country Russia too ! If he is honest, he will steal; if he is human, he will murder; if he is faithful, he will deceive."*

मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि ये किसलिए इसे पढ़ने को कह रहे हैं। मैं जब पढ़ रही हूं, तब हर बात पर 'ठीक है' संकेत देते हुए सिर हिलाते हैं।

"यह बात पुरुष के लिए ही नहीं, बल्कि स्त्री के लिए भी लागू होती है।" कहकर मेरी तरफ क्षण भर गौर से देखते हैं।

"क्या कह रहे हैं?" कुछ न समझ पाती हुई पूछती हूं।

"मंजु उस लड़के के प्रेम में फंस गयी है। मैंने जान लिया है। वह अपनी मां को, तुम्हें, मुझे — सबको धोखा देकर घूम रही है। इसी पर मुझे दुख होता रहा है। पद्मा कठोर व्यवहार करती है। इसीलिए मंजु चोरी-छिपे यह सब कर रही है ! क्या किया जाये, यही सोचता रहता हूं। मंजु कितनी चतुराई के साथ तुमसे भी झूठ बोलकर कैसे धोखा देती रही है — यह सोचकर मुझे मंजु पर बड़ा क्रोध होता है। इस पुस्तक में जैसा लिखा है, अगर प्यार के योग्य बनना हो तो शायद दूसरों को — यानी सबको — धोखा देना ही पड़ेगा। मान लो, मंजु पद्मा से कह देती है कि मैं उसी से प्रेम करती हूं, हम दोनों वैसे ही मिला करेंगे — तो क्या होगा? तब पद्मा उसे कमरे में बंद करके ताला लगा देगी। यह इसी तरह चलता रहेगा तो आखिर परिणाम क्या होगा?" दाढ़ी खुजलाते हैं।

फिर वे स्वयं कह देते हैं, "परिणाम की हमें क्यों चिंता हो? आजकल के बच्चों को कुछ सिखाने की जरूरत नहीं है। सारे प्रेम विवाह का रूप लें — ऐसा कोई नियम नहीं है।" फिर अंग्रेजी में कहते हैं, "उसने अपनी मां को धोखा दिया, सो ठीक। लेकिन हमें क्यों धोखे में रखा — यही सोच रहा हूं।"

"यह धोखा थोड़े ही है? इस बात को मां से कहकर उसकी अनुमति प्राप्त करने का उसने पहले यत्न किया था। वह यत्न असफल हो गया तो उसने तुरंत यह सोच लिया होगा कि जिसे इसका जरूर पता लगना चाहिए, उसी से बात छिपायी जानी चाहिए। आपको, और मुझे मंजु के प्रेम का पता होना आवश्यक नहीं है। वह यही सोच रही होगी। किसी चीज के लिए वह किसी भी चीज को त्यागने वाली नहीं है। वह अपनी मां को या पढ़ाई को या नहीं तो एक कप आईसक्रीम को भी किसी के लिए त्याग नहीं देगी। अपनी मां

---

* किसी सुंदरी को या एक स्त्री की देह को अथवा उसके किसी एक अंग को देखकर एक आदमी प्यार के बंधन में फंस सकता है। इस बात को मोह के वशीभूत व्यक्ति समझ सकता है। उस प्रकार प्यार में फंसा व्यक्ति उस स्त्री के लिए अपने बच्चों को निराश्रय छोड़ सकता है, अपनी जन्मभूमि रूस को भी बेचने पर उतारू हो जायेगा। वह ईमानदार हो तो उस स्त्री के लिए चोरी कर सकता है, मानवीय हो तो उस स्त्री के लिए हत्या कर सकता है, और यदि वह विश्वासपात्र हो तो भी धोखेबाज बन सकता है।

से, आपसे और मुझसे भी वह अधिक होशियार है, मैं यह बताये देती हूं। यह न समझ लीजिए कि यह प्रेम है। इस मामले में उसने किसी को भी धोखे में नहीं रखा है। उस 'सामजी' की तरह कल किसी 'रामजी' के संग वह स्कूटर पर जायेगी। सामजी के संग स्कूटर पर जाना प्रेम नहीं है – उसी लड़के को जताने का यह तरीका होगा। आजकल कालेज में पढ़ने वाली सभी छात्राओं के लिए यह सब जरूरी है। वह जानती है कि जिस तरह जिंदगी भर कालेज स्टूडेंट बनकर नहीं रहा जा सकता, उसी तरह सारा जीवन एक समान नहीं बिताया जा सकता। यह सब तो कालेज जीवन का अंग है। कल अगर पद्मा किसी लड़के को देखकर उसे मंजु के लिए तय कर दे तो मंजु चुपचाप सिर झुकाए विवाह की वेदी पर आकर बैठ जायेगी। यह सामजी, रामजी सब आकर खुशी से बधाई देंगे। प्रत्येक पीढ़ी एक ही बात को अपने अपने ढंग से देखती है। आप चिंता न करें। मंजु बड़ी होशियार लड़की है।" मैं कहती हूं।

इतनी देर विस्तार से समझाने पर भी बात इन्हें साफ नहीं हुई। "पद्मा के कारण ही मामला इतना ज्यादा बिगड़ गया है। जो संबंध बिलकुल खुला और साधारण था, उसमें दुराव-छिपाव आ गया है तो यह कैसे बताया जा सकता है कि इस का अंत कहां जाकर होगा? मुझे पद्मा से इसके बारे में बात करनी पड़ेगी।" इनमें एक जिम्मेदार पिता की आतुरता प्रकट हो रही है। मुझे यह भी मालूम है कि इनके कहने मात्र से पद्मा में वह न्याय-भावना नहीं आ जायेगी।

ये अचानक बोल उठते हैं, "ये सभी मांएं बेवकूफ होती हैं।"

मुझे अपनी मां याद हो आती है।

आठ बज रहे हैं। अभी कुछ देर में ये पीना शुरू करने वाले हैं। दस-साढ़े दस चले जायेंगे।

"आपको खाने के लिए कुछ चाहिए?

"तुमने अपने लिए क्या बना रखा है?"

"हाय ! आज तो मैंने कुछ भी नहीं बनाया है। अपने लिए सिर्फ चार पापड़ तल रखे हैं।" मैं बताती हूं।

तुरंत ताली बजाकर बड़ी खुशी से कहते हैं, "व्हिस्की के साथ पापड़ बहुत अच्छा लगेगा। जरा एक ले आना।"

"गर्म गर्म ही तलकर लाऊंगी," मैं रसोईघर में चली जाती हूं।

ये पीना शुरू करते हैं।

30

एक प्लेट में पापड़ लाकर रखती हूं। आजकल पी लेने पर ये बहुत बोलते हैं। बोलते गंभीरता से हैं। इनकी बातों से मुझे एक चीज बड़ी तल्खी से महसूस होती है। लगता है — ये आत्महत्या कर लेंगे। किसी दिन ये आत्महत्या करके ही प्राण दे देंगे। मन को बड़ा दुख होता है। अब इन्हें जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं रही। जैसे सब कुछ खोकर खड़े हैं। पीना भी दिलचस्पी के साथ नहीं हो रहा है। जीवन के सूनेपन और खालीपन को भुलाने के लिए ही पीते हैं। इनका जीवन बड़ा दयनीय है। लगता है कि आजकल इन्हें 'सेक्स' में भी कोई रुचि नहीं रह गयी। पहले जो रुचि थी, वह भी ये कहते हैं कि भ्रमपूर्ण ही थी। शायद इनकी बढ़ती हुई उम्र का यह लक्षण है। उम्र भी क्या एकाएक बदल जाती है?

"गंगा...मुझे लगता है...सब कुछ छोड़-छाड़कर कहीं भाग जाऊं...इस जिंदगी से अपना पिंड छुड़ाकर भाग जाना चाहता हूं। जहां कोई अपना न हो। कार, पैसा, शराब, स्त्रियां, बीवी, बच्चे, मित्र, सबको छोड़कर कहीं अज्ञात देश में, अनजान लोगों के बीच चले जाने को जी चाहता है। जीवन को नये सिरे से शुरू करूंगा। मेहनत-मजदूरी करूंगा। दोनों वक्त का खाना, मेहनत करके, शरीर को थकाकर खाना चाहता हूं। सड़कों पर घूमना चाहता हूं। धूप में, ठंड में भटकना चाहता हूं। धरती पर, धूल पर पड़ा रहना चाहता हूं। बदलने को कपड़े भी न रखकर जैसे कई लोग घूमते रहते हैं, उन्हीं में से एक हो जाना चाहता हूं। बगैर किसी अलगाव के उनके साथ घुल-मिल जाना चाहता हूं। पहले की सारी बातें भूल जाना चाहता हूं। ओह ! कैसा लग रहा है — जानती हो? लग रहा है कि मैं वैसा ही करने जा रहा हूं।" बड़े उत्साह के साथ कल्पनाशील होकर बोल रहे हैं। मैं हंस पड़ती हूं। मेरी हंसी से इनकी कल्पना बिखर जाती है। शायद सोच रहे हैं कि मैं इनका मजाक उड़ा रही हूं। क्षण भर के लिए इनका मुंह जाने कैसा हो जाता है।

"किसलिए हंस रही हो?" ये पूछते हैं।

"एक बोतल स्काच व्हिस्की सामने रखे हुए आप जो कल्पना कर रहे हैं, उसे सोचकर हंस रही हूं। आज जैसी कल्पना कर रहे हैं, सचमुच वैसा जीवन बितानेवाले लोग उस जीवन की कल्पना कर रहे होंगे जो आप अब जी रहे हैं तो इस विचार से मुझे हंसी आ गयी।" मैं कहती हूं।

ये भी कुछ क्षण सोचते हैं। थोड़ी देर पहले कल्पना का जो आनंद था वह अदृश्य

हो जाता है। मैं सोचती हूं – 'हाय, मैंने इनकी मधुर कल्पना को बिखेर डाला !' वंचित हो चुके व्यक्ति के भाव से मेरी तरफ देखते हैं।

"तो तुम्हारा विचार है कि वह मेरे लिए असंभव बात है?"

ये मुझसे पूछ रहे हैं कि 'क्या वह मेरे लिए असंभव बात है'...लेकिन उस कथन में 'देखो, करके दिखाऊंगा' जैसा कुछ निश्चय नहीं झलक रहा। मेरे कथन की सत्यता से सहमत होकर 'हूं ऽ ऽ ऽ?' का एक बलहीन स्वर ही इस कथन में है !

यह अपने आप पूछ रहे हैं, "क्या मेरे लिए इतना भी संभव नहीं है?" इन्हें क्या समाधान दूं? – यह सोचकर मेरा मन विकल हो रहा है।

आखिर ये स्वयं कहते हैं, "क्या अब तुम्हारी समझ में आ रहा है कि मेरे किसी भी काम का उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं है? सभी तरह के काम करना, फिर उसके परिणामों को भोगना – यही जीवन है। इतनी ही मेरी फिलासफी है। यह कितनी सही है, समझ रही हो?"

आज मैं यह हिसाब रखना भूल गयी कि इन्होंने कितने गिलास पिये। यह भी क्या कोई काम है? पीना इनका काम है और हिसाब रखना मेरा?

अब मैं जबरदस्ती इनसे एक बात पूछ रही हूं, "आपने अभी कहा न – कहीं अज्ञात देश में जाकर अनजान लोगों के बीच नये सिरे से जीवन शुरू करने की – आपके उस जीवन में मैं भी साथी बन जाऊं तो कैसा रहेगा?"

आंखें फाड़कर ये मेरी ओर देखते हैं, "क्या मतलब?"

मेरी बात का मतलब समझते हुए भी न समझने की तरह पूछ रहे हैं।

"हां ! मेरा यही मतलब है।" मैं कहती हूं। अब ये हंसते हैं। ओह ! इस प्रकार इन्हें हंसे कितने दिन हो गये? खुशी के साथ, हल्के मन से, हंस रहे हैं। हंसते हुए कहते हैं, "अगर मैं पागलपन से भरी कल्पना कर सकता हूं तो क्या तुम नहीं कर सकतीं?" अंग्रेजी में कहते हैं।

मैं सीधे से पूछती हूं, "बात न बदलिये। मैं भी आपके संग चलूंगी। क्या दोनों चले चलें?"

"जैसे एक संन्यासी ने बिल्ली पाली थी, बिलकुल वही कहानी हो जायेगी।" कहते हैं। मैं सोचती हूं, इन्हें बात बात पर ऐसी कहानियां सूझती कैसे हैं ? इन्हें अच्छे मूड में रखने के लिए पूछती हूं, "कौन सी कहानी है वह?"

"लो ! अब कहानी सुनानी पड़ेगी।"

फिर कहानी सुनाते हैं : "एक बाबाजी थे। उनकी लंगोटी को चूहा ले गया। इस पर, चूहा पकड़ने के लिए उन्होंने एक बिल्ली पाल ली। फिर उस बिल्ली को दूध देने के लिए एक गाय पालने लगे। उस गाय को चराने के लिए एक लड़का रखा। और उस लड़के

की देखभाल करने के लिए एक औरत ढूंढ़ लाये। वैसी ही हो जायेगी हमारी भी कहानी।" कहकर ये हंसते हैं। मैं भी हंसती हूं।

इन्होंने सारे पापड़ खत्म कर डाले।

"क्या और पापड़ चाहिए?" पूछते हुए और पापड़ लाने के लिए उठती हूं।

"नहीं...बस...मुझे अब चलना है।" ये घड़ी देखते हैं।

मैं पूछती हूं, "क्या आपका कोई समय भी है?" पेट की ओर इशारा करते हैं। हां, इसके लिए, यहां कुछ नहीं है। किसी रसोइये का प्रबंध करना पड़ेगा, जो वेजिटेरियन और नान-वेजिटेरियन – दोनों तरह का खाना बना सकता हो। इन्हें यहीं खाने को कहा जा सकता है। पहले, इनसे कहे बिना ही बाजार से इनके लिए दो खूबसूरत लुंगी लानी हैं। बेचारे रात के एक बजे तक दिन के कपड़ों में ही बैठे रहते हैं।

साढ़े दस बज रहे हैं।

चलने से पहले कहते हैं, "इतना ही है जीवन, बस। सब कुछ पहले से निश्चित ! इसमें हम कोई नया परिवर्तन नहीं ला सकते हैं, इसे बदल नहीं सकते हैं। मरना चाहें तो आत्महत्या भी नहीं कर सकते। सब कुछ छोड़कर कहीं भाग जाना चाहें तो भी लगता है, वह संभव नहीं है।...संभव नहीं है – ऐसी बात भी नहीं है, सब कुछ संभव हो सकता है। मगर उसमें भी कोई मतलब नहीं है। इसलिए इसी जिंदगी को आसक्ति छोड़कर अनासक्त भाव के साथ जीना चाहिए, बस !"

ओह ! कितनी बड़ी बात को इन्होंने आसान शब्दों में कह डाला है। मैं मन ही मन पुलकित होती हूं।

मुझे संदेह है कि ये स्वयं के कथन के प्रति सचेत हैं या नहीं?

वेंकु मामा इस तरह की बातें करते रहते हैं। उसमें मुझे कोई मतलब नहीं दिखाई पड़ता था। वह केवल शब्दजाल होता था। लेकिन वही बात जब ये कहते हैं, तो इसमें उसके आयाम, परिणाम, आदि व्यक्त हो रहे हैं।

"एक बार और कहिए," मैं कहती हूं। मेरे कहने की हड़बड़ाहट देखकर ये उलझन में पड़ जाते हैं।

"क्या कहा मैंने?" उल्टे मुझी से पूछ रहे हैं। मुझे लगा, मैंने क्यों इनसे यह प्रश्न किया? मैं चुप रहती तो ये अपने ही बहाव में ऐसी ही जाने कितनी बातें करते जाते।

''आप अनासक्त जीवन जीने के निश्चय के बारे में कह रहे थे।'' मैंने अंग्रेजी में कहा, जिससे इन्हें आगे बोलने में सुविधा हो।

"हां। मेरा क्या नुकसान है? मंजु के बारे में, तुम्हारे बारे में, मेरे बारे में, चिंता करने से कोई लाभ होता हो तो ठीक है। लेकिन कोई भी तो लाभ नहीं होता है। तो फिर बेकार चिंता करने की क्या आवश्यकता है? चाहे तुम यह जीवन बिताओ, चाहे वह जीवन !

यह मुख्य प्रश्न नहीं है। कहीं भी रहो – उससे क्या है? हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। हम ऐसा जीवन नहीं बिता रहे हैं, जब सभी अधिकार हमारे हाथ में ही हों। चाहे स्काच पिओ, चाहे ठर्रा। एक ही बात है। स्काच पीकर गंदी बातें करने वाला अगर कोई होगा, तो ठर्रा पीकर ऊंची बातें करने वाला भी कोई होगा। मुझे तो अब एक बात स्पष्ट हो रही है – जन्म लेने, बढ़ने, काम करने, धन कमाने या खर्च करने, इन सबके लिए चाहे हम अपने को जिम्मेदार समझें या न समझें, इससे कुछ नहीं होने का। इसलिए, किसी भी बात पर न चिंता करनी है, न खुश होना है। दुख या सुख जो भी – हमें सब कुछ को उसी के अनुसार अनुभव करना है। हमारे वश में कुछ नहीं है... ।"

हाय ! हाय ! ये क्या क्या बोल रहे हैं ! आश्चर्य हो रहा है। फिलासोफिकल मूड में हैं। लेकिन इनकी फिलासफी की बात करना एक प्रकार से उचित ही है। औचित्यपूर्ण है। इनमें अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों का परिणाम अच्छा हो – यही मेरी प्रार्थना है। थोड़ी देर पहले मुझे एक आशंका हुई थी कि कहीं ये आत्महत्या न कर बैठें। वह आशंका अब दूर हो रही है। मुझे इससे चैन मिला है।

ये चल पड़े हैं।

हम सवेरे वाकिंग कर रहे हैं। मैं पूछती हूं, "रात को जो बातें हुईं, क्या वे सब आपको याद हैं?"

ये कहते हैं, "उस वक्त मुझ पर नशा सवार नहीं था। पीना यह अलग बात है और पीकर नशे के वश में हो जाना अलग बात है।" सिमेंट के फुटपाथ पर तेजी से चलते हुए कहते हैं। (आजकल कभी कभी ये चलते समय बातें भी करते रहते हैं। ऐसा अभ्यास हो गया है। चलते हुए बोलते समय हम एक-दूसरे की तरफ नहीं देख पाते। 'हूं' करके सुनती हुई मैं भी चल रही हूं।)

"मैंने एक दिन आत्महत्या कर लेने का यत्न किया। नींद की दो गोलियां भी खा लीं। फिर उस काम से विमुख हो वैसे ही सो गया। तब से मुझमें कई परिवर्तन होने लगे हैं। मुझे कुछ नये सत्य स्पष्ट होने लगे हैं। मान लो कोई कष्ट या दुख आता है। उससे बचने के लिए आत्महत्या करने की सूझती है। मैंने भी इसीलिए वैसा सोचा था। ठीक ! जहां तक उस कष्ट का सवाल है, अब मैं उसके लिए मर चुका हूं। इसी प्रकार हर बात के लिए हम मरते जायें तो..."

मुझे वह 'कुरल'* याद आता है जिसमें कहा गया है – 'कोई व्यक्ति जिस जिस वस्तु की आसक्ति से हीन होता जाता है, वह उस वस्तु से कभी दुख नहीं पाता।'

---

* 'तिरुक्कुरल' संत तिरुवल्लुवर द्वारा लिखित तमिल का प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें जीवनोपयोगी नीति तथा धर्म के वचन सूत्र रूप में दिये गये हैं।

"अगले दिन सवेरे जब मैं नींद से जगा तो यह सोचकर खुश हुआ कि 'मैं मरा नहीं हूं'। अपने बिस्तर पर पड़े पड़े मैंने खिड़की से देखा। नारियल के पेड़ का पत्ता एक बड़े पंखे की तरह दिखाई दे रहा था। मैं खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। वह पत्ता झुकता, सिर हिलाता हुआ चमक रहा था।

''वह पत्ता किस बात को देखकर आनंदित हो रहा है, मैं स्वयं रोमांटिक ढंग से महसूस करने लगा। घर के सामने लान में जो घास थी, वह भी मानो कह रही थी 'अरे ! तू नहीं मरा है !' इसीलिए मुझे देख रहा है ! यह जिंदगी है ! जीवन तो बड़ा सुंदर है, बड़ा सरल है। हम ही उसे गंदा कर देते हैं, जटिल बना देते हैं। मेरे मन में यही विचार उठ रहे थे। उसी दिन मैंने सोचा कि तुम्हें भी बता दूं। अगर तुम्हें यह पता लगता कि मैंने आत्महत्या करने का यत्न किया है तो तुम दुखी होतीं। इसलिए मैंने तुमसे नहीं कहा। साथ ही, मुझसे आत्महत्या कर लेना संभव नहीं हो पाया – ऐसा एक असामर्थ्य का भाव अनुभव हो रहा था। अब वह भाव दूर हो गया है। अब मैं कभी आत्महत्या का यत्न नहीं करूंगा।'' दृढ़ता से कहते हैं।

कल रात को मेरे मन में जो आशंका उठी थी, वह अब बिलकुल समाप्त हो गयी। मन में होता है कि इनका हाथ कसकर पकड़ लूं। मुड़कर देखती हूं। ये भी मेरी ओर देखते हुए हंस रहे हैं। इनके चेहरे पर एक नयी चमक दिखाई दे रही है।

"आप अपनी दाढ़ी कब ट्रिम करने वाले हैं? नहीं तो बाबा बन जायेंगे।" मैं कुछ कुछ मजाक में, कुछ सही ढंग से कहती हूं।

"आज कर लूंगा।" कहकर दाढ़ी पर हाथ फेरते हैं।

मैं अपने कार्यालय में हूं। फोन बज उठता है। ये ही होंगे – सोचती हुई फोन उठाती हूं। मुझे फोन करने वाला और कौन होगा? शायद दफ्तर के मामले में किसी और का फोन हो !

"यस... ।"

"मिस गंगा...!"

"स्पीकिंग..."

आश्चर्य ! आर.के.वी. बोल रहे हैं।

"जी, नमस्ते !" मैं कहती हूं।

"आपसे मिलना चाहता हूं। क्या दफ्तर में मिल सकता हूं? या घर में? घर पर आपकी माताजी रहती हैं न?"

"मां तो मेरे भाई के यहां गयी है। दफ्तर में ही आ जाइये !"

"आज लंच टाइम में मिल सकता हूं ?"

"प्लीज कम... ।"

"थैंक यू....आऊंगा। किसलिए मिलना चाहता हूं – यह तभी बताऊंगा। तब तक सस्पेंस रहने दें। क्या आपको आश्चर्य हो रहा है? आर.के.वी. भी सस्पेंस की बात कर रहा है – क्या सोच रही हैं? कहानी में नहीं होता तो कम से कम जीवन में हो, ओ.के. !"

कुछ समझ में नहीं आया। क्या बात होगी? सोचती हूं। अभी थोड़ी देर में मालूम हो जायेगा।

31

मुझे तो बड़ी हंसी आ रही है। बाहर से नहीं हंस रही हूं। मन ही मन लोट-पोट हो रही हूं। मुझें कुछ शरारत करने की सूझ रही है। इस समय शीशे में अपना मुंह देख लेने की इच्छा हो रही है। शायद मेरे चेहरे पर शरारत साफ घुमड़ रही है। शरमाते हुए, सिर झुकाये मेरे सामने बैठे आर.के.वी. मुझे 'हास्य की यह कहानी' सुना रहे हैं ; मैं पेंसिल छीलती हुई चुपचाप सुन रही हूं।

"उस दिन आप हमारे यहां आयी थीं न? उसके बाद मेरी मां आपके बारे में बराबर बात करती रहती है। कितने ही लोग मुझसे मिलने आते हैं। उनके बारे में मेरी मां कभी कुछ नहीं पूछती। लेकिन आपके बारे में बार बार पूछती रहती है। आपकी बड़ी प्रशंसा करती है। वह कहती है — आप इतनी पढ़ी-लिखी हैं, बड़े ओहदे पर हैं, फिर भी बड़ी विनम्र हैं। आपने अभी तक क्यों विवाह नहीं किया? मुझसे पूछती है। मैं क्या जवाब दे सकता हूं? एक दिन मैंने कह दिया, 'अगर तुम चाहो तो स्वयं उनके घर जाकर पूछ लो न?' आज भी पहले मैंने आपसे मिलने की नहीं सोची थी। यही सोचा कि मैं और मेरी मां आपके घर आयेंगे और आपकी माताजी से मिलकर इस संबंध में बात करेंगे। मुझे आपके घर का पता नहीं मालूम है। शायद आपने मेरी मां से 'पंचवटी' कहा था। उसे उसने पकड़ लिया। वह कह रही थी कि पंचवटी मुहल्ले में जाकर पता लगायेंगे तो घर मालूम हो जायेगा। मुझे क्या और काम नहीं है? लेकिन अब उसका अवसर शायद आ गया है। अब आगे आपसे कुछ नहीं कहूंगा। मैं आपके घर आकर आपकी माताजी से ही बात कर लूंगा।" यह कहकर वे अपने आप हंस लेते हैं।

"आपका सस्पेंस बड़ा दुर्बल है," मैं कहती हूं।

"इसीलिए तो मैं सस्पेंस रखता ही नहीं हूं।"

"पूरी बात मुझी से कह सकते हैं।"

"हां ! हां ! खूब। कहने में क्या है? लेकिन बड़े-बूढ़े लोग बात करें तो ज्यादा उचित होगा — यही विचार था, और कुछ नहीं। फिर भी अंतिम निर्णय आप ही के हाथ में है। मैंने यही सोचा कि इस दफ्तर के वातावरण में इस संबंध में बात करना शायद उचित नहीं रहेगा।" यह कहकर वे चारों तरफ घूम घूमकर देखते हैं, मानो कोई चोरी कर डाली हो।

"कोई बात नहीं, कह दीजिये। अभी लंच टाइम खत्म नहीं हुआ है।" मैं कहती हूं। पेंसिल की नोक खूब पैनी हो गयी है। मेरी उंगली काली हो गयी है। सिर उठाकर उनका मुंह नहीं देखा जा रहा। बड़ा धर्म-संकट है। यह डर लग रहा है कि कहीं हंसी न फूट पड़े। कनपटियों पर गुदगुदी हो रही है। यह बड़ा मेधावी आदमी है। इतनी अच्छी कहानियां लिखता है। लेकिन कितना अनाड़ी है। यह कैसे..? यह इनका अपना यत्न नहीं लगता। शायद मेरे प्रति यह दया का भाव है — कि अपनी जाति की एक लड़की है ; अभी अविवाहित है। इन्हें नहीं, बल्कि इनकी मां को मुझ पर दया आ गयी है। इसीलिए कोई वर ढूंढ़ लाये हैं। आइये महाशय ! आइये ! हाय ! पेंसिल की यह नोक तो टूट गयी। ठीक है। दुबारा बना सकती हूं।

वे बता रहे हैं — उनके चचेरे भाई हैं, रामरत्नम् नाम है। इनसे भी दो वर्ष छोटे हैं। तब तो चालीस वर्ष के करीब होंगे। विधुर हैं। दो वर्ष पूर्व उनकी पत्नी चल बसी। उसके बाद यह सोच रहे थे कि अब फिर शादी नहीं करेंगे। कोई बच्चा-वच्चा नहीं है। बैंगलूर में रहते हैं। एच.एम.टी. में कोई बड़े अफसर हैं। बड़े आदर्शवादी हैं। विवाह के समय कह दिया था कि दहेज-वहेज कुछ नहीं लेंगे। पिछले मास यहां आये थे। आर.के.वी. की माताजी ने ही मेरे बारे में बात छेड़ी थी। उसे सुनकर आर.के.वी. को जाने कैसे लगा ! उन्होंने सोचा — इसकी शादी करा देने के लिए मां क्यों परेशान हो रही है ? फिर सोचा कि इसमें कोई त्रुटि नहीं है। भला काम ही तो है। फिर यह सोचकर चले आये हैं कि मुझसे पूछ लिया जाये, यदि भाग्य में बदा है तो विवाह संपन्न हो जायेगा।

'भाग्य' किसका? इनके 'भाई' का? या मेरा? कोई जवाब नहीं देना चाहिए — इस विचार से मैं दांत कसे बैठी हूं। उनका ख्याल है कि शादी की बात सुनकर मैं लज्जा के कारण सिर झुकाए बैठी हूं। वे कहते हैं, "आप कोई छोटी बच्ची थोड़े ही हैं। आजकल की लड़कियों को पढ़ाई, नौकरी आदि की चिंता लगी रहती है। फिर विवाह के बारे में सोचने का अवसर ही कहां आता है !" आगे जाने क्या क्या कहते जा रहे हैं। यह विषय और इसके बारे में चर्चा मुझे मजेदार लग रही है। फिर भी यह विचार करके कि इसे किस प्रकार संभाला जाये — बड़ा धर्म-संकट हो रहा है। ऐसा लगता है कि चुपचाप मां की ओर इशारा कर दिया जाये। मां क्या कर जायेगी? क्या यह बतायेगी कि मेरी बेटी 'बिगड़' गयी थी? उसे अब विवाह नहीं करना चाहिए न? या नहीं तो और लोगों की तरह 'उससे भी एक बार पूछ लिया जाये' कहकर गेंद मेरी ही तरफ वापस फेंक देगी? तब तो मैं भी और लोगों की तरह यह कहकर कि मुझे अब विवाह की आवश्यकता नहीं है — आंचल का छोर उंगली पर लपेटती हुई, शरमाने की मुद्रा में खड़ी रहूं? वाह ! क्या तमाशा है !

नहीं तो जैसे कि मामा कहते हैं कि अब मुझमें शादी करने की योग्यता नहीं रही है — इस निश्चय के अनुसार मां टाल देगी। चाहे कुछ भी हो। यह कैसा मजाक रहेगा, देख

लिया जाये !

फिर आर.के.वी. पूछते हैं, "आपके भाई का क्या पता है?"

"मैं यह लिखे देती हूं।" मैं एक कागज पर भाई का पता लिखकर दे देती हूं। और कहती हूं, "सर.! आपने मेरे भाई के घर का पता मांगा, मैने दे दिया। बस ! उनका पता देने का यह अर्थ नहीं है कि मैंने, जिसे अंततः निर्णय करना है, पहले ही निर्णय कर लिया है। इसके बारे में मुझे बहुत कुछ सोचना पड़ेगा।" जैसे कि सभी लड़कियां कहती हैं, मैं भी कह देती हूं। किसी बच्ची की तरह ही 'मैं शादी क्यों करूं?' कहकर मचलने को जी होता है। मैं हंस पड़ती हूं।

मेरा सिर झुकाये मौन रहना, पेंसिल छीलना, भाई का पता देना, हंसी – इन सबने उन्हें गलतफहमी में डाल दिया है, यह मुझे स्पष्ट ज्ञात हो रहा है।

"अब आपसे और बात नहीं करनी। बाकी आपकी मां से कहूंगा। शाम तक वे वहीं रहेंगी न? आपके भाई भी शाम को दफ्तर से घर वापस आ जायेंगे। उनसे बात कर लूंगा। आपके भाई का पता लेने के लिए ही मैं यहां आपसे मिलने आया। अब घर जाकर अपनी मां को भी साथ लूंगा और आपके भाई के यहां जाऊंगा। मैंने आज आधे दिन की छुट्टी ली है।" बड़े उत्साह के साथ कहकर खुश हो रहे हैं जैसे आधी शादी संपन्न कर ही दी हो।

आर.के.वी. के जाने के बाद मैं इन्हें फोन करती हूं, "शाम को मैं सीधे घर चली जाऊंगी। आप दफ्तर न आयें। लेकिन आज आपको मेरे घर जरूर आना है – एक दिलचस्प समाचार है।" मैं भी सस्पेंस के साथ कहती हूं।

"क्या मंजु के बारे में कोई बात है?" वे पूछते हैं।

"नो ! नो ! मेरे अपने बारे में खबर है !" उनकी समझ में नहीं आ रहा है।

"क्या तुम्हें पदोन्नति मिली है?"

"नहीं। आप बिलकुल गेस नहीं कर पायेंगे। शाम को आइये, बताऊंगी। कम से कम एक अजीब समाचार सुनने की खुशी आपको देना चाहती हूं !" मैं हंसती हूं।

"ठीक है। आकर जान लूंगा – और क्या समाचार है?"

"बाकी कुछ नहीं।" मैं कहती हूं।

"क्या बहुत व्यस्त हो?"

"नहीं..और आप?"

"मैं एक लेटर डिक्टेट कर रहा हूं"

"क्या मैंने डिस्टर्ब कर दिया है?"

"नहीं नहीं ; डिक्टेशन अभी बस पूरी की ही है।"

"आप जब अपने दफ्तर में व्यस्त हों, ऐसे में आपको देखने का मन हो रहा है। मैं

यहीं से कल्पना करके देखती हूं। फिर भी साफ मालूम नहीं होता है।...किसी दिन मैं आपके कार्यालय में आ धमकूगी।" मैं कहती हूं।

"अरे हां ! तुम तो यहां कभी आयीं ही नहीं।...कमाल है। मुझे कभी सूझा ही नहीं। आज ही क्यों न आ जाओ? अभी आ जाओ। मैं कार भिजवा देता हूं।" वे आतुर हो रहे हैं।

"आज नहीं। फिर किसी दिन, आपको सूचना दिये बिना, अचानक आकर हाजिर हो जाऊंगी।"

"ठीक है।"

"ओ.के.," मैं बात खत्म करती हूं।

रिसीवर को न तो मैं रखती हूं ; न ये...मैं इंतजार कर रही हूं कि ये रख दें। वे भी शायद मेरे रिसीवर रख देने के बाद ही रखना चाहते हैं।

"रख दीजिये।" मैं कहती हूं।

"नहीं। तुम्हीं ने काल किया न? तुम्हीं को कट करना चाहिए।" वे कहते हैं।

"आप किस तरह की पोशाक में हैं?" फिर बात छेड़ती हूं।

"ड्रेस.... जरा ठहरो। अभी देखकर बताता हूं, क्योंकि तुमसे बाते करते समय सब भूल गया हूं....ग्रे कलर का सूट...क्रीम कलर टेरीकाट शर्ट...ग्रे और रेड के मिलेजुले रंग की टाई...ब्लैक शूज।" बड़ी गंभीरता से मेरे प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं।

"इसी ड्रेस में आइये...मैंने आपके लिए लुंगी खरीद कर रखी है।" शाम को खरीदने जो वाली हूं, इसीलिए उसे याद करते हुए कह देती हूं।

"कब खरीदी? कहां से जाकर खरीदी?" छोटे बच्चे की तरह बड़ी उत्सुकता से पूछते हैं।

"कहीं से भी कभी भी खरीदा है।" मैं कुछ नखरे के साथ कहती हूं।

"अब समझ रहा हूं, तुम्हारा सस्पेंस क्या है? मेरे लिए तुमने कोई प्रेजेंट खरीद रखा है? क्या मैं ठीक कह रहा हूं?"

"नहीं। डोंट गेस," जोर देकर कहती हूं।

"ठीक है, अब कितने बजे हैं – ढाई बज चुके हैं। अभी तीन घंटे बाद मालूम हो ही जायेगा," कहते हैं।

"ओ.के.," आखिर मैं ही बात खत्म करके रिसीवर रख देती हूं।

शाम हो गयी है। इस समय उधर गणेश के यहां क्या क्या हो रहा होगा – इसकी कल्पना करती हुई मैं टैक्सी में बैठ जाती हूं और दुकान से तीन लुंगियां खरीद लेती हूं। अच्छी ही हैं। बाहर जाते वक्त भी इसे क्यों नहीं पहन सकते? किसी और की तरह दिखेंगे –

इसलिए? रहने दो। खूब मुलायम हैं। क्या इन्हें अच्छी लगेंगी ? अरे ! अब तो छह बज गये हैं ! अभी तक ये नहीं आये !

रात को खाने के लिए क्या किया जाये ? ऐसा लगता है कि मैं अपने घर के खाने को बोझ की तरह ढोती फिर रही हूं। इनसे ही सही, कहकर एक खाना बनाने वाली को तय करना है। बड़ी बोर हो रही हूं। भूख लगने पर तुरंत खाया नहीं जा सकता। तभी चूल्हा जलाने को मन होता है। अगर किसी दिन भूख लगने के पहले ही भोजन तैयार करके रख लेती हूं तो उस दिन खाना ऐसा लगता है जैसे मुंह पर फेंका जा रहा हो। वैसा खाना बिलकुल अच्छा नहीं लगता है। छिः, यह क्या ! भोजन के बारे में इतनी चिंता ! अभी तक ये नहीं आये। इसी बीच रात के खाने के लिए कुछ तैयार कर देती हूं। सूजी है, सब्जियां हैं। अगर उपमा बनाएं तो कैसा रहे? या थोड़ी केसरी – मोहन भोग – बना दूं तो भी ठीक ही रहेगा। काम भी हल्का रहेगा।

चूल्हा जल उठता है। घी महकता है – इतने में ये आ गये। कार की आवाज सुनाई पड़ी तो हाथ में कड़छुल लिये ही बाहर आकर मैंने देखा। जैसे बताया था, वैसे ही, उसी पोशाक में आये हैं। हाथ में मिनी बार !

"जरा बैठिये, आती हूं। आपके आने तक खत्म कर लेने के विचार से बनाना शुरू कर दिया," चूल्हे पर बरतन में रखी चीज को कड़छुल से हिलाती हुई बोलती हूं।

"कोई जल्दी नहीं है। आराम से कर लो !" कहकर अखबार खोल लेते हैं।

सारा काम पूरा करके मैं आ जाती हूं और इनकी तरफ गौर से देखती हूं। मेरे कहने पर ये घर जाकर स्नान करके फिर वही पोशाक पहनकर आये हैं। दाढ़ी को ट्रिम कर लिया है। वह भी अच्छा ही है। लुंगी लाकर इन्हें देती हूं। देखकर "वेरी गुड, वेरी गुड" कहते हैं।

"थोड़ी मीठी चीज खायेंगे? कुछ बना रखा है। पता नहीं, कैसा होगा?" कहकर एक तश्तरी में थोड़ा हलुआ और उस पर चम्मच रखकर देती हूं।

"तुम अपने लिए नहीं ला रही हो?"

"आपके टेस्ट कर लेने पर मैं खाऊंगी।" वे चम्मच से थोड़ा हलुआ उठाकर खाते हैं। "वाह ! शाबाश ! रियली गुड !" बड़े विश्वास दिलाने के ढंग से कहते हैं।

"ठीक ! मीठी चीज खिला दी है। अब वह खुशखबरी भी सुना दो। कुछ कहने वाली हो न?"

हाय ! हाय ! यह तो ऐसा ही हुआ मानो मैं उसी बात के उपलक्ष्य में मीठा खिला रही हूं – हाय रे भाग्य !

"उस समाचार में और इस मीठे में कोई संबंध नहीं है।" कहकर उस विचार को जल्दी जल्दी बदल देती हूं।

"मैं संबंध जोड़ता हूं।" ये कहते हैं।

"आज लंच टाइम में आर.के.वी. मुझसे मिलने आये। पहले उन्होंने मुझे फोन किया था। कहा कि मुझसे मिलना चाहते हैं। उन्होंने मेरी मां से बात करने की इच्छा प्रकट की। मैंने कहा कि मां यहां नहीं है। गणेश के घर का पता मांगा। उसके बाद मुझसे भी असली बात वतायी। अभी आगे जोक है।" कहकर मैं भीतर जाकर पीने के लिए पानी ला देती हूं।

मैं अपनी आवाज में कुछ व्यंग्य ले आती हूं। कुछ वक्र हंसी के साथ बोलती हूं, "उनके कोई चचेरे भाई हैं। विधुर हैं। बड़े आदर्शवादी हैं। उनके लिए मुझे वधू बनाना चाहती हैं, आर.के.वी. की माताजी। कुछ मजाक करने के लिए मैंने गणेश का पता देकर उन्हें भेजा है। अब तक वे गणेश के यहां पहुंच गये होंगे। कल बड़ा मजेदार जोक होगा।" जब मैं बोल ही रही हूं, तब ये मंत्र का उच्चारण करने वाले स्वर में थोड़ी गंभीरता के साथ पूछते हैं, "इसमें मजाक की क्या बात है?"

मेरी हंसी एकदम बंद हो जाती है। इसका क्या जवाब दूं, कुछ नहीं सूझता।

मेरी ओर न देखते हुए थाली से चम्मच में वह मीठा लेकर खा रहे हैं और गंभीर चिंतन कर रहे हैं। फिर मुझे देखकर हंसते हैं, कहते हैं, "सचमुच यह एक बड़ी ख़ुशखबरी है...।"

मैं इस बात को इतनी उपेक्षा से जो टाल रही हूं, वह शायद इन्हें अच्छा नहीं लगा। "मगर मैं इसे खुशखबरी नहीं मानती हूं।" मैं इनकी बात को काटकर कहती हूं।

"जल्दबाजी मत करो। तुमसे कोई दूर का रिश्ता भी न रखने वाले उस आर.के.वी. का तुम्हारे जीवन में जो रोल है, वह विलक्षण है, अद्‌भुत है !"

कुछ कहते कहते जैसे मैं कहीं उलझ गयी होऊं, इस प्रकार मैं ठिठक जाती हूं। मेरी इच्छा के विरुद्ध ये कभी नहीं बोले हैं। वैसा नहीं बोलेंगे, नहीं सोचेंगे, इस प्रकार की धारणा से ही मैंने बात छेड़ी थी। लेकिन अब अजीब सी स्थिति में फंस गयी हूं। इस मामले में ये जैसा उत्साह दिखा रहे हैं, इसे देखकर इनका प्रतिवाद करने में मुझे डर लग रहा है। लेकिन, मुझे इसका प्रतिवाद करना ही है।

हम दोनों मौन हैं, मानो किसी बड़े कार्य की तैयारी में शक्ति का संचय कर रहे हों। मुझे लगता है, इस बात को आगे न बढ़ाकर यहीं बंद कर दूं तो अच्छा होगा।

लेकिन लगता है, ये नहीं छोड़ने वाले।

"आपने इसके संबंध में जो कुछ सोचा है, वही काफी है।" जैसे मैं इन्हें दबाना चाहती हूं। "यह मामला न तो आपके हाथ में हैं, न मेरे हाथ में। वे लोग लड़की तय करने के लिए वहां गये हैं। वहां गणेश, मेरी भाभी – इतना ही क्यों – मुहल्ले के सब लोग खड़े होकर उन्हें मेरी कहानी सुनायेंगे। आपने पूछा कि इसमें क्या जोक है? वह तो उन लोगों

को मालूम होगा। मुझे वधू बनाने का यत्न करने वाले इन लोगों पर वे हंसते होंगे।" मेरा कथन इन्हें बड़ा कठोर लग रहा है शायद।

"नहीं..नहीं ! वैसा कुछ नहीं होगा। लेकिन अंत में जब मामला तुम्हारे पास आये तो तब तुम 'हां' कह देना, बस ! यह विवाह निश्चय ही संपन्न होना चाहिए।" वे दृढ़ता के साथ कहते हैं।

"ठीक है। सब पूरा हो जाये और मामला मेरे पास आ जाये, तो देख लिया जायेगा।" इस बात को वहीं समाप्त कर देती हूं। लेकिन मुझे मालूम है, मेरे पास यह मामला कभी नहीं आयेगा। वैसे, आ जाये तो भी मैं उसके लिए 'हां' नहीं कहने वाली हूं।

32

क्या हुआ — पता नहीं। आर.के.वी. मुझसे दफ्तर में जब मिलने आये थे, उस बात को चार-पांच दिन हो चुके हैं। क्या वे अपनी मां को साथ लेकर गणेश के यहां गये या नहीं — यह भी पता नहीं है। उन्होंने तो कहा था कि उसी दिन शाम को जाने वाले हैं। उसके बाद क्या हुआ, मालूम नहीं है। मां खुश हो गयी होगी ! गणेश ने उसे दबा दिया होगा, भाभी मुंह को जबरदस्ती बंद किये मन ही मन खूब हंसी होगी ! आर.के.वी. और उनकी मां का खूब सत्कार कर खुश करके भेज दिया होगा ! वे क्या निर्णय लेकर लौटे होंगे? इन लोगों ने उन्हें क्या कहकर भेज दिया होगा?

गणेश ने बताया होगा, 'गंगा कोई इतनी छोटी लड़की नहीं है कि हम लोग उसके लिए कोई वर निश्चित करें। उसका विवाह नहीं होने वाला। वह भी नहीं करेगी। आप गलत न समझें। क्यों व्यर्थ ही आप कष्ट उठा रहे हैं? हम अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए बैठे हैं। हम सारी बातें अपने मुंह से कैसे कहते फिरेंगे? अजी, उसे तो शादी ही नहीं करनी चाहिए ! आप तो भले आदमी मालूम होते हैं, अच्छा काम कर रहे हैं। लेकिन हम भी इसके लायक हों, तभी न? मैं तो इतना ही कह सकता हूं। आप तो बड़े लेखक हैं। संसार को जानते हैं। अब इसके आगे मैं क्या कहूं?'

छिः ! क्या वह इस तरह बात करेगा? वह भी एक अजनबी से? फिर भी गणेश के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। वह कुछ भी कर सकता है। कहीं भी कुछ भी कह सकता है। बेचारी मां रोयेगी। भाभी भी कोई चुभती बात कहकर व्यंग्य करेगी।

मैंने क्या कोई गलती कर दी है? आर.के.वी. को गणेश का पता देकर नहीं भेजना चाहिए था। मैं क्यों हर काम को इस प्रकार बिगाड़ रही हूं? औरों को इस प्रकार किसी न किसी बात में उलझाकर, अपनी मां को भी यों उलझाकर, तमाशा देखने में मुझे कौन सी प्रसन्न्ता मिल रही है? मैंने सोचा था, अगले ही दिन कोई खबर आयेगी। लेकिन कोई खबर नहीं आयी। क्या हुआ होगा — इस उत्सुकता से मन व्याकुल हो रहा है। क्या किसी को भेजकर समाचार मंगवाऊं? किसको भेजूं? कौन क्या पता लगा पायेगा? मैंने सोचा था कि उसी दिन शाम के वक्त उधर चली जाऊं। वैसा करती तो अच्छा रहा होता।

जो भी हुआ हो, मुझे क्या लेना-देना ? यह सोच मैं चुप रह जाती, लेकिन ये छोड़ें तब न ! उस दिन से रोज उसी बात की चर्चा कर रहे हैं। उस संबंध में ये बड़ी गंभीरता

से सोच रहे हैं। अब मुझे लगता है – मैंने क्यों इन्हें बताया? इनको बताने के लिए ही सही, मुझे यह पता लगाना ही है कि वहां क्या कुछ हुआ, उसका नतीजा क्या निकला?

जहां तक मैं सोच पाती हूं, अब तक मामला तय हो चुका होगा। इसलिए दुबारा उस संबंध में मेरे पास कोई खबर नहीं आयी। क्या आर.के.वी. को फोन करके देखूं? छिः, क्या बात करूं? अगर मैं फोन करूं तो उसका मतलब कुछ और लगाया जायेगा? वे यही सोचेंगे कि मैं इसमें रुचि रखती हूं। यह झंझट मुझे नहीं मोल लेना था। पहला झंझट था गणेश के घर का पता उन्हें देना। दूसरा झंझट था वह बात प्रभु को बताना। अब तीसरा झंझट और कोई पैदा न कर लूं ! बस, यही सोचती हूं। इनकी सारी बातें सुन लेती हूं। ये मंजु को भी शायद इतना न समझाते, जितना मुझे समझाया है। कोई भी मां ससुराल जाने वाली अपनी बेटी को भी इतना न समझाती होगी...।

विवाह हो जाने के बाद, ये कहते हैं कि, मुझसे बार बार नहीं मिलेंगे। मुझे भी इनसे नहीं मिलना है। फोन भी नहीं करना है। मेरे 'वह' अगर इन्हें पसंद करेंगे तो एक फ्रेंड के रूप में ये कभी-कभार आकर मिल जाया करेंगे। लगता है कि 'वह' अच्छे व्यक्ति ही होंगे। ऐसा क्यों समझ रहे हैं? – मैंने इनसे कुछ नहीं पूछा। इनकी कल्पनाओं का, बातों का रस ले रही थी। मेरे पास ऐसा कोई रहस्य नहीं होना चाहिए जो मेरे 'वह' नहीं जानते हों। अगर उनके कानों में मेरे विगत जीवन के बारे में कोई समाचार पड़ा हो और अगर 'वह' कुछ जानना चाहते हों तो मुझे कोई बात छिपाए बिना सब बता देना चाहिए। लेकिन यह नहीं बताना चाहिए कि वह व्यक्ति कौन है। मैं बता दूंगी तो उस पर ये नाराज नहीं होंगे, लेकिन उसके बाद मिलना उचित नहीं होगा। मेरा पारिवारिक जीवन बड़ा ही सुंदर होगा। मेरी जैसी एक अच्छी पत्नी मिलना उनका भाग्य ही है। सब कुछ अपने आप बनता जा रहा है तो मुझे उसे नहीं बिगाड़ देना चाहिए। अगर मैं बिगाड़ दूंगी तो फिर मुझसे नाराज होकर ये मुझसे कभी न मिलेंगे – ऐसी बातें करते हुए प्रभु हर दिन मेरी शादी कराकर खुश हो रहे हैं !

हम वाकिंग करके लौट रहे हैं। आज रविवार है। रास्ते में एक होटल में काफी पीने चले गये, इसलिए लौटने में देर हो गयी है। नौ बज गये हैं। कार से उतरते वक्त देखती हूं, मां घर के बाहर एक गट्ठर लिये बैठी है। मुझे देखते ही प्रसन्नता से हंसती है। इसे देखे कई दिन हो गये। मुझे भी प्रसन्नता हो रही है। मां को देखते ही ये सहम जाते हैं और जल्दी से कहते हैं, "तो मैं चलता हूं।" मां न तो इनकी ओर ध्यान देती है, न कार की ओर। "आओ आओ।" कहकर सिर्फ मेरा स्वागत करती है।

मैं पूछती हूं, "क्या बहुत देर से बैठी हो?"

"थोड़ी ही देर पहले आयी। लेकिन अचानक आशंका होने लगी – आज तो रविवार

है, तुम कहीं घूमने चली गयी होगी और शाम को ही आओ। यही सोचती बैठी रही कि अब मुझे क्या करना है।"

मैं घर का दरवाजा खोल देती हूं। भीतर प्रवेश करते हुए मां बोलती है, "मैंने ठान लिया था कि तुम चाहे जब भी आओ, मैं तब तक यहीं बैठी रहूंगी। वापस लौटकर जाऊंगी तो गणेश की बहू मुझे देखकर हंसेगी। घर पर ताला बंद होने के कारण मैं लौट आयी हूं – इसे वह कहां मानेगी ? वह तो यही कहेगी कि तुमने भगा दिया होगा, इसलिए मैं लौट आयी हूं।"

आंगन में डोरी पर लुंगी सूख रही है। मां की नजर उस पर पड़े इसके पहले ही मैं उसे उतारकर कहीं रख देती हूं। उसे क्या मालूम ! समझेगी कि यह कोई साड़ी है।

हाल में वह मिनी बार पड़ा है। कल ये उसे नहीं ले गये। हमेशा जब शराब खत्म हो जाती है, तभी उसे ले जाते हैं। बाकी हो तो यहीं छोड़ जाते हैं। आज शाम को क्या करेंगे? हां। अगर यह नहीं रहेगा तो क्या उन्हें और कहीं शराब मिलेगी ही नहीं ! घर में जगह जगह भर भरकर रखी होगी? मां को इन्होंने आज यहां देख लिया है, इसलिए आज शाम को इधर नहीं आयेंगे। कल सवेरे वाकिंग के लिए ही इस तरफ आयेंगे। वह भी, चूंकि मां घर में है, बाहर से ही हार्न बजायेंगे।

मैं डर रही थी कि कहीं मां उस लीकर केस को देखकर यह न पूछ बैठे कि यह क्या है? झटपट उसे ले जाकर मैंने अपने कमरे के भीतर रख दिया।

इस घर में ये जो आकर पीते हैं और नान-वेजिटेरियन खाना खाते हैं – उसे याद करके जीभ दांतों में दबा लेती हूं।

हाल में मां खंभे के पास बैठी गट्ठर खोल रही है। उसमें बहुत सारे डिब्बे, बोतलें और तरह तरह की पोटलियां भरी हैं। न जाने क्या क्या अचार, बड़ियां आदि हैं। "मैं तो यहीं रहती हूं। मेरा मन यहीं रहता है। हर वक्त खाते समय सोचती, तुमने क्या बनाया होगा, क्या खाया होगा? सिर्फ मन में सोच लेती हूं, मुंह खोलकर थोड़े ही कह सकती हूं। तुम्हारा नाम ले लूं, वह भी मैं, तो हर कोई एक एक ठोकर जमा देगा। भाग्य को कोसती हुई चुपचाप पड़ी रहती हूं। रंगसामी पैसा लाकर देता है न? उस समय उसी से तुम्हारे बारे में पूछ लेती हूं। गणेश को सिर्फ सत्तर रुपये देती हूं। तीस रुपये अपने पास रख लेती हूं। मैं हाथ में रखकर क्या करूं भला पैसे का? उस घर के लिए ही खर्च कर डालती हूं। बच्चों को कोई चीज ला देती हूं। गली में कोई चीज बिक रही हो तो मैं अपनी मर्जी से खरीद देती हूं। इसीलिए मैं अपनी इच्छा से कुछ भी ला सकती हूं। इतना होते हुए भी अकसर उसके साथ टकराहट हो ही जाती है।" कहती हुई हाल से रसोईघर, रसोईघर से आंगन में घूम घूमकर सारा सामान समेटकर रख देती है।

मैं हाल में बैठी चुपचाप सारी बातें सुनती रहती हूं।

"यह कैसा है, जरा देखो न?" कहकर मां कोई चीज चम्मच में भरकर मेरे सामने करती है।

"क्या है यह?" मैं पूछती हूं।

"हाथ आगे बढ़ाओ। क्या है, फिर खुद ही बता दो न?" कहकर मेरी हथेली पर कुछ रख देती है। ऐसी क्या अद्भुत वस्तु है? खा लेती हूं। फिर कहती हूं , "बादाम हलुआ है।"

"वही तो नहीं है !" ताली बजाकर वह हंसती है। "सोचकर बताओ।" एक और चम्मच भर देती है। इसमें सोचने की क्या बात है?

"मुझे तो कुछ नहीं मालूम हो रहा है। खाने में तो मजेदार है।"

मैं उठकर हाथ धो लेती हूं। मैंने उसके बारे में 'क्या है? क्या है?' करके आतुरता से नहीं पूछा। उसे कुछ बुरा लग रहा है। अगर पूछ लेती तो 'सोचकर बताओ' कहती हुई दो-चार चम्मच और भरकर मुझे खाने को दे देती। ताली बजाकर हंसती। मैं असावधानी से उठकर हाथ धो आयी। उसने झट रहस्य खोल डाला, "आलू का हलुआ है। एक बूंद बादाम का एसेंस डाल दिया। कोई पहचान नहीं पाया। बादाम के हलुए जैसा ही है। कोई फर्क नहीं है। इसके लिए बेकार खर्च क्यों किया जाये? बादाम खरीदना, तोड़कर छिलके निकालना, पीसना... ।" जाने लगातार बोलती जाती है। मैं अपने कमरे के भीतर चली जाती हूं।

"थोड़ी काफी तैयार कर दूं?" कमरे के दरवाजे पर आकर मां पूछती है। मुझे नहीं चाहिए थी। फिर भी शायद मां को जरूरत हो – इसलिए कह देती हूं, "हां।"

रसोईघर में जाकर, मां अपने आप ही जाने क्या कुछ बोलती हुई काफी बनाती है। कह रही है कि जैसे वह सब रखकर गयी थी, वैसे ही कुछ नहीं रह गया। सारे बरतन काले पड़े हैं। कमरे को हफ्ते में कम से कम एक बार तो पानी डालकर धो लेना चाहिए। चलते वक्त फर्श पांव में चिपकता है। 'बेचारी' यह लड़की क्या क्या करेगी? उस पर दया की अभिव्यक्ति और ! "हां, होटल में खाने की बजाय घर में ही बना लेने की जो सूझी, वह अच्छा ही है।" तृप्ति का भाव। काफी का प्याला लाकर रख देती है और "क्या बनाना है ?" कहकर प्रश्न करती हुई खड़ी है।

काफी पीती हुई मैं पूछती हूं, "अपने लिए नहीं बनायी क्या?"

"है..है..," कहती हुई रसोईघर में चली जाती है।

मुझे भी लगता है, अच्छा भोजन खाये कई दिन हो गये। अब मां घर में आयी है तो मन में बड़ी प्रसन्नता हो रही है। लेकिन मेरे मन में एक बात साफ हो रही है, इन सारी चीजों के पीछे कोई बात है। मां इसी प्रतीक्षा में है कि कब वह बात छेड़ी जाये।

मैं स्नान करने के लिए बाथरूम में चली जाती हूं।

आर.के.वी. आकर शादी के बारे में बात करके गये होंगे। तभी मां और गणेश में झड़प हो गयी होगी – ऐसा लग रहा है।

इस विवाह के प्रस्ताव का समर्थन किसने किया होगा? मैं सोचती हूं।

मां ने विरोध नहीं किया होगा। गणेश ने अवश्य अड़चन डाली होगी। मां खुद बताये, इसीलिए तो आयी है। नहीं तो क्या यह बताने के लिए आयी है कि आलू का हलुआ कैसे बनाया जाता है !

आते ही कितनी सहजता से रसोई का भार अपने ऊपर ले लिया है। घर को पानी डालकर धोया जा रहा है...

मैं बाथरूम से बाहर आती हूं। मां बेचारी लपक लपककर पानी डालकर बुहार रही है। इस प्रकार बांहें फैला फैलाकर वहां थोड़े ही काम कर सकती है ? वहां पानी डाला जाये तो सामने वाले किरायेदार के पोर्शन में चला जायेगा। वहां पानी ही कहां है इस प्रकार उड़ेलने को? शायद इतने दिन से तरस रही थी... !

आज ही मैं इत्मीनान से नहाकर, कपड़े बदलकर चारपाई की पट्टी पर सिर के भीगे बाल फैलाकर हवा में सुखाती हुई चित लेटी हूं और कई दिनों के बाद एक किताब पढ़ रही हूं। नहीं तो चूल्हे पर एक नजर, किताब पर एक नजर रखे हाल और रसोई के बीच दौड़ती रहती।

मैं जब रसोई बनाती हूं तो ऐसी महक नहीं आती है न? दूसरों के पकाने पर ही महक मालूम होती है शायद।

भीगे हाथ पोंछती हुई मां हाल में आती है। आकर सोफे पर बैठ जाती है। कमरे के भीतर आकर मुझे पढ़ते हुए देखती है।

"तुम नाम लिया करती थीं न 'आर.के.वी.', 'आर.के.वी.' – वे आये थे। वे कह रहे थे कि तुम भी कभी उनके यहां हो आयी हो। पता भी तुम से ही मालूम हुआ – बता रहे थे। वे कह रहे थे कि इसके अलावा तुम्हें और कोई बात नहीं मालूम है। उनके साथ उनकी मां भी आयी थी। बड़े ही अच्छे आदमी हैं...।" मैं पुस्तक बंद करके उठ बैठती हूं।

"ये वेंकु भाई उन्हें 'बदमाश' कहा करते थे, लेकिन जानती हो, वे कितने सज्जन हैं! जब मालूम हुआ कि वे ही इतने बड़े कहानी-लेखक हैं तो एक बड़ी भीड़ आ खड़ी हुई उन्हें घेरकर।

"ननद और भाभी में नहीं पटती है, इसलिए हम अलग अलग रहते हैं, यही उनकी धारणा है...। वे क्यों आये थे – यह तो तुमने पूछा ही नहीं !" मानो यह जानने की चेष्टा कर रही थी कि अब बात आगे बढ़ायी जाये या नहीं ? सिर उठाकर मेरे मुंह की ओर देखती है। मैं हंस पड़ती हूं।

33

सब कुछ जैसे मैंने सोचा था वैसे ही हुआ। लेकिन आर.के.वी. के वहां से चले जाने के बाद गणेश और मां में लड़ाई हो गयी। "सोच-विचार करके आपको अपने निर्णय से सूचित करेंगे। गंगा से भी पूछना है।" मां ने कुछ हीला-हवाला करके बात बनाकर आर.के.वी. को भेज दिया।

उनके चले जाने के बाद गणेश ने, पता नहीं क्या क्या कहते हुए मेरे बारे में गंदी बातें कहीं, "गंगा क्या इस योग्य रह गयी है कि एक मर्द से शादी करके ढंग से गृहस्थी चला सके ! उसके चरित्र के बारे में ये लोग नहीं जानते हैं, इसलिए विवाह का प्रस्ताव लेकर आये हैं। इस पर तुम एकदम फूलकर कुप्पा हो रही हो !" उसने ताना मारा। और भी कई बातें कहीं – जिनका मां कोई जवाब नहीं दे पायी। मुंह ही न खोल सकी। कुछ प्रतिवाद नहीं कर पायी। यह कहते समय मां की आंखों से झरझर कर आंसू बहने लगते हैं। मेरी ओर दयनीय ढंग से देखती है और याचना के स्वर में बोलती है :

"बेटी ! मेरी बात सुनो ! इस मामले में मेरी मान जाओ। यह जो कार वाला मुआ आता है, उसका स्नेह तुम्हें नहीं चाहिए। सुना है, शहर भर में लोग उसे बड़ा बदमाश कहते हैं। तुम क्यों ऐसी बदनामी मोल ले रही हो? इतने पर भी तुम्हारे साथ विवाह करने का प्रस्ताव लेकर कोई आ जायेगा – मैं ऐसी कतई उम्मीद नहीं कर रही थी। वह कहानी-लेखक उम्र में छोटे हैं, तो भी गुण में बड़े आदमी हैं । जिस ढंग से वे बोल रहे थे, मानो मेरे मन की एक एक शंका का उत्तर दे रहे हों। बैंगलूर वाले व्यक्ति का संबंध है यह। हमारे शहर के ये लोग तो पूरे शनीचर हैं। बैंगलूर वाले ऐसे नहीं है।" फिर मेरे निकट आकर स्वर धीमा करके बोलती है, "कहते हैं कि, बैंगलूर वाले ने कहा था, 'मेरी पत्नी मर गयी है। अब किसी अविवाहित कन्या से दुबारा शादी कर लेने को कहा जा रहा है ! जो आयेगी वह यही सोचेगी न कि यह आदमी एक औरत के साथ रह चुका है ! इसलिए कोई ऐसी लड़की जो बालपन में विधवा हो चुकी हो तो ज्यादा अच्छा है। ऐसी कई लड़कियां हैं।' ये कहानी-लेखक यह बात कहकर आगे कहने लगे – भले ही यह आदमी वैसी शादी के लिए तैयार हो जाये, लेकिन लड़कियों में कोई वैसा करने को तैयार नहीं होगी न ! मैं क्या करूं? इसलिए तुम कुछ चिंता न करो। मुझसे पूछा जाये तो कोई बात छिपाने की जरूरत नहीं है। सारी बातें कहकर ही इस संबंध को निश्चित किया जा

सकता है। किसी को धोखा देने वाली कोई बात नहीं है। धोखा खाने वाली बात भी नहीं है। मैं भी दो-तीन दिन तक सोचती रही। इससे उत्तम और कोई बात नहीं मालूम होती है। क्यों री, हंस रही है?"

ये लोग मेरे जीवन का जो फैसला कर रहे हैं, उस पर हंसने के सिवा और क्या किया जा सकता है? मैं इतने दिन से अविवाहित रही तो क्या इसलिए कि कोई मुझसे शादी करने को तैयार नहीं था? ये लोग वही सोच रहे हैं तो मुझे हंसी आती है। ये लोग कितनी आसानी से कह जाते हैं कि मैं सारा विगत भूल जाऊं – विगत से तात्पर्य उस कार में जो घटित हुआ वही नहीं, बल्कि उसके बाद – उस समय से लेकर आज सवेरे तक ये जो मुझे कार में लाकर उतारकर गये, यह भी है। ये चाहते हैं कि इन सभी घटनाओं को एकदम भुला दूं और किसी अजनबी व्यक्ति के साथ आत्मीय संबंध जोड़ लूं और उसके संग लगी सेवा करती रहूं। यह सोचते हुए कितनी घृणा होती है ! वह कैसे संभव है? अगर वह संभव हो तो यह भी संभव ही है कि गणेश जो कुछ मेरे बारे में कह रहा है वह सब सही होना चाहिए। इसका मतलब है कि वेंकुमामा जब मेरी ओर बढ़े थे तो मुझे 'न' नहीं कहना चाहिए था। बस में चलते समय जो भी ऊपर आकर टकराता, सट जाता, उससे दूर हट जाना नहीं चाहिए था। यह सोचकर कि टिकट देने वाले कंडक्टर की उंगली छू न जाये – मुझे संकोच का अनुभव नहीं होना चाहिए था। जो लोग मेरी मनःस्थिति जानते हैं वे ही यह भी जान सकेंगे कि मैं क्यों शादी नहीं कर सकती। मेरा मन जो इन सबको स्वीकार नहीं कर सका है, इस बैंगलूर वाले व्यक्ति को कैसे स्वीकार करेगा?

मुझे जो बात अत्यंत सरल और न्यायसंगत लग रही है, उसे ये लोग समझाये नहीं समझ पा रहे हैं।

मेरे मन को स्पष्ट ज्ञात हो रहा है। मैं यदि किसी भी मनुष्य को हृदय से स्वीकार कर लूंगी – उस संबंध को चाहे जो भी पवित्र नाम दूं – तो उसके बाद किसी भी प्रकार के निम्नकोटि के व्यभिचार के लिए मैं तैयार हो जाऊंगी। मैं क्यों इस प्रकार सोच रही हूं? क्योंकि जहां तक मेरा संबंध है, मेरे अंतःकरण में ज्ञात हो रहा है कि यह विवाह उसी प्रवृत्ति का आरंभ होगा। मुझे ऐसा डर लगता है। वरना मैं 'इन' से दूर नहीं रही होती, जो मेरे मन को सभी प्रकार से अच्छे लगते हैं। इनसे बढ़कर मेरे मन को अच्छा लगने वाला और कोई पुरुष नहीं हो सकता ! मैं धैर्य के साथ अपने मन में ही पहली बार दृढ़तापूर्वक कह देती हूं – हां, मैं इनसे प्रेम करती हूं। लेकिन यह 'प्रेम' दूसरे सारे प्रेम के समान निर्णयात्मक नहीं है। यह समाप्त होने वाला, उबा देने वाला प्रेम नहीं है। मैं किसी भी परिस्थिति में इन्हें खो देने, इनसे अलग होने को सहमत नहीं हो सकती। अगर ये मांगेंगे तो इनके लिए मैं सब कुछ दे सकती हूं – इस शरीर सहित। लेकिन ये स्वयं चाहें तो भी – इन्हें भुलाकर इनसे दूर हो जाने के लिए मैं कभी सहमत नहीं हो पाऊंगी। ये भी

मेरे मन को नहीं समझ पा रहे हैं। इसी पर मैं हंसती हूं।

ये सारी बातें किस प्रकार इस मां को स्पष्टतया समझायी जा सकती हैं?

"गणेश क्या कह रहा है – वह जाने दो। लेकिन हमारे मन की इच्छा इतनी अंधी नहीं होनी चाहिए कि हमारा विवेक ही भ्रष्ट हो जाये। तुम जैसा सोच रही हो, यह कुछ होने वाली बात नहीं है। इन सबके बारे में कल्पनाएं मत करो, लोगों का कहा सुनकर परेशान मत होओ।" मैं कहती हूं।

मुझे साफ मालूम हो रहा है, यह जवाब सुनकर मां का हृदय किस प्रकार तड़प उठा है। यह आगे कुछ भी कहेगी तो मैं गुस्से से पागल हो जाऊंगी।

मां आह भरती है। यह सोचती हुई कि अब आगे कुछ कहूंगी तो पता नहीं क्या परिणाम होगा, डरती हुई उठ ज़ाती है और भीतर चली जाती है।

मैं अपने हाथ में पकड़ी पुस्तक को पढ़ने लगती हूं।

रसोईघर में मां अपने आप ही कुछ बड़बड़ा रही है। मैं उस पर ध्यान नहीं देती हूं।

खाना परोसते समय फिर धीरे से बात छेड़ती है।

"तुम तो दो टूक बात कर मेरा मुंह बंद कर देती हो। तुम खूब विचार करके देखो। देखने वाले लोग तो मन में जो आये बक जाते हैं। मेरी तो यह कामना है कि तुम भी मान-प्रतिष्ठा के साथ रहो, इसीलिए कह रही हूं," यह कहकर आंचल से आंसू पोछ लेती है।

मैं चुपचाप खाना खा रही हूं। मन को दृढ़ बना लेती हूं कि अब गुस्सा करके मां को कुछ नहीं कहना। इस मामले में अगर मैं नाराज होऊं तो वह मेरी बलहीनता होगी। मैं अपने में स्वयं चंचल रहूं, दुविधा में पड़ी रहूं , आशंकित रहूं कि कहीं मैं स्वयं ऐसा निर्णय न कर बैठूं, तभी मुझे गुस्सा आयेगा। मैं किसलिए इस बात पर मां से नाराज होऊं? मैंने कुछ मजाक में ही तो आर.के.वी. को गणेश के यहां भेजा था। अब वह तमाशा देखकर रस लेना चाहिए। गुस्सा नहीं करना चाहिए।

मेरे मौन रहने का अर्थ असहमति है, इसे मां जान जाती है।

शाम को गणेश आयेगा। यहां आकर मेरे बारे में कुछ पूछेगा। इसका डर होता है। गणेश से बात किये कई साल गुजर गये हैं। अगर वह स्वयं आकर मुझसे कुछ पूछेगा तो क्या जवाब दूंगी? – कुछ नहीं सूझता है।

सवेरे से मैं सोचती रही, लेकिन इस संबंध में कोई निश्चय नहीं कर पायी कि गणेश से मैं क्या कहूंगी।

अब तो यह आ ही गया है और मां काफी लाने के लिए भीतर गयी है।

गणेश मां से पूछ रहा है, "गंगा क्या कह रही है?" इसके उत्तर में मां क्या कह रही

है, मुझे मालूम नहीं हो रहा है। शायद कुछ इशारा करके बता रही है। गणेश ऊंची आवाज में बोलता है जिससे मुझे भी सुनाई दे जाये, "हमारी तकदीर ही खराब थी। हमारे परिवार में जो नहीं होना चाहिए था, वह हो गया। इसके लिए क्या ऐसा हठ करना चाहिए कि और बिगड़ते जायें? जब बिगड़ने का समय आता है तब आगे-पीछे कुछ सोचे बिना ही आदमी बिगड़ जाता है। जब अच्छा बनने का समय आता है तब दुविधा में पड़े रहें, सोचते ही रह जायें? इसे दुर्भाग्य न कहा जाये तो और क्या कहा जाये?"

वह शायद सोच रहा है कि मैं इन सबका कुछ जवाब दूंगी। मैं चुप हूं। वह स्वयं कमरे के दरवाजे पर आकर खड़ा हो जाता है। मैं किताबें करीने से लगा रही हूं। मुझे मालूम होता है कि वह आकर खड़ा हो गया है। लेकिन जाने क्यों, मुड़कर देखना संभव नहीं हो रहा है। ऐसा लग रहा है कि उसे देखे कई वर्ष बीत गये हैं। यह कई बार यहां आया है, झगड़ा करके गया है – यह सब इस बात का प्रमाण है कि इसने मुझे देखा है, लेकिन मैंने इससे कभी आंखें नहीं मिलायीं। आंखें उठाकर न देखना और बात है ; मुंह मोड़ लेना और बात है। मैंने तो इससे मुंह ही मोड़ लिया है !

"अरी ओ गंगा !" इसके बुलाने का ढंग यही है। 'अरी ओ' कहते हुए। उसका अर्थ है – 'जरा सुनो तो।' उसके पुकारने पर भी न उसे देख सकी, न सुन सकी। वह स्वयं बोलता जा रहा है। शायद मुंह में पान-सुपारी भरी है। जब देखो, मुंह भरा रहता है। मैंने अभी इसे मुड़कर नहीं देखा है।

"तुम अपनी इच्छा के अनुसार रहो। यही सोचकर हम लोगों ने तुम्हें छोड़ दिया था। अभी तुम्हारी भलाई ही सोच रहा हूं। जो हुआ सो हुआ। अब इस बात पर भी तुम जिद्द करती रहोगी तो तुम्हारी जिंदगी ऐसी ही रह जायेगी और जगहंसाई होगी अलग से। तुम कोई छोटी बच्ची नहीं हो अब। मुझे पता है कि तुम्हारा स्वभाव कैसा है। हम यह जानते हुए कि तुम हम लोगों की परवाह नहीं करोगी, तुम्हारे पास आकर कह रहे हैं। यह आखिरी मौका है। तुम हम लोगों की बात अनसुनी करके इसे भी धता बता दोगी तो अब इस जन्म में तुम्हारा-हमारा संबंध नहीं रह जायेगा। मुझे क्या? जिसने तुम्हें जन्म देने का पाप किया, उस मां को ही मरते क्षण तक पीड़ा रहेगी, शांति नहीं मिलेगी। अरी ओ...मेरी बात समझ रही हो...?"

मैं उसकी ओर मुड़कर देखती हूं। कुछ बोलने को जी नहीं करता ! कैसे बोलूं – नहीं सूझता। मां शायद हाल में खड़ी है।

"नहीं।" मैं कहती हूं। गला भर आता है। क्या यह गणेश पहले की भांति ही अब भी मुझे मारेगा? एक विचित्र बचपने की सी कल्पना होती है।

"नहीं, अब इसके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।" मैं कहती हूं।

"हम लोगों ने भी कभी कल्पना नहीं की थी कि तुम्हारी शादी होगी। हम जो नहीं

सोचते, जो कल्पना नहीं करते, क्या ऐसी बातें कभी घटित नहीं होतीं? अगर तुम अपने जीवन को सुव्यवस्थित बना लेना चाहती हो तो उसके लिए यह आखिरी अवसर है। इसे तुम नहीं छोड़ सकतीं !" कुछ कठोर और अधिकारपूर्ण स्वर में वह कहता है।

इसे इस बात में ऐसी दिलचस्पी क्यों है? मां तो मुझ पर अपने स्नेह के कारण विकल हो रही है। इसे क्या है? यह तो मेरे बारे में सही और गलत सब प्रकार की बातें कहता रहता है और मेरी बदनामी करता रहता है। मैं सोचती हूं। अगर पूछना ही है तो तड़ाक से बात पर बात पूछी जा सकती है। लेकिन इससे कुछ पूछने की इच्छा नहीं हो रही है।

मैं स्वयं सोचती हूं। यह क्यों इस मामले में इतनी दिलचस्पी ले रहा है?

बेचारा ! अपनी बहन को घर से निकाल बाहर कर दिया। इसका इसे बड़ा पश्चाताप हो रहा है ! मुझे घर से निकाल बाहर किया तो इसका कोई पुष्ट आधार चाहिए था, जिसे लोगों को वह बता सके। इसीलिए अपनी सुविधा के लिए सही-गलत कुछ भी घड़कर मुझ पर दोषारोपण करता हुआ बदनामी करता रहा है।

"अगर यह संबंध नहीं चाहती हो तो – तुम्हें कार में बिठाकर घुमाता है न, वह 'प्रभु' – उसी से कह दो न कि तुम्हारे साथ वह विवाह कर ले ! देखेंगे, क्या होगा? अगर शादी की बात करोगी तो फिर वह तुम्हारी तरफ देखेगा भी नहीं, भाग खड़ा होगा। जानती हो...हां !" मुझे डरा रहा है।

"शादी के नाम से ही सब जायज हो जाता है क्या?" मुझे यह नहीं कहना चाहिए था। लेकिन मुंह से शब्द निकल ही गये। मैं जीभ काट लेती हूं।

"मां ! अरी मां ! तुमने सुन ली इसकी बात? पूछ रही है – शादी के नाम से ही सब जायज हो जाता है क्या?" वह चिल्ला रहा है। मैं मन ही मन हंस देती हूं।

"इसके साथ बेकार बहस क्यों कर रहे हो – वह जिद्द पकड़ लेती है तो बस एकदम अड़ जाती है। वह तो कुछ भी करने पर तुली हुई है। इसे जन्म देने का मैंने जो पाप किंया, उसी का दंड भोग रही हूं मैं। तुम किसलिए इसके मुंह लगते हो...सब भाग्य की विडंबना है। शहर भर जो कह रहा है, शायद वही सच है।" रोते हुए कहकर मां विलाप करने लगती है।

"मुझे किसी से भी शादी करने की इच्छा नहीं है। इसके लिए आप लोग क्यों परेशान हो रहे हैं? जब मेरी मर्जी नहीं है तो छोड़ क्यों नहीं देते इस बात को? आप लोग मेरी इतनी परवाह करते हैं – इस बात की मुझे खुशी है। बहुत धन्यवाद ! अब यहीं छोड़ो इस बात को।" हाल में आकर अखबार को मुंह के सामने रखे मां और गणेश को जवाब देती हूं।

"तुम विवाह नहीं करना चाहतीं – इस बात पर हमें परेशानी नहीं हो रही है। किसी की रखैल बन बैठी हो – इस बदनामी लेकर जो घूम रही हो, इस स्थिति को बदलना

है। इसीलिए इतना प्रयास कर रहे हैं।" दांत पीसकर गणेश चिल्लाता है।

मुंह के सामने से अखबार हटाकर मैं उसकी तरफ देखती हूं। हंसते हुए देखती हूं।

"ठीक ! वही कारण है कि मैं किसी से शादी नहीं कर सकती हूं। मैं बदनाम हो चुकी हूं। वे कहते हैं न कि अगर 'विधवा' होती तो भी कुछ बात थी। लेकिन ऐसी बदनाम औरत के साथ जीवन नहीं बिताया जा सकता। इस प्रकार का कोई संकट न आ पड़े, इसीलिए तो मैंने अपनी पसंद की एक जिंदगी ढूंढ़ ली है... उसे बदला नहीं जा सकता।"

"मुंह बंद करो !" गणेश चिल्लाता है। मैं चुप हो जाती हूं। "बेशरम ! इसे उचित ठहरा रही हो?"

'यही मेरे लिए उचित है,' मन में कहती हूं। जवाब नहीं देती हूं।

उसके बाद सब मौन रह जाते हैं। उन पर यह स्पष्ट हो गया है कि किसी भी प्रकार जबरदस्ती करके अपनी इच्छा से मुझे वे इस शादी के बंधन में नहीं बांध सकते।

जहां तक मेरा सवाल है, मैं यह कहे बिना ही कि 'अब इस मामले को खतम कर दो' चुपचाप छत पर चली जाती हूं।

छत पर खुली हवा में टहल रही हूं। सोचती हूं, टहलने के लिए चला जाये।

लगता है – गणेश चला गया है। मुझे प्रभु से मिलने की इच्छा हो रही है। सवेरे कहा होता तो अब तक आ जाते। अब तो कल सवेरे टहलने के वक्त ही मिल पायेंगे। यह विचार मन पर बोझ लाद जाता है।

अब मुझे इनकी जरूरत है। इन्हें देखूं, इनके पास बैठकर बात करती रहूं तो मेरा जीवन पूर्ण हो जायेगा। मुझे वही पर्याप्त है....

अब मैं ही टहलने जाऊंगी।

34

'टी.एस.गणेश – गंगा का भाई' कागज पर यही अंग्रेजी में लिखा है। प्रभु के दफ्तर के मैनेजर वह कागज लाकर प्रभु को देते हैं।

"आने को कहिए," अंग्रेजी में प्रभु कह देते हैं। अपनी टाई ठीक कर लेते हैं।

अपने दफ्तर में, बड़े अफसर के कमरे में जिस अदब के साथ घुसता होगा उसी अदब के साथ गणेश भीतर आ रहा है ; प्रभु देख रहा है। इससे पहले प्रभु ने गणेश को कभी नहीं देखा था।

गंगा ने प्रभु से कह रखा है कि उसका एक भाई है, जिसने उसे घर से निकाल दिया था। अब भी वह भाई गंगा की बदनामी करता फिरता है और कभी कभी उसके घर पर भी आकर गालियां सुनाकर जाता है।

गंगा ने भाई के संबंध में जब बताया था तो अपने प्रति उसके कोप और घृणा का वर्णन किया था। तब उस भाई का एक चित्र प्रभु के मन में अंकित हुआ था। उसमें और अब अपने सामने आकर खड़े हुए उस व्यक्ति में प्रभु बड़ा अंतर देख रहा है।

अब उसे अपने सामने पाकर प्रभु के मन में उसके प्रति दया का भाव उत्पन्न होता है।

प्रभु मन ही मन हिसाब लगाता है कि गंगा के भाई की आयु उसके बराबर ही होगी या उससे कुछ कम। ऐसा लगता है कि दरिद्रता और कमी की मार खाकर परिपक्व हो गया है। सिर पर आधे बाल सफेद हो गये हैं। गाल पान की पीक से भरे रहने के कारण पिचक गये हैं। ऊपर एक रंगीन शर्ट जो धुला हुआ है, लेकिन प्रेस न होने के कारण कालर सिकुड़ गये हैं। सफेद ड्रिल कपड़े की पैंट जो सिर्फ कमर में इस तरह कसी हुई है, जैसे घाघरा बांधा गया हो, टांगों पर ढीली-ढाली लटक रही है। हाथ में खाकी रंग का एक थैला। उसमें सिर बाहर किये पड़ा है आज का अंग्रेजी अखबार। थैले के एक किनारे पर टिफन बाक्स का बोझ लटक रहा है।

आते ही 'गुड मार्निंग सर' कहकर जैसे कोई मुनीम हो, प्रभु को नमस्कार करके एक किनारे खड़ा हो जाता है गणेश।

"प्लीज...सिट डाउन।" कहकर प्रभु एक कुर्सी की ओर इशारा करता है।

गणेश उस पर बड़े अदब के साथ दोनों टांगें सटाकर बैठ जाता है। अपना खाकी

थैला नीचे रखता है तो 'टंग' आवाज के साथ टिफिन बाक्स बज उठता है।

"आपके लिए मैं क्या मंगवाऊं—काफी, टी, कोल्ड ड्रिंक?" प्रभु बड़े आदर के साथ उसका सत्कार करता है।

"नो, थैंक्स...कुछ नहीं चाहिए।" गणेश बड़े विनय के साथ मना करता है।

"इट इज आल राइट। जस्ट ए कोल्ड ड्रिंक।" कहकर मेज के नीचे पांव से बटन दबाता है। बाहर घंटी बजती है, जिसकी आवाज अंदर तक आती है। एक चपरासी आता है। "कोल्ड ड्रिंक !" वह चला जाता है। प्रभु एक सिगरेट निकाल लेते हैं और उसे जलाने के पहले गणेश की ओर सिगरेट का पैकेट बढ़ाते हैं।

"नो, थैंक्स।" प्रभु सिगरेट फूंक रहा है। गणेश दुविधा में पड़ा है कि बात कहां से शुरू करे। कमरे में खामोशी छा जाती है। 'एयर कंडीशनर' की घर घर आवाज मौन की गंभीरता को और बढ़ा रही है।

प्रभु सिगरेट का कश खींचते हुए खांसने लगता है। कुछ ज्यादा खांसी हो जाने पर आंखों से पानी बहने लगता है। उसे रूमाल से पोंछते हुए कहता है, "क्षमा कीजिए, जुकाम है।"

"हर रोज सवेरे सवेरे ठंड में टहलने जाते हैं न?"

"अभी तो वैसे ठंड कोई ज्यादा नहीं है। लेकिन और एक महीना बीत जायेगा तो गर्दन पर मफलर लपेटे बिना टहलने नहीं जा सकेंगे।" प्रभु कहता है।

पौन फुट ऊंचे दो गिलासों में 'कोल्ड ड्रिंक' भरकर उनमें स्ट्रा रखकर चपरासी ले आता है और दोनों के सामने दो गोल रबड़ के टुकड़े रखकर उन पर गिलास रख देता है।

प्रभु गिलास उठाकर एक चुस्की लेता है और गणेश से अंग्रेजी में पूछता है, "आप कहां काम करते हैं?"

"रेलवे में।" मुस्कुराहट के साथ कहता है और गिलास से स्ट्रा को निकालकर वैसे ही पीने लगता है। फिर कलाई पर घड़ी को देखता है। मन में सोच लेता है कि आधे घंटे में जो कहना है सो कहकर अपने दफ्तर पहुंच जाना है। गणेश किसलिए आया है — इसका ख्याल किये बिना ही उसकी आय, परिवार, बच्चे, पढ़ाई, गृहस्थी का भार — आदि के बारे में, बिना किसी संबंध के अनाड़ीपन से भरी कल्पनाएं कर रहा है प्रभु।

"मैं यहां एक मतलब से आया हूं," गणेश जब यह कहता है तब प्रभु की समझ में आता है कि इसके आने का कोई उद्देश्य है।

"ओह ! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?" प्रभु अंग्रेजी में पूछता है।

गणेश भी अंग्रेजी में जवाब देता है, "अनेक वर्षों के बाद, आखिर अब मेरी बहन के लिए एक वर का निश्चय होने की संभावना है। मेरी मां भी यही चाहती है कि किसी प्रकार इस संबंध को पक्का कर लिया जाये। मगर इस विवाह का हो सकना तो आपके

ही हाथ में है।" प्रभु खुशी से मुक्त हंसी हंसते हैं।

वह अंग्रेजी में बोलते हैं, "अगर ऐसी बात है तो समझ लीजिए कि यह शादी हो चुकी है। आप सब की अपेक्षा मैं कहीं अधिक चाहता हूं कि यह शादी हो जाये। गंगा के जीवन में जो कटु अनुभव हुए हैं, उनके कारण उसे शादी से नफरत हो गयी है। आप लोग आगे की तैयारियां कीजिए। सब ठीक हो जायेगा। मेरी बेटी की शादी हो तो भी उसके बारे में मैं इस प्रकार की कल्पनाएं न करता। गंगा ने उस दिन यह बात बताई थी। तभी से मैं इस संबंध में सोच रहा हूं। आप जानते हैं, गंगा एक देवी है ? उसे बहन के रूप में आपने जो पाया है, इस पर आपको प्रसन्न होना चाहिए।" प्रभु की यह प्रशंसामय बात सुनकर गणेश को मन ही मन हंसी आती है। लेकिन उसके कहने से ऐसी शंका भी नहीं हो रही है कि यह झूठ हो।

प्रभु आगे कह रहा है, "जब से मैं उसका मित्र बना, तब से उसने मुझे कितना सुधार दिया है, आप नहीं जानते हैं। मेरे परिवार की वह मित्र बनी तो मेरी बेटी की किस किस ढंग से मदद की है, जानते हैं? इन सब बातों के बारे में बोलने, प्रशंसा करने के लिए मुझे कभी अवसर ही नहीं मिला। उसके भले के लिए मुझे कुछ भी करना पड़े, करूंगा। बताइये, मुझे क्या करना है?"

प्रभु के इस कथन में कितनी सच्चाई है – इस बात को गणेश यद्यपि नहीं समझ पा रहा है, तो भी गणेश इतना समझ लेता है कि यह एक भला आदमी है। इतना भला है कि उसके बारे में दूसरे लोग क्या सोच रहे हैं, यह भी उसे पता नहीं है। यह मैं जो सामने बैठा हूं, इसके बारे में क्या सोचता हूं, यह भी जाने बिना ऐसा विश्वास कर रहा है कि उसकी बात पर मैं विश्वास करूंगा।

गणेश मुस्कुराता है, जैसे उसके प्रति सहानुभूति दिखा रहा हो। फिर कहता है, "मैं कुछ कहूं तो आप बुरा नहीं मानेंगे न?"

"बिलकुल नहीं, कहिए।" प्रभु एक और सिगरेट जला लेता है।

"क्या आप जानते हैं कि आपके और मेरी बहन के बारे में लोग क्या बातें करते हैं? सच्चाई चाहे जो भी हो, सामान्यतया लोग क्या बातें करते हैं – यह आपको पता है?"

गणेश का यह प्रश्न सुनकर प्रभु सिगरेट का एक लंबा कश खींचकर आंखें बंद कर लेता है और सोचता है। जब आंखें खोलता है तो धुआं इतना फैला है कि सामने वाले का चेहरा नहीं दिखता। धुएं को हाथ हिलाकर हटाते हुए प्रभु बोलता है, "हां, मैं जानता हूं। मुझे खेद है ! आप जानते हैं...।" वह कुछ कहने जा रहा है। गणेश देखता है कि उसने प्रभु को दुखी कर दिया है और प्रभु उद्विग्न हो रहा है। फिर भी बीच में टोककर कहता है, "नहीं, नहीं, आप मुझे कोई सफाई न दीजिए। क्या हम अपनी लड़की के बारे में नहीं जानते हैं? मैं यही कहना चाहता हूं कि इतना कुछ होने के बाद भी एक व्यक्ति

इससे शादी करने को तैयार होकर आया है। उस आदमी के बारे में सोचने पर लगता है कि वह इस लड़की के भूतकाल के बारे में कोई चिंता नहीं करता है। वह चाहता था कि किसी विधवा से विवाह करता। अब आप ही सोचिए। लेकिन..." गणेश का मन आगे की बात कहने के लिए तैयार नहीं हुआ।

"हां...कहते जाइए..।" प्रभु उसकी ओर न देखकर एश-ट्रे में सिगरेट की राख झाड़ रहा है।

स्थिति इतनी नाजुक हो गयी है कि गणेश के कहे बिना ही उसके मन की बात प्रभु को मालूम हो रही है।

प्रभु सिर उठाकर गणेश की ओर देखकर कहता है, "क्या आप यह कहना चाहते हैं कि...?" जाने क्यों उसकी आंखें भर आती हैं। ऐसी आकुलता अनावश्यक है – इस विचार से उसकी आंखों में कुछ स्पष्टता भी झलक रही है। होंठ दबाकर मन की आकुलता को दूर करके शांत चित्त हो कहता है, "आप तो यही कहने आये थे न कि अगर मैं आपकी गंगा से मिलना बंद कर दूं तो यही उसकी शादी होने में मेरी सबसे बड़ी मदद होगी?" मुस्कुराता हुआ कहता है।

अभी पहली बार उसे महसूस हुआ कि 'आपकी गंगा' कहने की सीमा तक कह वह अलग हटने की इच्छा कर रहा है। गणेश को देखते हुए वह अपने मन में कह लेता है, 'हां, वह तो आपकी है ही।'

"क्योंकि..." गणेश कुछ कहने जा रहा है। लेकिन प्रभु बीच में टोककर कहता है, "नहीं ! नहीं ! अब और व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। मेरे कारण आपकी बहन की जो बदनामी हुई, वह काफी है। अपनी बहन को आप समझते हैं। लेकिन यह आशा नहीं की जा सकती कि उसी प्रकार वह आने वाला वर भी समझ सकेगा। अगर मैं आपकी जाति का व्यक्ति होता तो मेरा गंगा के साथ कोई भी रिश्ता बता दिया जा सकता था। लेकिन ऐसा नहीं है। इसलिए मेरा हट जाना ही ठीक है। गंगा ने मेरा साथ देकर मेरी जो सहायता की है, उसके बदले मेरा उससे दूर हटना ही उचित होगा। यह भी कैसी विडंबना है !

"इसमें मुझे जरा भी दुख नहीं है। मुझे तो गर्व का अनुभव हो रहा है। मैं एक और बात कहना चाहता हूं। हाल में कुछ दिनों से आपकी गंगा से सलाह किये बिना मैंने कोई निर्णय नहीं लिया है ! लेकिन इस मामले में उसकी सलाह लेना आवश्यक नहीं मानता हूं। इस संबंध में मेरी ओर से आप उसे समझा दीजिये। उससे कह दीजिये कि इस शादी की स्वीकृति देकर जब वह शादी का दिन निश्चित कर लेगी तभी मैं उससे मिलने आऊंगा। तब तक मैं यही विचार करता रहूंगा कि उसके विवाह में मुझे क्या उपहार देना चाहिए। यह बात भी उसे बता दीजिये। मुझे लगता है कि उसका जीवन आनंदमय रहेगा। हम उसके

लिए शुभकामना करें।" प्रभु उठकर गणेश से हाथ मिलाता है। फिर वह गणेश से कहता है, "उससे यह भी बता दीजिये कि अगर वह उस शादी के लिए स्वीकृति नहीं देगी तो मैं उससे अब कभी नहीं मिलूंगा।"

यह कहते हुए, प्रभु मुस्कुराता है।

गणेश आश्चर्य से स्तब्ध रह जाता है। उसने सोचा था कि प्रभु यह बात सुनकर कि गंगा से अब आगे कभी उसे नहीं मिलना है, नाराज होगा, और कह देगा 'जाकर अपनी बहन से कह लो, मुझसे बात मत करो। अब यहां से निकल जाओ।' ऐसी परिस्थिति के लिए अपने को उसने तैयार कर लिया था। लेकिन प्रभु का व्यवहार उसके बिलकुल विपरीत रहा। इससे गणेश को बड़ी प्रसन्नता हुई।

किसी व्यक्ति को भला पाकर हर किसी को प्रसन्नता होती है। गणेश का मन तड़प उठता है कि अपने परिवार के सब व्यक्तियों से अभी जाकर कहना चाह रहा था कि प्रभु कितना भला व्यक्ति है।

"सर ! आप तो बड़े भले व्यक्ति हैं। मैंने भी आपके बारे में गलत बातें कही हैं। इस पर मुझे शर्म आ रही है। क्षमा कर दीजिये। आप तो बहुत बड़े आदमी हैं। मैं बाद में आकर आपसे मिलूंगा।" गणेश अपना दिल खोलकर कहता है और वहां से चल पड़ता है।

प्रभु क्षण भर आंखें बंद करके प्रार्थना करता है कि गंगा का भविष्य आनंदमय हो।

बहुत बड़ा षड्यंत्र चल रहा है। पता नहीं कैसे प्रभु को भी इस षड्यंत्र का भागीदार बना डाला है इन लोगों ने? यह कमबख्त गणेश जाकर प्रभु से भी मिल आया। न जाने क्या कहा होगा? कैसे इनका मन बदल डाला? हाय...इनका मन तो बच्चे का सा है। कोई कुछ कहता है तो उस पर विश्वास कर लेते हैं। मुझे इनसे मिलना है...मिलना है...तीन दिनों से कोशिश की, लेकिन नहीं मिल सकी। जब कभी फोन करती हूं यही उत्तर मिलता है कि 'नहीं हैं।' घर में नहीं हैं। दफ्तर में नहीं हैं। इन कमबख्तों को इसमें क्या खुशी मिल रही है? प्रभु को मुझसे अलग कर दिया है ! क्या मैं अब इनसे मिल ही नहीं सकती हूं? मिले बिना कैसे रह पाऊंगी? मुझसे मिले बिना ये रह पायेंगे? मुझे अकेली कर दिया है। अब संसार में मेरा कोई नहीं रह गया है।

यह मां प्रभु की तारीफ करने लगी है। गणेश उनका बड़ा प्रशंसक हो गया है। कह रहा है कि अब प्रभु मुझसे मिलने कभी नहीं आयेंगे। यह जैसे सब कुछ जानता है। अगर गणेश और मां मेरा पिंड छोड़ दें और यहां से चले जायें तो वे आयेंगे। उस दिन मां ने कहा कि 'अगर मैं तुम्हारे यहां से गणेश के घर चली जाऊं तो गणेश की बहू थोड़े ही मान लेगी कि घर पर ताला पड़ा था, इसलिए मैं लौटकर चली गयी। वह तो यही कहेगी

कि तुमने मुझे यहां रहने नहीं दिया, भगा दिया और मैं भाग आयी।' ठीक है आज तो मैं जरूर भगा दूंगी। मेरी शांति और खुशी को मिटा देने का षड्यंत्र कर रहे हैं ये लोग! क्या मैं सब बरदाश्त करती रहूं? नहीं। विवाह कर लूं? वाह ! वाह ! सब मिलकर मेरा क्रियाकर्म कर दो !

मुझे गुस्सा आ रहा है। पता नहीं मैं इस गुस्से में किसे क्या कर डालूंगी या अपने को क्या कर लूंगी। इतना गुस्सा आ रहा है। इससे पहले कभी मुझे इतना गुस्सा नहीं आया।

प्रभु से मिले तीन दिन हो गये। टहलने गये तीन दिन हो गये। मुझे सोये तीन दिन हो गये। मुझे ठीक ठीक खाना खाये तीन दिन हो गये। दफ्तर का काम देखे तीन दिन हो गये। किसी तरह आज प्रभु से मिल ही लेना है — इस निश्चय के साथ मैं एक टैक्सी लेकर इनके घर जाती हूं। कई महीने के बाद इनके घर जा रही हूं।

टैक्सी में बैठे बैठे ही हैंडबैग से शीशा निकाल उसमें अपना मुंह देख लेती हूं। मुझे अपने से ही डर लगता है।

मुझे ध्यान नहीं है कि किस सड़क से होकर टैक्सी जा रही है। इनका बंगला आ गया। जो भी हो, तीन दिन के बाद आज मैं इनसे मिल लूंगी, इनकी कार सामने खड़ी है। मैं अपने मन को दृढ़ कर लेती हूं कि इन्हें देखने पर मुझे रो नहीं देना है। इनसे अनुरोध करना है कि अब कभी मुझे इस प्रकार न तड़पायें। टैक्सी वाले को पैसा देकर मैं तेजी से भीतर जाती हूं।

मंजु हाथ में कोई पुस्तक लिये लान में टहलती हुई पढ़ रही है। उसने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया है। जब उसकी दृष्टि मुझ पर पड़े तो मैं अपनी घबराहट को प्रकट न कर डालूं, इसलिए अपने को नारमल मूड में रखते हुए वहां पड़ी एक बेंत की कुर्सी पर बैठ जाती हूं। बैठते ही कहती हूं, "गुड मार्निंग, मंजु!" मुझे वहां पाकर उसे आश्चर्य होता है, खुशी भी होती है। दौड़कर आती है और मेरी बगल में बैठ जाती है।

"क्या आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है? वहुत दुबली हो गयी हैं। चेहरा काला पड़ गया और मुरझा गया है..आर यू नाट वेल?...पिताजी ने कुछ कहा ही नहीं।" मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर मंजु कहती है।

मैं सिर के बाल संवारती हुई मुस्कुराती हुई सी बोलती हूं, ''कोई बात नहीं है। कई दिन से हम एक-दूसरे से मिली नहीं न। इसलिए तुम्हें कुछ दुबली सी लग रही हूं।''

"क्या आपसे कहे बिना ही चले गये? बैंगलूर गये हैं न?...तीन दिन हुए।"

"आज आने की बात थी न? सोचा कि आ गये होंगे।" संभलकर सीधे बैठ जाती हूं।

"प्लेन तो ग्यारह बजे है।" मंजु पुस्तक के पन्ने पलटती है।

"काफी लाऊं? नाश्ता ?" वह पूछती है।

"मुझे कुछ नहीं चाहिए," मैं मंजु के बारे में सोचती हूं।

मुझे याद आता है – यह अभी उस सामजी के साथ घूमती रहती है। अपनी बात को छोड़कर मैं इन्हीं बातों में न उलझ जाऊं। इसलिए बात बदलते हुए कहती हूं, "बताओ, तुम्हारे सामजी का क्या हाल है?"

"हां, मैंने तो उसे 'गुडबाई' कह दिया है।"

"लेकिन मैंने तो सुना था कि अब भी तुम सामजी के साथ स्कूटर पर घूमती रहती हो – तुम्हारी मां को खबर न लग जाये।"

मंजु चारों तरफ नजर दौड़ाकर देख लेती है, फिर कहती है, "क्या पिता जी ने आपसे कुछ कहा था? उस दिन एक बार – सिर्फ एक दिन – हम दोनों साथ जा रहे थे तब पिताजी की कार हमें पार करती हुई निकल गयी। क्या वे मेरे बारे में बहुत चिंतित हैं? बात यह है कि मैंने जो कहा वह बहाना नहीं है। जहां तक मेरा संबंध है, मैंने जो कहा, वही सच है। लेकिन बेचारा वह सामजी है न – एकदम अनाड़ी है। उसने दाढ़ी बढ़ा ली और आकर रोने लगा, 'कल मेरा बर्थ डे है, अगर तुम नहीं आओगी तो मैं मनाऊंगा भी नहीं।' हां कहकर मैं पार्टी में गयी। वह बड़ा भला आदमी है।" जाने क्या क्या कहती रही मंजु।

मंजु की कई बातें मेरे कानों में पड़ीं ही नहीं। "मैंने तुम्हारे पिताजी से यही कहा था कि मंजु पर भरोसा किया जा सकता है, वह झूठ नहीं कह सकती।" कुछ बात चलाती हुई मैं कोई दस मिनट तक वहीं बैठी रही। इनसे न मिल पाने का दुख मन ही में छिपाये रखा और बात करती रही। फिर काफी पीकर वहां से चल दी।

आज लंच टाइम में टेलीफोन करना है। उनसे बात करनी ही है। मैं इनसे बात कर लूं तो मुझे इनसे अलग करने के लिए जो षड्यंत्र चल रहा है उसे तहस-नहस कर डालूंगी ...मेरी बात ये मानेंगे ! प्रभु मेरा आदमी है !

35

"हां ! प्रभु बोल रहा हूं।"

इनकी आवाज सुनते ही मेरी आंखें छलछला आती हैं। न जाने क्यों मैं रो पड़ती हूं। कंठ से ध्वनि नहीं निकल रही है ! अच्छा हुआ कि अब कार्यालय में कोई नहीं है। भोजन का वक्त है। मेरा विभाग खाली है। इतने ही में ये दो बार 'हलो, हलो' कह देते हैं। कहीं फोन रख न दें — इसलिए खंखारकर गला साफ कर लेती हूं। खंखारने से ये मुझे पहचान लेते हैं।

"गंगा ! क्या बात है? रो रही हो?" मैं आंखें पोंछ लेती हूं, "नहीं। मैं कहां रो रही हूं ? मैं अभी, इसी वक्त आपको मिलना चाहती हूं। मुझसे कहे बिना ही आप शहर से बाहर चले गये। सुना कि मेरा भाई गणेश आपसे मिला था। घर आकर जाने, क्या क्या कह रहा था वह ! कह रहा था, आपने कहा है कि अब आप कभी मुझसे नहीं मिलेंगे। मैंने विश्वास नहीं किया। उसकी नीयत खराब है। आपने वैसा नहीं कहा होगा। ऐसा ही है न? चुप क्यों हैं? बताइये, आपने वैसा नहीं कहा न? हलो...हलो...!"

ये चुप हैं। मेरे पेट में कुछ ज्वाला सी भड़क रही है। शायद इन्होंने वैसा कहा हो। कहा हो — तो क्या हो गया? उस वक्त उससे कुछ कहना था, इसलिए कह दिया होगा। गणेश ने प्रभु को ऐसा कहने के लिए मजबूर कर दिया होगा। प्रभु मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे।

"चुप क्यों हैं? कुछ बोलिये। आपकी आवाज सुनने के बाद अभी मुझे चैन मिला है। तीन दिन से मैं कितनी बेचैन रही, जानते हैं? हम न मिलें तो भी कोई बात नहीं है। कितने ही दिन हम एक-दूसरे को देखे बिना रहे हैं न ! हम फिर मिलेंगे — यही आशा तो रहती थी। लेकिन अब हमें कभी नहीं मिलना है, यह जानकर एक क्षण जीना भी दुर्लभ हो जायेगा। तो सवेरे मैं आपके घर दौड़ी गयी। जब मालूम हुआ कि आप शहर में नहीं हैं तो थोड़ी शांति मिली। मंजु से बात कर रही थी। क्या उसने बताया? उस सामजी के बारे में आपने बड़ी चिंता व्यक्त की थी न उस दिन? जैसे मैंने कहा था वही हुआ। मंजु से ही मैंने सीधा प्रश्न किया। उस दिन सामजी का जन्मदिन था। सामजी ने कह दिया था कि 'अगर मंजु नहीं आयेगी तो पार्टी नहीं होगी' और रो पड़ा था। इसलिए मंजु उस दिन सामजी की पार्टी में गयी थी। बस, इतना ही। उसी दिन वह आपकी नजर में पड़ गयी। क्यों?

मैं अपने बहाव में बोलती जा रही हूं न? आप तो चुपचाप बैठे हैं। कुछ तो बोलिये !"

अब ये खंखारते हैं। मैं जानबूझकर मजाक करती हूं, "क्या आप रो रहे हैं?" मैं मुस्कुराते हुए पूछती हूं। एक मौन ! हाय ! 'हां' कह रहे हैं न !

मेरी नजरों में इनका चेहरा घूम जाता है। ये बड़े दुखी हैं। इनका दिल टूट गया है।

"क्या बात है? कुछ तो कहिये। गणेश ने क्या आपसे कुछ झगड़ा किया था? आप किसलिए दुखी हैं?"

"नहीं, नहीं। वैसा कुछ नहीं हुआ। तुम्हारे भाई साहब आये थे और मुझसे मिले थे। मैने उनसे कहा – अगर तुम इस शादी के लिए सहमत हो जाओगी तो मैं तुमसे मिलूंगा। उन्होंने अपना विचार प्रकट किया कि अगर मैं तुम्हारे घर आता रहूंगा और तुमसे मिलता रहूंगा तो यह शादी रुक जायेगी। मुझे वह बात सही प्रतीत हुई। इसीलिए मैंने वैसा कहा। मेरे कारण क्या तुम्हारा जीवन बिगड़ता ही जाये? तुम्हीं बताओ। तुम उस शादी के लिए स्वीकृति दे दो। सब तैयारियां होने दो। फिर मैं आकर तुमसे मिलूंगा। हम मिलते ही रहेंगे तो तुम स्वयं कह दोगी – 'मुझे यह शादी नहीं करनी।' मुझे ऐसा लगता है। तुम बड़ी समझदार हो। मेरी बात को गुड स्पिरिट में समझ सकती हो।"

ये जाने क्या कह रहे हैं ! मुझे गुस्सा आ जाता है। रोना भी आ रहा है।

"स्टाप इट !" मैं चिल्ला उठती हूं। फिर रो पड़ती हूं। चुपचाप रो रही हूं। 'रोने दो', यह सोचकर ये उस तरफ पत्थर की तरह बैठे हैं। इनका साथ आवश्यक है, मेरे लिए यह बहुत जरूरी है। प्रभु नहीं समझ पा रहे हैं कि मेरे लिए उनका संग कितना आवश्यक है! यह सोचकर मेरा दिल डूबने लगता है। अचानक ये मेरे हाथ से निकले जा रहे हैं। अजनबी होते जा रहे हैं। मैंने कभी नहीं सोचा कि ये मुझसे दूर हो जायेंगे।

मैं कहती हूं, "मेरी शादी नहीं होगी। मैं किसी से विवाह नहीं करूंगी। आप पहले की तरह ही मुझसे मिला कीजिये। मेरे लिए वही काफी है।" मैं अनुरोध करती हूं, "मेरा अपना कोई नहीं है। भाई, मां या और किसी से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। न जाने, कब के सब रिश्ते छूट चुके हैं ! अब केवल आप ही मेरे अपने हैं। पहले एक बार आपने स्वयं ही कहा था – 'मैं आपकी हूं, आप मेरे हैं !' इस जिंदगी को ऐसे ही झटक दूं और कहीं अनजान देश में जाकर अजनबी लोगों के बीच रहने लगूं तो कितना अच्छा होगा ! वह एक नया जीवन होगा ! अगर आप मुझे अपने संग चलने को कहें तो मैं अभी, इसी क्षण, इन्हीं कपड़ों में, बिना किसी तैयारी के चल पड़ूंगी। हां, यह सत्य है ! हम आपस में एक-दूसरे को चाहते हैं। आर.के.वी. को गणेश का पता इसलिए दिया था कि मैं उन सबको बनाना चाहती थी। इस पर अब आप यों जिद करने लगे हैं। यह क्या उचित है? प्लीज ...प्लीज...मुझे आपसे अभी मिलना है...बहुत सी बातें करनी हैं...प्लीज...मीट मी।" मेरी आंखें से आंसू बह रहे हैं। ओह ! यह मेरी कैसी विषादपूर्ण स्थिति है ! मैं प्रभु से

विनती कर रही हूं ! अनुनय-विनय कर रही हूं। प्रभु आहें भर रहे हैं !

"गंगा !" कहकर पुकारते हैं। जब ये मुझे इस प्रकार पुकारते हैं तब कितना सुख मिलता है। ये इसी प्रकार हमेशा मुझे बुलाते रहें, मेरे लिए वह काफी है।

ये अंग्रेजी में कह रहे हैं कि मैं भावावेश में आकर कुछ कह रही हूं। मैं इनके साथ किसी भी रूप में आत्मीय संबंध नहीं रखती हूं। मैं एक गौरवशाली परिवार में पैदा हुई हूं, ऊंचे कुल की हूं। मेरा एक अच्छा पति हो, अच्छा जीवन हो, यही उचित है। वैसा होने में इन्होंने विघ्न डाला। उसी पाप के कारण ये दुख भोग रहे हैं। इन्हें डर लग रहा है कि इनका यह पाप कल इनकी बेटी को न सताने लगे। ये मुझे अपनी दूसरी बेटी मानते हैं। इनके साथ मेरा प्रेम उसी प्रकार है। और किसी प्रकार का प्रेम नहीं हो सकेगा... ये कह रहे हैं। समय कैसा बदल जाता है? मैं मन में व्यथित होती हूं।

ये दृढ़ता से कहते हैं, "हम एक-दूसरे के साथ पति-पत्नी जैसा प्रेम नहीं कर सकते। तुमने स्वयं ऐसी बात कही थी। याद है? वही सच है।"

हां ! मैंने ही इस प्रकार दृढ़तापूर्वक कहा था। कभी किसी संदर्भ में वह मेरे मुंह से निकला था, लेकिन झूठ बनकर निकला था। मैं उन बात्तों को एक एक करके स्मरण कर रही हूं।

पहले पहल जब मैंने इन्हें फोन करके बुलाया था, ये आये थे—कार समेत मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। तब ये क्या सोच रहे होंगे? इत्र की खुशबू, इनकी सजधज, इनका मेरी ओर देखने का ढंग--उस झुटपुट अंधेरे में प्रभु किस विचार से आये थे--यह मुझे साफ मालूम हो गया था। मैं सकपकाती रही। सोच नहीं पा रही थी कि मैं कैसे अपनी बात कह सकूंगी? इनके कारण मेरे जीवन में जो घटित हुआ, उसे कैसे जता पाऊंगी ? मैं उलझन में थी कि किस ढंग से इन्हें वे सारी बातें बताऊंगी, जो कि इस दीर्घ अवधि में, इनकी उस पहली आकस्मिक ढंग से हुई मुलाकात और बारह वर्ष बाद होने वाली इस मुलाकात के बीच घटित हुई हैं।

स्मृतियां उमड़ रही हैं — अस्तव्यस्त, क्रमहीन, उलझी हुई। कई कई घटनाएं, कई चेहरे, कई बातें, घर, होस्टल, भाई-बंधु, मित्र, अध्यापक, गाली-गलौज—सबकी स्मृतियां झुंड बांधकर एक साथ छा रही हैं। कानों में भंयकर प्रतिध्वनि हो रही है। मेरे बाहर, भीतर, चारों ओर गहन अंधकार सा व्याप्त हो रहा है। स्मृतियों के भार से मैं दब सी गयी हूं, मेरी आंखें बंद हो गयी हैं, मेरा सिर झुक रहा है। उस समय प्रभु ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर पूछा था 'क्या बात है?' अगर उस क्षण मैं मौन बैठी रहती तो हम दोनों के संबंध का एक दूसरा ही रूप हो गया होता। उस समय मैं झट 'छिः' कहती हुई जाग पड़ी। बेचारे! इनके हाथ-पांव कांप रहे थे। मैंने क्यों वैसा किया? उसके बाद भूलकर भी इन्होंने मुझे कभी नहीं छुआ।

उस दिन मैंने वैसा व्यवहार किया। क्या आज उसी का दंड मिल रहा है?

ये फोन पर बोल रहे हैं। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। मैं कई कई बातें सोच रही हूं।

मैं इस क्षण यह महसूस कर रही हूं कि इतने वर्षों से इनके और मेरी बीच जो झूठा पर्दा पड़ा था, वह हट गया है और मेरा मन इसलिए तड़प उठा है कि हम एक पुरुष और एक स्त्री के रूप में मिल जायें? क्या अब बहुत विलंब हो चुका है?

प्रभु कह रहे हैं कि मुझे कभी नहीं देखेंगे। अपने विवाह के निमंत्रण-पत्र के साथ जाऊं तभी मुझसे मिलेंगे। यह कैसा पागलपन है !

मैं चिल्लाती हूं, "मैं तो आपसे विवाह करूंगी। लेकिन आपकी जायदाद या हैसियत के लिए नहीं।" यह कहकर मैं हंसती हूं, "मुझे मालूम है कि वह सब मुझे मिल नहीं सकता। आपको केवल एक पुरुष के रूप में ही मैं जान गयी हूं। आपके साथ मेरा वैसा ही संपर्क हुआ। केवल पुरुष-संपर्क के लिए मैं आप से शादी कर लूंगी। अब आगे भी इसी प्रकार का व्यवहार करते हुए हम अपने आप को धोखा न दें।...आपसे मुझे लज्जा नहीं है। हम दोनों बांट लें – इसके लिए बिछा पड़ा है बिस्तर ! मैं अपने बिस्तर पर आपको स्थान दूंगी।" जैसे कान में बता रही होऊं, धीमी आवाज में फोन पर मैं यह बताती हूं। मेरी आंखों से धाराप्रवाह अश्रु बह रहे हैं।

''स्टाप दिस नानसेंस।'' कहकर ये झट फोन का रिसीवर रख देते हैं।

मैं वैसे ही मेज पर सिर झुकाकर दोनों हथेलियों में मुंह रखकर फूट फूटकर रोने लगती हूं। उंगलियों के बीच से आंसू बह रहे हैं।

आंसू – मन की मैल वाला पानी...। अचानक सोचती हूं – लंच के लिए जो स्टाफ के लोग गये थे, वे सब क्या आ गये हैं? किसी ने मुझे देख तो नहीं लिया? चेहरा पोंछ लेती हूं। सीट पर बैठी हुई मैं चारों तरफ नजर दौड़ाती हूं। अभी कोई नहीं आया है। समय नहीं हुआ है।

मैं दुबारा इन्हें फोन करती हूं।

"यस...!...प्रभु हियर।"

"मैं गंगा।" गला रुंध जाता है। थोड़ी देर का मौन।

"बताओ !" बड़े सूखे ढंग से बोलते हैं।

"मुझे जो कहना था, कह डाला।" कहीं रो न पड़ूं, इसलिए मन को कड़ा करती हूं।

"मैंने भी जो कहना था, कह दिया है।" ये आह भरते हैं।

"आपके बिना मुझसे नहीं रहा जायेगा।" छोटे बच्ची की तरह मचलती हूं। प्रभु बोलते हैं जैसे कोई आप अपने बच्चे की पीठ को थपथपा रहा हो, "रहकर देखो, रहा जाता है

या नहीं ? सब ठीक हो जायेगा।"

"आपसे हो सकेगा क्या?"

"मैं समझता हूं, हो सकेगा। हो सकना चाहिए।"

"किसलिए ऐसा सोच रहे हैं? ऐसा मत सोचिए।"

"गंगा !...अब मुझे संदेह हो रहा है, क्या सचमुच तुम्हीं बोल रही हो, तुम्हीं हो क्या? तुम्हें क्या हो गया? तुम्हें ऐसा नहीं होना चाहिए ! अगर मैं इतना दृढ़ चित्त हूं तो यह तुम्हारे कारण ही हुआ है। क्या तुम्हें इस प्रकार होना चाहिए? क्या यह उचित है...?" ये पूछ रहे हैं। मैं बीच में टोकती हूं, "मैं अपने आपको खो चुकी हूं। क्या यह आपको नहीं मालूम हो रहा है?"

"नहीं। तुमने अपने को नहीं खोया है। एक बार मैंने भी वैसा सोचा था। वह कितना गलत विचार था – यह मुझे स्पष्ट हो गया था। वैसा सोचने की मैं दूसरी बार गलती करने को तैयार नहीं हूं। तुम्हारे जैसी एक पवित्र देवी को ऐसा नहीं सोचना चाहिए। ऐसा कहने के लिए मुझे क्षमा कर दो, गंगा ! तुम विवाह के इस प्रस्ताव को या और किसी दूसरे के प्रस्ताव को स्वीकार कर लो। तब एक दूसरे पुरुष की पत्नी बनकर उस स्थिति के अनुकूल मुझसे मिल सकती हो। यह शादी तभी संभव होगी जब मैं तुमसे मिलना बंद कर दूं। यह ज्ञान और बल तुमने मुझे दिया – इसके लिए तुम्हारे प्रति मैं कृतज्ञ हूं। दुबारा उसी को दृढ़ता से कह रहा हूं। मैंने तुम्हारी सब सलाहें मानी हैं। तुम केवल मेरी एक प्रार्थना सुन लो। अगर तुम इसे नहीं मानोगी, जिद करोगी तो हम दोनों का संबंध हमेशा के लिए टूट जायेगा। इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। भगवान तुम्हें आशीर्वाद दें।" मेरे मस्तिष्क के भीतर मानो ज्वालामुखी फट रहा है। टेलीफोन का रिसीवर फटाक से रख देती हूं और अपने आप कह लेती हूं, "गुड बाय !"

मेरा सिर चकरा रहा है। अब रोना नहीं आ रहा है। सब सूना लग रहा है। मस्तिष्क में कोई विचार नहीं उठ रहा है। मेरी सारी चिंताएं मानो टूट-फूटकर बिखर गयी हैं। मैं अपने आपको एक नया व्यक्ति महसूस कर रही हूं। मैं स्वयं अपने लिए अजनबी हो गयी हूं। अपने चारों तरफ के इस जगत के साथ मेरा कोई संबंध नहीं है, मेरे लिए इस जगत का कोई अर्थ नहीं है। मेरे अस्तित्व का कोई मतलब नहीं है। लगता है, मैं सजीव ही मृत हूं।

मेज पर पड़ी फाइल निकालकर पलटती हूं। सब पर धड़ाधड़ हस्ताक्षर करती हूं। गला सूखा जा रहा है। रंगसामी गिलास में पानी रख गया है, जिस पर प्लास्टिक का ढक्कन है। उसे उठाकर ठंडा पानी गटगट पी जाती हूं। थोड़ा आराम महसूस होता है।

चुपचाप छुट्टी का आवेदन देकर जाऊं तो क्या होगा? बेहोशी सी हो रही है। घर में

जाकर सो जाना चाहती हूं। लेट जाऊंगी तो नींद आ जायेगी। मैं उठकर चल पड़ती हूं।

यह काम ऐसा ही पड़ा रहने दो। जो जैसा है, वैसा ही पड़ा रहे। मैं चल पड़ी। रंगसामी आता है। उससे कहती हूं, "कह देना कि मेरी तबीयत खराब हो गयी थी और मैं घर चली गयी।" वह जाता है। उसे फिर बुलाती हूं, "टैक्सी बुला देना।"

वह भी मेरे साथ लिफ्ट में नीचे आता है। बार बार मेरे चेहरे की ओर देखता है। उसका मन मुझसे यह पूछना चाहता है कि मुझे क्या हो गया है? किसी डर के मारे वह चुप है।

नीचे आते ही "यहीं ठहरिये" कहकर रंगसामी टैक्सी लाने दौड़ता है। सामने से मिसेज मैनुएल सिगरेट फूंकती हुई आ रही है।

"गोइंग होम?" वह पूछती है।

"यस।" सिगरेट की महक मुझे इनकी याद दिलाती है।

"नाट फीलिंग वेल?"

फिर 'यस' कहती हूं।

टैक्सी आ गयी है। मिसेज मैनुएल की तरफ हाथ हिलाकर मैं चल पड़ती हूं। माउंट रोड पर कार जा रही है। मैं आंखें बंद किये कल्पना करती हूं, जैसे मैं इनके संग जा रही हूं। बगल में वे ही बैठे चला रहे हैं। आज टेलीफोन पर जो बात हुई, वह सारा स्वप्न मात्र है।

घर आती हूं। मां हाल में नीचे धरती पर, स्वच्छंदतापूर्वक चित लेटी हुई कोई पुस्तक पढ़ रही है। मेरे आने की आहट पाकर मां हड़बड़ाकर उठ जाती है और मेरी ओर देखती है। वह कुछ पूछना चाहती है। इतने में मैं सीधे अपने कमरे के भीतर जाकर किवाड़ भेड़ लेती हूं। हैंडबैग एक ओर फेंकती हूं। वह कहां जाकर गिरा, यह भी नहीं देखती हूं। फटाफट साड़ी उतारकर फेंक देती हूं। पलंग पर जाकर धड़ाम से गिर जाती हूं। सारा बदन टूट रहा है। खूब करवटें बदल बदलकर लेटती हूं। बेड पर टांगें रगड़ती हूं।

मैं अभी बाहर निकलूंगी – इस प्रतीक्षा में काफी देर तक मां खड़ी रही, फिर किवाड़ के पास आकर कुछ पूछ रही है।

"क्यों बेटी, क्या तबीयत बिगड़ गयी है? आज तो शनीचर भी नहीं है? आफिस से छुट्टी लेकर आयी हो? किवाड़ खोल दो न। काफी बना दूं क्या?"

मैं कुछ जवाब नहीं देती हूं। बिस्तर पर उठ बैठती हूं। मेरे जवाब की थोड़ी देर प्रतीक्षा करके मां फिर बोलती है, "जाने क्या है? मुंह खोलकर बोलो, तभी न पता चले। यों कमरे में जाकर किवाड़ बंद कर लोगी तो मैं कैसे जानूंगी? दही-भात ले गयी थी, खाया कि नहीं?"

मैं इसका भी जवाब नहीं देती हूं। जवाब नहीं निकलता है। मुंह खोलने पर पता नहीं क्या बोल जाऊंगी – ऐसा डर है। अचानक इनके मिनी बार पर मेरी नजर पड़ती है।

जाने क्यों मेरी आंखें छलछला उठती हैं। उस दिन जब आये थे, तब रखकर जो गये कि...

वह 'केस' उठाकर पलंग पर रखकर खोलती हूं। पौनी बोतल 'व्हिस्की' जैसी की तैसी पड़ी है। दोनों ओर दो सुंदर गिलास हैं। उस बोतल को हाथ में लेकर देखती हूं।

उस दिन मैंने जो कहा था 'इसे पीने का अवसर न ही आये।' वह बात याद कर लेती हूं। क्या अब वैसा अवसर आ गया है?

बोतल को खोलती हूं। यह पीला द्रव कैसा महक रहा है ! जिज्ञासापूर्वक सूंघ लेती हूं। फिर गिलास निकालकर धड़ाधड़ उसका पौना हिस्सा भर लेती हूं। एक हाथ में बोतल, दूसरे में गिलास। बगैर साड़ी पहने पेटीकोट में मैं खड़ी हूं। सामने लगे शीशे में अपनी यह सूरत दिख रही है। देख रही हूं। अब तक जो गंगा थी, उसके प्रति मेरी गुडबाई को बहुत देर हो गयी।

जैसे दवा पीते हैं, वैसे एक ही एक सांस में... हाय ! गले में, पेट में, आंतों में, दिल में जलन हो उठी है..! जलने दो !

बाद की कथा

क्या से क्या हो गया ! गंगा के जीवन में ऐसा नया तो कुछ नहीं घटित हुआ जो इससे पूर्व न हुआ हो। लेकिन जो घटित नहीं हो सका, उसे याद करके गंगा अपने को दंड देने लगी है। अपने को घेरे हुए बंधु-बांधवों पर बैर निकालने लगी है। किसी पर भी उतना बैर निकालने लगी है जितना और कोई न निकाल सकता हो। जैसे वह क्रोध की ज्वाला में जल जायेगी ! उस पर जैसे एक पागलपन सवार हो गया है। बस, एक ही चिंता रहती है— इसका क्या समाधान है, क्या किया जाये, कैसे बैर निकाला जाये ? एकांत में, भौंहें सिकोड़ती है, आंखें फाड़ फाड़कर देखती है। दांत पीसती है।

उसका चेहरा काफी बदल गया है। गंगा अब गंगा नहीं रही। उसका चेहरा ही नहीं, उसकी बातें, उसकी दृष्टि – दफ्तर में हो या बाहर टैक्सी स्टैंड पर – उसके व्यवहार करने का ढंग इतना बदल गया है कि वह अब पुरानी गंगा नहीं रह गयी है।

रंगसामी – वही है। दफ्तर में काम करने वाली महिलाओं को कैसा आचरण करना चाहिए – इस बात में वह गंगा का उदाहरण दिया करता था। अब वह भी गंगा के परिवर्तन के कारण उसकी निंदा करने लगा है।

मिसेज मैनुएल और गंगा एक अलग कमरे में बैठकर बड़ी देर से बातें कर रही हैं – लंच आवर में। आजकल यह हर रोज की घटना हो गयी है। मिसेज मैनुएल के कमरे में एक घंटे से ज्यादा समय से गंगा बैठी है। सब लोग जानते हैं कि मिसेज मैनुएल सिगरेट पीती है। गंगा भी उसके साथ मिलकर सिगरेट पीने लगी है – यह पहले पहल रंगसामी ने ही देखा था। अब वह बात दफ्तर भर में फैल गयी है। मिसेज मैनुएल के जैसे ही गंगा के होंठ भी नीले पड़ गये हैं।

कभी कभी तो गंगा इस प्रकार खांसने लगती है कि सारा दफ्तर गूंज जाता है। उसकी मेज पर रंगसामी गिलास में पानी भरकर रख दिया करता था। बरसों से यह आदत चल रही थी। लेकिन गंगा कभी उसे पीती नहीं थी। आजकल गंगा खांसी आने पर वह पानी लेती है और दिन में दो-तीन बार पानी के लिए घंटी बजाकर रंगसामी को बुलाती है। वह भी जैसे औरों को कोसता रहता है, वैसे ही गंगा को भी कोसने लगा है।

मिसेज मैनुएल और गंगा कभी कभी सिनेमा देखने जाती हैं। मिसेज मैनुएल के घर भी वह अक्सर जाया करती है। मैनुएल दंपति, कभी कभी किसी सुहावनी शाम में गंगा

के घर आते हैं और उसे विकृत रात्रि में बदल देते हैं। फिर झूमते, ऊंघते हुए अपनी हालत का जगत भर में ढिंढोरा पीटते हुए निकलते हैं और अपनी मोटर-साइकिल स्टार्ट करके चले जाते हैं।

पिछले हफ्ते मिस्टर मैनुएल के जन्मदिन की पार्टी में गंगा सम्मिलित हुई और आधी रात को घर लौटी। घर पहुंचकर टैक्सी वाले के साथ उसने झगड़ा किया और गली के लोग इकट्ठे हो गये। तब टैक्सी ड्राइवर ने गंगा की वास्तविक दशा को सब लोगों के सामने सिनेमा-चित्र बनाकर प्रदर्शित किया और काव्यात्मक शब्दों में व्याख्या की। गंगा ने उसके मुंह पर दस रुपये का नोट फेंका और उसके जाने के बाद लगभग दस मिनट तक वहीं खड़ी खड़ी इस विषय पर व्याख्यान देती रही कि किस प्रकार उस मोहल्ले के अड़ोस-पड़ोस के लोग शांतिप्रिय नागरिकों के निजी जीवन में झांकने की चेष्टा करते रहते हैं, किस प्रकार दूसरों के कार्यों में अत्यधिक रुचि लेते हैं और किस प्रकार अपने आचरण द्वारा संसार के सामने विलक्षण आदर्श प्रस्तुत करते रहते हैं।

उस गली में दिन के समय कई बार ऐसे दृश्य दिखाई पड़ने लगे हैं। पंचवटी के आसपास की बस्तियों की औरतें मजदूरी करके जीविका कमाती हैं। उनकी विचित्र तमिल शैली जीवन की विविध अनुभूतियां व्यक्त करती है। उन औरतों के शब्द सुनने से और उनको देखने मात्र से मोहल्ले के रहने वाले त्रस्त हो जाते हैं। जब इस अंग्रेजी में बोलने वाली गंगा के मुंह से अंग्रेजी की गालियां झड़ी बांधकर बरसती हैं तो मोहल्ले के लोगों का संत्रास क्यों न बढ़े?

जब उस टैक्सी वाले ने लोगों के सामने यह प्रकट किया कि गंगा नशे में है तो वह भला सत्य कैसे हो सकता था? गंगा के पास तो शराब पीने का 'परमिट' है ! उसने ऊंची आवाज में घोषणा की, कि वह शराव पी सकती है। उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। वह चार संख्या वाला वेतन पाती है। अतः लोगों को चाहिए कि गंगा के प्रभावी व्यक्तित्व को समझ लें।

उस घटना के बाद ही गंगा ने निश्चय किया कि उसे पीने के लिए परमिट हासिल कर लेना चाहिए। मिसेज मैनुएल ने उसे हासिल करने में सहयोग किया।

जहां तक गंगा का संबंध है, उसकी मां, उसका भाई, उसके भाई का परिवार, प्रभु, मंजु— सब कल की बात हो चुके हैं। वह उनका स्मरण तक नहीं करती है। अगर भूल से उनकी याद आ जाती है तो अपने आप से नफरत करने लगती है।

छोटी छोटी बातों के लिए भी वह आजकल इस प्रकार चिल्लाने लगती है जैसे शहर भर के लोगों से न्याय मांग रही हो। दूध वाले से, सब्जी बेचने वाले से, अखबार वाले से रोज किसी न किसी से उलझती है, जैसे उलझने का नियम बना रखा हो ! और इस तरह गली के रहने वालों को अपने अस्तित्व की सूचना देती रहती है। जब वह नहीं चिल्लाती

है तब उसका वह ट्रांजिस्टर दुनिया भर के पता नहीं कौन कौन से सिनेमा गीत बजाता रहता है। अर्थात वह आजकल बड़े 'आनंद' में रहती है !

अब भी उसकी मां कभी कभी आ जाती है और उसे शाप दे जाती है। पिछले हफ्ते भी आयी थी। प्रतिमास वेतन पाते ही गंगा रंगसामी के हाथ सौ रुपये भेज देती है, लेकिन इस बार किसी कारण से भूल गयी। जहां तक कनकम का सवाल था, यह एक बड़ी बात थी। एक हफ्ते तक प्रतीक्षा करने के बाद गंगा के साथ झगड़ा करने क़ी तैयारी करके वह आयी थी।

उस दिन गंगा ने दफ्तर से छुट्टी ले ली और अपनी मां से लड़ रही थी।

वह कहती है कि वह मां को पैसा नहीं दे सकती है। जब उसका बेटा कमाता है तो हर महीने उसके पास आकर पैसा क्यों मांगती है? लज्जा नहीं आती? अगर पैसा चाहिए तो बड़ी विनम्रता से मांगना चाहिए, उस पर हुक्म चलाकर नहीं। उस पर कोई अधिकार नहीं दिखा सकता।

"अब कभी मेरे सामने मत आना। पैसा तुम्हारे मुंह पर पटक दिया जायेगा।" कहकर गंगा ने उस दिन सौ के बदले हजार रुपये उठाकर फेंककर पूरे हाल में बिखेर दिये।

कनकम अपने पेट, छाती, मुंह को पीटती, रोती हुई, भिखारिन के समान रुपये बीन रही थी। फिर रोते, कलपते, शाप देते हुए वह वहां से चली गयी। जाते समय उस गली में तमाशा देखने के लिए इकट्ठी हुई आसपास की स्त्रियों से अपनी बेटी के आचरण को बता बताकर रोने लगी।

वह कह रही थी, "नमक भरे मटके जैसी वह गल रही है। गली के लोगों को चाहिए कि उसे वहां से भगा दें। उसके घमंड को मनुष्य चाहे न मिटा सके, लेकिन भगवान जरूर मिटायेगा !" कनकम के चले जाने के बाद भी उस गली के लोग घर से बाहर आने में डर रहे थे। लगता था, गंगा की मां के दिये हुए शाप घूम घूमकर वहीं मंडरा रहे हैं !

लेकिन गंगा उस गली में अपना सिर उठाकर चलती थी। अपने कंधे पर हैंडबैग लटकाए, आधी पीठ नंगी करके, खिसकते हुए आंचल के साथ जब वह फर्राटे के साथ आती, तब उसे देखकर वहां के निवासी मन ही मन घृणा से भर जाते और थूकते थे। उस गली के नौजवानों ने गंगा का नाम रख दिया – 'नाचती घोड़ी'। लेकिन उसे देखकर हर एक डरता है। गंगा भी, चाहे कोई भी हो उसके साथ युद्ध करने के लिए लड़ाई का झंडा फहराये तैयार रहती है।

दिन भर शहर में घूमती रहती है। फिर भी, सवेरे-शाम वह टहलने जाती है। अगर सवेरे न जा पाये तो भी शाम को जरूर जाती है। कभी कभी शाम को जाकर आधी रात को लौटती है।

स्पर्टांग रोड पर घना अंधेरा है। दूर से एक बस आ रही है। ऐसा लगता है जैसे कोई मकान हिलता-डुलता चला जा रहा हो। सड़क की बत्तियां जलने का वक्त हो गया है। लेकिन कारपोरेशन के प्रशासन की अव्यवस्था के कारण सड़क के कई खंभों पर बत्तियां नहीं जल रही हैं। वृक्षों से घिरी उस सड़क पर बत्तियां जहां-तहां जल भी रही हों तो भी उनके आसपास अंधेरा छाया रहता है।

गंगा टहलती हुई जा रही है। उसके पीछे से उस पर रोशनी फेंकते हुए, एक छोटी कार आ रही है। वह घूमकर देखती है। वह ऐसे लग रही थी जैसे कार वाले से कह रही हो कि मुझे देखो और मेरी सूरत का चित्र खींच लो। कार की तेजी मंद पड़ जाती है, फिर वह धीरे धीरे गंगा को पार करती हुई निकल जाती है। वह कार कुछ ही कदम आगे बढ़ी होगी कि इतने में इसके भीतर से सिगरेट का जलता टुकड़ा बाहर गिरता है जिससे चिनगारियां हवा में उड़कर बिखरती हैं, मानो गंगा को कोई संदेश दे रही हों। सिगरेट का जलता टुकड़ा लुढ़कता हुआ गंगा के पैर तले आता है और वह उसे पैर से रौंदकर खड़ी रहती है। खड़ी खड़ी किसी व्यथा के साथ देखती रहती है। वह कार दायीं ओर मुड़कर कासा मेजर रोड पर जाने को होती है, लेकिन तभी जैसे परिक्रमा करती हुई दुबारा स्पर्टांग रोड पर लौटकर गंगा के सामने आ जाती है।

गंगा जो अब तक सिगरेट को रौंदते हुए, खड़ी खड़ी कार की तरफ देख रही थी, अब फिर चल पड़ती है। सामने से वही कार उस पर रोशनी फेंकते हुए धीरे धीरे आती है और उसे पार कर जाती है। रोशनी से गंगा की आंखें चुंधियाती हैं, वह आंखें बंद करके खिलखिलाकर अदा के साथ हंस पड़ती है।

थोड़ी देर पहले सिगरेट का टुकड़ा कोई संदेश दे रहा था। अब उसके जवाब में यह हंसी कोई संदेश दे रही थी।

अपने को जो पार कर गयी थी उस कार की तरफ गंगा ने मुड़कर नहीं देखा। लेकिन वह कार दुबारा लौटकर आयेगी ही।

उस कल्पना में, उस चिंतन में, उस उल्लास में वह जैसे हवा पर उड़ती चल रही थी।

अब तो उसके बारे में लोग कई तरह की बातें करते हैं। वह भी सबके साथ बहुत बातें करती है। उसे हाल ही में पदोन्नति मिली है। उसे आफिस ले जाने और घर ले आने के लिए आफिस की कार आती है। कभी कभी उसमें अन्य आफिसर भी आते हैं। उन्हें गंगा के यहां पार्टी दी जाती है।

सामने वाले घर की ऊपरवाली मंजिल में, अगल-बगल के घरों की खिड़कियों से, सब तमाशा देखते रहते हैं।

गंगा के घर की छत पर खुली हवा में बैठे हुए लोगों की शक्लें नहीं दिखाई देती हैं। लेकिन कुछ हाथ ऊपर की ओर उठ जाते हैं जिनमें शराब के गिलास हैं और 'चियर्स' की

ध्वनि कानों में पड़ती है।

देखने वाले यह दृश्य देखते हैं, यह आवाज सुनते हैं। उस गली में अब अक्सर ऐसा होता है।

गणेश कभी प्रभु से मुलाकात करता है। गंगा की काफी शिकायतें करता है। सारी बातें सुनते हुए मौन रहकर सिगरेट फूंकते हुए, प्रभु यों बैठा रहता है जैसे कोई बहुत पुरानी करुण कहानी सुन रहा हो।

प्रभु का जी करता है कि गंगा से मिले, बात करे। लेकिन उसके जीवन में दखल देने में उसे अब डर लगता है। उस टेलीफोन वाली बात के बाद तो वह गंगा से भय खाने लगा है – बिलकुल उसी तरह जैसे कभी गंगा रेप हो जाने का भय खाती थी।

प्रभु को गंगा पर क्रोध भी है कि उसके अनुरोध को मानकर गंगा ने अपने जीवन को व्यवस्थित क्यों नहीं किया।

प्रभु जितनी लड़कियों से, स्त्रियों से मिला है, उनमें से गंगा एक पृथक व्यक्तित्व रखती थी। इसी कारण उसके साथ देने पर प्रभु को एक प्रकार का अपराध-बोध, सहानुभूति, आदर, अपने लक्ष्यहीन जीवन का संबल, अपनी कमजोरियों पर एक अंकुश तथा बल – ये सब अनुभव होते थे। लेकिन अब गंगा का स्वभाव प्रभु के लिए आधार नहीं रहा। वह आधार ढह गया है। अब गंगा ने जो रूप धारण कर लिया है, उस तरह की पूरी दुनिया को प्रभु ने देख ही रखा है। उसमें वह खूब डूबा भी रहा है।

अब प्रभु को जो दुख है, वह इसलिए नहीं है कि जो आदर करने योग्य थी, प्रेम और श्रद्धा का पात्र थी, ऐसी एक नारी मिट गयी है। बल्कि प्रभु यह सोचकर दुखी होता है कि वे सारी स्त्रियां जिनके प्रति प्रभु ने घृणित ढंग से, निम्न मनोवृत्ति के साथ व्यवहार किया था, वे सभी किसी समय ऐसे ही आदर, प्रेम और श्रद्धा की पात्र बनी रही होंगी। इस विचार से उसे लगता है कि उसने जो खो दिया है, वह एक संसार जितना विशाल है।

गंगा जब औरों की तरह बन गयी तो प्रभु के लिए सब एक समान हो गया। कभी वह सोचता कि जितना आदर और प्रेम गंगा के प्रति उसने दिखाया, उतना और किसी स्त्री के प्रति दिखाता तो शायद वह स्त्री उसी दिशा में पहुंच जाती, जिसमें पहले गंगा थी।

प्रभु को अब जीवन एक उलझन सा लगता है। वह बार बार मंजु के बारे में विचार करके चिंतित होता है। उसका किसी पर विश्वास नहीं रह गया। गंगा ने जो उसका विश्वास तोड़ा तो उसके बाद उसकी नजर में पद्मा एक देवी के समान हो गयी। प्रभु अब पद्मा और मंजु के संग रहने में सुरक्षा महसूस करता है।

परिवार और अपने कारोबार के सिवा अन्य सारे बाहरी कार्य प्रभु ने छोड़ दिये हैं। अब वह अपनी ही छाया में आकर समा गया है – इस बात पर पद्मा को बड़ी प्रसन्नता

है। प्रभु तो आजकल पहले जैसे कपड़े भी नहीं पहनता है।

पद्मा जैसा चाहती है, प्रभु उसी ढंग से दफ्तर जाता है, घर आता है, घर में ही एकांत में बैठकर पीता है। आधुनिक ढंग से ट्रिम की गयी उसकी दाढ़ी कुछ दिन से ध्यान न दिये जाने के कारण बढ़ गयी है। उसमें कालेपन के बीच में पके बाल चमकने लगे हैं। वह चमक उसकी परिपक्वता, अनुभव और पूर्णता का ही नहीं, बल्कि जीवन के प्रति उसकी विरक्ति का भी संकेत दे रही है। वह अब जी रहा है, केवल आदतन, जैसे कि शराब का पीना होता है।

प्रभु अक्सर अपने पिता की याद करता है जो उसके बिगड़े आचरण पर आंसू बहाते थे और मरते समय रो रहे थे। उसी प्रकार अपने बच्चों के बिगड़ जाने पर उसे रोना न पड़े, इसके लिए वह अपने को तैयार करने में लगा है।

लेकिन उसकी धारणा है कि सब लोग निश्चय ही बिगड़ जायेंगे। उसका प्रमाण तो स्वयं गंगा है। इस पर वह प्रायः आह भर उठता है।

बालकनी में बत्ती मंद प्रकाश फेंक रही है। मंजु अपने कमरे में बैठी पढ़ रही है। नौकर, प्रभु के पीने के वक्त खाने के लिए तरह तरह की भुनी-तली चीजें लेकर दूसरी मंजिल पर आते हैं। प्रभु के बगल में पद्मा एक कुर्सी पर बैठी उसकी देखभाल कर रही है। उसके पास रखे ट्रांजिस्टर से धीमी आवाज में कोई गीत सुनाई दे रहा है।

पद्मा कहती है, "आज दुपहर को मैंने थिएटर में गंगा को देखा। अजी ! उसकी तो सूरत ही बदल गयी है। शायद वह मुझे पहचान नहीं पायी। उसके संग कोई एंग्लो-इंडियन औरत थी...क्यों, आजकल आप कभी गंगा से नहीं मिलते हैं? मुझे तो देखकर जाने क्यों बड़ी दया सी आ रही थी। उसने तो मुझे देखकर अनदेखा ही कर दिया। अब मैं भी क्यों उससे बात करूं – यह सोचकर मैं भी चली आयी। मुझे ऐसा लगता है कि...।" आगे कुछ और कहने जा रही थी पद्मा...। प्रभु गुस्से से उसे घूरता है।

पता नहीं क्यों, उसे गुस्सा आता है।

"कोई लड़की कहीं भी जाये, मुझे इससे क्या? डोंट स्पाइल माई इविनिंग।" वह अचानक चिल्ला उठता है। यह देखकर पद्मा डर से कांप जाती है। वह उसके गिलास में व्हिस्की भरने लगती है, जैसे उसे शांत कर रही हो।

हां, अब पद्मा भी बदल गयी है।